बीसवीं शताब्दी के हिन्दी नाटकों का समाजशास्त्रीय अध्ययन

बीसवी शताब्दी के हिन्दी नाटको का समाजशास्त्रीय अध्ययन

(मेरठ विश्वविद्यालय द्वारा पी एच्० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

डॉ० लाजपतराय गुप्त
एम० ए० पी एच्० डी०

BĪSAWĪN ŚATĀBDĪ KĪ HINDĪ NĀTAKON KĀ
SAMĀJAŚĀSTRĪYA ADHYAYANA

BY

DR LAJPATRAI GUPTA

सहधर्मिणी
किरण
को

प्राक्कथन

साहित्य और समाज एक दूसरे के पूरक हैं। जहां एक ओर साहित्य में सामाजिक भावों और विचारों की प्रतिच्छाया परिलक्षित होती है वहाँ समाज भी साहित्य द्वारा प्रसारित भावों से स्पष्टतः प्रभावित होता है। साहित्यकार अपने समाज के मुख और मस्तिष्क दोनों होते हैं। उसी के द्वारा हम समाज के हृदय तक पहुँचते हैं और उन परिस्थितियों का पता लगाने में समर्थ होते हैं जो समाज को प्रभावित कर उसमें एक नयी लहर उत्पन्न करती है। वस्तुतः साहित्य समाज का मात्र प्रतिबिम्ब ही नहीं अपितु नियामक और उन्नायक भी है।

समाज से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होने के कारण अन्य साहित्यिक विधाओं की अपेक्षा नाटक में सामाजिकता अधिक रहती है। लोकहित और लोकरंजन की विपुल क्षमता से युक्त नाटक साहित्य जनसाधारण के अधिक निकट रहता है। मानव जीवन के व्यापक सन्दर्भों और यथार्थ जीवन के विविध आयामों में विषय चुनकर वह समाज के लिए ही अपने रूप का निर्माण करता है और शब्दों तथा पात्रों की वेश भूषा आकृति भाव भंगिमा क्रियाओं के अनुकरण और भावों के अभिनय तथा प्रदर्शन द्वारा दर्शक को समाज के यथार्थ जीवन के निकट लाता है। साथ ही राजनीतिक आर्थिक सांस्कृतिक व धार्मिक सभी प्रकार की सामाजिक परिस्थितियां अन्य साहित्यिक विधाओं की भाँति नाटक के स्वरूप को पूर्णतः प्रभावित करती हैं। ऐसी अवस्था में समाज की उन विविध परिस्थितियों का नाटक के सन्दर्भ में अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक है।

हिन्दी नाटक साहित्य का अनेक आलोचनात्मक ग्रन्थों तथा शोध प्रबन्धों के रूप में अध्ययन किया जा चुका है जो मुख्य रूप से तीन प्रकार का है। कुछ शोध प्रबन्धों में हिन्दी नाटकों तथा एकांकियों के उद्भव और विकास का इतिहास प्रस्तुत किया गया है, कुछ में हिन्दी नाटकों के किसी काल अथवा प्रतिभा सम्पन्न नाटककारों की नाट्यकृतियों का शास्त्रीय अध्ययन हुआ है और कुछ शोध प्रबन्धों में पाश्चात्य नाटकों का हिन्दी नाटकों पर प्रभाव दिखाने का प्रयास किया गया है। इन शोध प्रबन्धों में विद्वानों ने यद्यपि हिन्दी नाटकों का गम्भीर और पाण्डित्यपूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया है तथापि उनकी इन गवेषणाओं में नाटक साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की प्रायः उपेक्षा की गयी है। समाजशास्त्रीय अध्ययन वास्तव में युग की सामाजिक परिस्थितियों के आकलन के साथ ही उन राजनीतिक सांस्कृतिक तथा आर्थिक आधारों को भी अपने में समाहित किए हुए है जिनके समष्टिगत अध्ययन से हिन्दी नाटक साहित्य का एक नया रूप मिलता है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध इसी दिशा में हिन्दी नाटकों को समाजशास्त्रीय कसौटी पर परखने का एक विनम्र प्रयास है। इस शोध

प्रबन्ध में शोध के दो पक्ष हैं। प्रथम पक्ष में बीसवीं शताब्दी की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक चेतना का विकास प्रस्तुत किया गया है तथा द्वितीय पक्ष में युगीन चेतना के परिप्रेक्ष्य में नाटकों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

शोध प्रबन्ध को छः अध्यायों में विभक्त किया गया है—

प्रथम अध्याय विषयप्रवेश-सम्बन्धी है जिसके अन्तर्गत समाजशास्त्र की परिभाषा, उसके स्वरूप, विकास और महत्त्व का विस्तृत अध्ययन करते हुए बीसवीं शताब्दी की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक चेतना का विकास प्रस्तुत किया गया है। साथ ही इसमें विभिन्न समाजशास्त्रियों तथा इस के नेताओं के विचारों का विश्लेषण भी द्रष्टव्य है।

द्वितीय अध्याय में भारतेन्दु-युग के नाटकों का परिचय देते हुए १९०१ से १९२० ई० तक के नाटकों का राजनीतिक आदि दृष्टियों से विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस युग के नाटककारों की रुचि यद्यपि व्यावसायिक कम्पनियों के लिए नाटक रचना करने की ओर रहा है किन्तु समाजशास्त्रीय दृष्टि से उन नाटककारों में ऐसे विचार परिलक्षित होते हैं जो कि तत्कालीन युग का कुछ-न-कुछ परिचय देते हैं। इस युग को शोध प्रबन्ध में 'प्रसाद-पूर्ववर्ती हिन्दी नाटक' नाम से अभिहित किया गया है।

तृतीय अध्याय को 'प्रसाद-युगीन हिन्दी नाटक' की संज्ञा दी गयी है और इसकी सीमा रेखा १९२१ से १९३६ ई० तक रखी गयी है। प्रसाद युगीन हिन्दी नाट्य-साहित्य अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है जिसमें भारत के अतीत और वर्तमान इतिहास की स्पष्ट झलक विद्यमान है। वर्ण-व्यवस्था, ब्राह्मण की महत्ता, सामाजिक भेद भाव, नारी-स्वातन्त्र्य, राजनीति में नारी का पदार्पण, कर्म सिद्धान्त की प्रधानता, पुनर्जन्म में विश्वास, विश्व-कल्याण की भावना तथा तत्कालीन समाज में व्याप्त निर्धनता के अनेक प्रकार की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक परिस्थितियों का विस्तृत अध्ययन किया गया है।

'प्रसादोत्तर हिन्दी नाटक' नामक चतुर्थ अध्याय में १९३७ से १९८० ई० तक के हिन्दी नाटकों का समाजशास्त्रीय दृष्टि से व्यापक अध्ययन किया गया है। प्रसाद के पश्चात् हिन्दी नाटक-साहित्य तीव्र गति से विकास की ओर अग्रसर हुआ और विभिन्न आधार फलकों पर नाट्य-साहित्य का सृजन किया जाने लगा। इस युग की सभी प्रकार की परिस्थितियों का स्पष्ट प्रभाव नाटकों पर भी पड़ा है। स्वतन्त्रता के लिए सक्रिय प्रयत्न, असहयोग आन्दोलन का प्रभाव, सरकार में पूँजीपतियों का प्राधान्य, नारी-जागरण, अनमेल विवाह, विधवा विवाह की समस्या, आधुनिक शिक्षा, भौतिकवादी दृष्टिकोण, विश्वबन्धुत्व की भावना, निर्धनता, मजदूरों का शोषण, श्रमिक वर्ग में जागृति आदि को इस युग के नाटकों में पर्याप्त अभिव्यक्ति दी गयी है जिसका समाजशास्त्रीय अध्ययन इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

पञ्चम अध्याय का स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटक नाम से अभिहित किया गया है और इसकी सीमा रेखा १९४८ से १९६५ ई० तक निर्धारित की गयी है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात हमारे समाज संस्कृति व राजनीति ने नयी करवट ली और एक नये प्रकार की आर्थिक परिस्थिति हमारे राष्ट्रीय जीवन में स्फुटित हुई। राष्ट्रीय जीवन में उभरनेवाली इन नयी गतिविधियों, घटनाओं, परिवर्तनों तथा अनेक प्रकार के तनावों को पृष्ठभूमि में रखकर इस युग के नाटककारों ने मानवीय सम्बन्धों और मूल्यों के विघटन को अपने नाटकों में सशक्त रूप से अभिव्यक्त किया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद शरणार्थियों की विकट समस्या गणतन्त्र की चेतना ग्राम पञ्चायतों की स्थापना, संयुक्त परिवारों का विघटन, अवैध यौन सम्बन्ध हरिजन जागृति कुण्ठा तथा व्यक्ति का बिखराव विदेशी प्रभाव वर्तमान शिक्षा का विरोध, निर्धनता राष्ट्रव्यापी अकाल, ब्लैक मार्केट आदि विभिन्न समस्याओं को नाटककारों ने अपने नाटकों का आधारफलक बनाया है जिसका विस्तृत समाजशास्त्रीय अध्ययन उक्त अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

छठा अध्याय उपसंहार है जिसमें सम्पूर्ण अध्ययन का निष्कर्ष और मूल्यांकन साररूप में प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध पी०एच० डी० उपाधि के लिए लिखा गया था। हिन्दी नाटक-साहित्य की विपुलता और शोधार्थी की सीमाओं को ध्यान में रखकर मूल विषय की सीमा रेखा १९०१ से १९६५ ई० तक के विशिष्ट हिन्दी नाटककारों के विशिष्ट नाटकों के अध्ययन तक ही सीमित कर दी गयी थी किन्तु १९६५ ई० से अब तक हिन्दी में कई उच्च कोटि के नाटकों की रचना हुई है जिनकी उपेक्षा से शोधप्रबन्ध निश्चय ही अपने आप में पूर्ण नहीं हो सकता था। अतः प्रकाशन के समय अन्त में परिशिष्ट जोड़ा गया है जिसमें १९६६ से १९७४ ई० तक के प्रमुख नाटकों तथा जो विशिष्ट नाटक शोधकार्य के दौरान समयाभाव के कारण छूट गये थे उनका भी समाजशास्त्रीय अध्ययन संक्षेप में प्रस्तुत कर दिया गया है।

यह शोध प्रबन्ध श्रद्धेय डा० परमात्माशरण वंसल हिन्दी विभाग मेरठ कालेज के निर्देशन में लिखा गया है। उनकी कृपा के लिए मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ। डा० रामस्वरदयालु अग्रवाल, हिन्दी विभाग, मेरठ कालेज ने शोधकार्य में न केवल लेखन के समय अपितु प्रकाशन के समय भी जिस कृपा और स्नेह का परिचय दिया है वह उनकी दयालुता एवं हृदय की विशालता का परिचायक है।

अपने गुरुजनों, दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष आचार्य विजयेन्द्र स्नातक, आचार्य उदयभानुसिंह एवं आचार्य दशरथ ओझा के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनका असीम स्नेह इस शोध प्रबन्ध की प्रेरणा का आधार तो रहा ही है साथ ही जिन्होंने समय-समय पर शोधकार्य के दौरान अनेक समस्याओं को सुलझाने में मेरी सहायता भी की है। इस शोध प्रबन्ध के बीज-वपन का अप्रत्यक्ष श्रेय आचार्य नगेन्द्र को है।

मित्रवर डा० रामबरत्याल मिश्र, डा० ज्ञानचन्द गुप्त, डा० गुरुवीरसिंह, श्री श्यामबिहारी लाल शर्मा, श्री च्यवनऋषि झा, श्री कमलेश्वरप्रसाद भट्ट, श्री आनन्द एवं अनुज राजेन्द्रप्रसाद गुप्त ने शोधकार्य के दौरान अनेक प्रकार से सहायता की है। मैं हृदय से सभी के प्रति आभार प्रकट करता हूँ। अन्त में मैं कल्पना प्रकाशन के व्यवस्थापक महोदय के प्रति अपना हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिनके असीम उत्साह एवं लगन से यह शोध प्रबन्ध इतनी शीघ्रता से प्रकाशित हो सका।

लाजपतराय गुप्त

विषय-सूची

प्राक्कथन

अध्याय १ विषय प्रवेश १–४८

(१) समाजशास्त्र—स्वरूप एवं विकास १

समाजशास्त्र का शाब्दिक अर्थ, समाजशास्त्र की परिभाषा, निष्कर्ष, प्राचीन भारत में समाजशास्त्र, समाजशास्त्रीय अध्ययन का महत्त्व, समाजशास्त्र का विकास, समाजशास्त्रीय अध्ययन के प्रमुख आधार।

(२) राजनीतिक चेतना का विकास—सामान्य परिचय ६

(क) देश में राजनीतिक जागरण की पृष्ठभूमि—१८५७ ई० का स्वतन्त्रता संग्राम और उसके परिणाम, किसान विद्रोह (१८६० ई०), राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म, (ख) १६०१–१६४७ ई०—नवजागरण की प्रवृत्ति, भारतीय राष्ट्रीयता का जन्म, बंगाल का विभाजन, प्रथम विश्व-युद्ध का भारतीय राजनीति पर प्रभाव, रॉलेट एक्ट, जलियावाला बाग का हत्याकाण्ड, असहयोग आन्दोलन, साइमन कमीशन का बहिष्कार, स्वाधीनता का घोषणा-पत्र, सत्याग्रह आन्दोलन, १६३५ ई० का गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया एक्ट, द्वितीय विश्व-युद्ध का भारतीय राजनीति पर प्रभाव, परतन्त्रता के विरुद्ध सक्रिय प्रयत्न—भारत छोड़ो आन्दोलन, भारत विभाजन एवं स्वतन्त्रता प्राप्ति, (ग) १६४७–१६५० ई०—स्वतन्त्र भारत के सामने समस्याएं एवं भविष्य के प्रति आस्था, साम्प्रदायिक दंगे, शरणार्थियों के पुनर्वास की समस्या, कश्मीर पर पाकिस्तान का आक्रमण, देशी रियासतों का विलय, भविष्य के प्रति आस्था, (घ) १६५१–१६६५ ई०—मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया, (ङ) गतिरोध।

(३) सामाजिक प्रतिमानों का विकास २०

(क) समाज-सुधार—विविध आन्दोलन, ब्रह्म-समाज

द्वाग (ठ) कुण्ठा (ड) व्यक्ति का विघटन
(ढ) नतिकता के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण ।

(३) नाटकों मे अभिव्यक्त सांस्कृतिक चेतना का स्वरूप — २३६
(क) ईश्वर म विश्वास (ख) कम सिद्धान्त , (ग) अहिंसात्मक दृष्टिकोण (घ) विश्व बन्धुत्व की भावना , (ङ) धार्मिक स्थिति (च) धार्मिक पाखण्ड (छ) विदशी प्रभाव (ज) वतमान शिक्षा का विरोध , (झ) राष्ट्रभाषा के प्रति मोह ।

(४) नाटकों मे अभिव्यक्त आर्थिक चेतना का स्वरूप — २५३
(क) निधनता (ख) अकाल (ग) कृषि म सुधार
(घ) मिलो मे हडताल (ट) ब्लक मार्किट ।

अध्याय ६ उपसंहार — २६१–२६७

परिशिष्ट (१९६० से १९७४ ई० तक के नाटकों का विवरण) — २६८–२८७
(क) राजनीतिक चेतना — २६८
(ख) सामाजिक चेतना — २७३
(ग) आर्थिक चेतना — २८५

नाटक सूची — २८८

सहायक ग्रन्थ सूची — २९७

१
विषय-प्रवेश

समाजशास्त्र स्वरूप एवं विकास

समाजशास्त्र का शाब्दिक अर्थ

अंग्रेजी भाषा का शब्द 'सोशियोलाजी' दो शब्दों 'सोशियो' (Socio) और 'लाजी' (Logy) को मिलाकर बना है। 'सोशियो' का अर्थ है समाज से सम्बन्धित और 'लाजी' का अर्थ है ज्ञान अथवा विज्ञान। इस प्रकार 'सोशियोलॉजी' का शाब्दिक अर्थ 'समाज से सम्बन्धित वह विज्ञान है जो समाज के बारे में वैज्ञानिक अध्ययन करता है।' परन्तु यह शाब्दिक अर्थ समाजशास्त्र की वास्तविक प्रकृति तथा विषय-क्षेत्र के बारे में सब कुछ बताने में असमर्थ है।

समाजशास्त्र की परिभाषा

समाजशास्त्र के विषय में विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग प्रकार से परिभाषाएँ दी हैं। गिलिन और गिलिन ने समाजशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार की है "विस्तृत रूप में समाजशास्त्र को जीवित प्राणियों के एक दूसरे के सम्पर्क में आने के फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाली अन्तःक्रियाओं का अध्ययन माना जाता है।"[1]

सोरोकिन के अनुसार, 'समाजशास्त्र सामाजिक सांस्कृतिक घटनाओं के सामान्य स्वरूपों, प्रारूपों और अनेक प्रकार के अन्तःसम्बन्धों का सामान्य विज्ञान है।'[2]

मैक्स वेबर ने समाजशास्त्र की परिभाषा करते हुए लिखा है कि 'समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो सामाजिक क्रिया का अर्थपूर्ण (व्याख्यात्मक) बोध कराने का प्रयत्न करता है तथा जिससे इसकी (सामाजिक क्रिया की) गतिविधि तथा प्रभावों की कारणसहित व्याख्या प्रस्तुत की जा सके।'[3]

आगबर्न और निमकॉफ के अनुसार 'समाजशास्त्र मनुष्य के सामाजिक जीवन

---

१ Sociology in its broadest sense may be said to be the study of interactions arising from the association of living beings
—Gillin and Gillin *Cultural Sociology* 1948 p 5

२ Sociology is a generalizing science of socio-cultural phenomena viewed in their generic forms types and manifold interconnections
—P A. Sorokin *Society Culture and Personality* Harper & Bros, New York 1948 p 6

३ Sociology is a science which attempts the interpretive understanding of

तथा उसकी संस्कृति, प्राकृतिक पर्यावरण, वंशानुसंक्रमण और समूह के साथ उसके सम्बन्धों का अध्ययन करता है।[1]

हिलर के मतानुसार समाजशास्त्र व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों, उनके एक दूसरे के प्रति आचरण और सम्पर्क तथा उन मापदण्डों का अध्ययन है जिनके द्वारा वे अपने सम्बन्धों को नियमित करते हैं।[2]

टी० एबल ने संक्षिप्त रूप में समाजशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार की है, समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों, उनके विभिन्न प्रकारों और उनके स्वरूपों तथा जो कुछ उन्हें प्रभावित करते हैं और जो उनसे प्रभावित होते हैं का वैज्ञानिक अध्ययन है।[3]

निष्कर्ष

सभी विद्वान् इस बात से सहमत हैं कि समाजशास्त्र समाज के सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन करता है परन्तु इसका काम समाज के किसी एक पहलू का अध्ययन नहीं, समाज के हर पहलू पर विचार करना है, समाज पर चौमुखा प्रकाश डालना है। इसका काम समाज की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक—हर समस्या का अध्ययन करना है। अतः इसे 'साधारण सामाजिक विज्ञान' को ही दूसरे रूप में समाजशास्त्र कहा जाता है।

प्राचीन भारत में समाजशास्त्र

भारत में मानव धर्म-सूत्र नाम से मनुस्मृति में समाजशास्त्रीय विचार पाये जाते हैं। मनुस्मृति के अतिरिक्त अन्य भी अनेक स्मृतियाँ पाई जाती हैं जिनमें परिवार, विवाह, जाति आदि सभी सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। अगर यह कहा जाए कि मनुस्मृति या मानव धर्म-सूत्र समाजशास्त्र का ही ग्रन्थ

---

social action in order thereby to arrive at a causal explanation of its course and effects

—Max Weber *The Theory of Social and Economic Organization* 1947 p 88

१ Sociology is concerned with the study of the social life of man and its relation to the factor of culture natural environment heredity and the group

—Ogburn and Nimkoff *A Handbook of Sociology* 1957 p 9

२ Sociology is the study of the relations between individuals their conduct and reference to one another and the standards by which they regulate their association

—E T Hiller *Principles of Sociology* p 3

३ Sociology is the scientific study of social relationships their variety their forms whatever affects them and whatever they affect

—T Abel *Sociology—Its Nature and Scope* 1932 p 11

है तो कोई अत्युक्ति न होगी। इसके अनुसार 'मानव' का अर्थ है—समाज। इस दृष्टि से मानव धर्म-शास्त्र और समाजशास्त्र का एक ही अर्थ है।

समाजशास्त्रीय अध्ययन का महत्व

समाजशास्त्रीय अध्ययन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस शास्त्र ने समाज के हर पहलू का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन प्रारम्भ किया है। व्यक्ति का समाज में एक विशेष स्थान है और वह विविध प्रकार से समाज के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है। किस प्रकार वह समाज के साथ एक होकर रहे एक होकर भी अपने व्यक्तित्व को लुप्त न होने दे—यह वह समाजशास्त्र से ही जान सकता है, क्योंकि समाजशास्त्र व्यक्ति की समस्याओं का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करता है।

व्यक्ति के साथ-साथ परिवार की भी समस्याएं हैं। विवाह सन्तान पारस्परिक सम्बन्ध विवाह विच्छेद आदि ऐसी समस्याएँ हैं जिनको समाज-सुधारक के दृष्टिकोण से नहीं सुलझाया जा सकता इन पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करने की आवश्यकता है और वह समाजशास्त्र ही कर सकता है।

समाज में व्यक्ति या परिवार ही नहीं समुदाय भी रहते हैं। एक ही देश में अनेक समुदाय पाए जाते हैं और इन समुदायों में कहीं धर्म के आधार पर कहीं भाषा के आधार पर कहीं रिश्ते के आधार पर, कहीं जाति के आधार पर झगड़े होते रहते हैं। किस प्रकार ये पारस्परिक झगड़े मिटाये जा सकते हैं किस प्रकार उनमें आपस में सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते हैं और किस प्रकार वे उन्नति कर सकते हैं—ये सारे काम समाजशास्त्रीय अध्ययन द्वारा ही सम्भव हैं।

व्यक्ति परिवार तथा समुदाय के अतिरिक्त हमारे समाज की भी अपनी कुछ समस्याएँ हैं। कहीं धनी वर्ग है कहीं पुरुषों के अधिकार अधिक हैं कहीं स्त्रियों के अधिकारों का हनन हो रहा है चोरी डाका हत्या वेश्यावृत्ति मदिरापान ऊँच नीच आदि ऐसी सामाजिक समस्याएँ हैं जो केवल कानून से नहीं सुलझायी जा सकतीं। इन सब समस्याओं पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने की आवश्यकता है और यह काम समाजशास्त्र के अतिरिक्त कोई अन्य शास्त्र नहीं कर सकता।

आज के युग में वैज्ञानिक उन्नति से एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के निकट तो आ गये हैं परन्तु उनमें सामाजिक सामंजस्य स्थापित नहीं हो पाया है। अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में समाजगत सामंजस्य स्थापित करने के लिए समाजशास्त्रीय अध्ययन की महती सहायता लेनी पड़ेगी।

समाजशास्त्र का विकास

जब से समाज का जन्म हुआ है तब से ही मनुष्य समाज की भिन्न भिन्न समस्याओं पर विचार करता आया है परन्तु एक निश्चित विज्ञान के रूप में कोई सफल आधार प्रस्तुत नहीं हो सका है। सर्वप्रथम सामाजिक विज्ञान के रूप में समाज-

शास्त्र का सूत्रपात यूरोप में हुआ। यूरोप में सबसे पहले समाजशास्त्र के विचारों की चर्चा यूनानी विद्वान् प्लेटो ने अपनी पुस्तक 'रिपब्लिक' में की। उसने अपनी पुस्तक में भारत की वर्ण-व्यवस्था की तरह समाज को रक्षक, योद्धा, कृषक तथा दास—इन चार वर्गों में विभाजित किया था। उसका विचार समाज को जन्म-जात जातियों में विभक्त करने की जगह कर्म-गत वर्गों में बाँटने का था। राज्य के सम्बन्ध में प्लेटो का विचार था कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुसार काम देना राज्य का कर्तव्य है।

प्लेटो के शिष्य अरस्तू ने 'एथिक्स' और 'पौलिटिक्स' नाम के दो ग्रन्थ लिखे। अरस्तू ने सर्वप्रथम इस तथ्य का प्रतिपादन किया कि मनुष्य स्वभाव से ही एक सामाजिक प्राणी है और उसकी उन्नति के लिए समाज आवश्यक है। मनुष्य के रीति रिवाज, धार्मिक, आर्थिक तथा राजनीतिक संगठन बदलते रहते हैं परन्तु उनमें सामाजिकता लगातार बनी रहती है, वह नहीं बदलती। यह सामाजिकता की भावना ही भिन्न भिन्न प्रकार के सामाजिक संगठनों को उत्पन्न करती है—यह विचार सबसे पहले अरस्तू ने दिया।

प्लेटो तथा अरस्तू ने सामाजिक समस्याओं पर तो बहुत कुछ लिखा परन्तु समाजशास्त्र का एक शास्त्र के रूप में उन्होंने प्रणयन नहीं किया। वास्तव में वह काल ही ऐसा था जब दर्शन या धर्म में ही सब कुछ आ जाता था। जो व्यक्ति दर्शन या धर्म पर कुछ लिखता था वह सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक सभी बातें लिख देता था। भारत के मनुस्मृति, महाभारत आदि ग्रन्थों में भी बहुत कुछ ऐसा ही पाया जाता है। प्लेटो तथा अरस्तू के बाद के विचारकों में सेंट आगस्टाइन, टामस एक्वीनास, दान्ते आदि के नाम आते हैं और उन्होंने जहाँ अरस्तू के इस सिद्धान्त को स्वीकार किया कि मनुष्य स्वभाव से सामाजिक प्राणी है वहाँ इस सिद्धान्त का भी प्रतिपादन किया कि समाज स्थिर वस्तु नहीं है, परिवर्तनशील है और ये परिवर्तन किन्हीं निश्चित नियमों के अनुसार होते हैं। वास्तव में उस समय के विचारक यह मानते थे कि जिस प्रकार भौतिक जगत् में कार्य-कारण का नियम काम करता है उसी प्रकार सामाजिक जगत में भी कार्य-कारण का नियम काम कर रहा है।

समाजशास्त्र का जो वर्तमान रूप है उसका प्रारम्भ आगस्ट काम्टे (August Comte 1798 1857) से माना गया है। यह १८वीं १९वीं सदी का युग था और इस युग में वैज्ञानिक क्षेत्र में आशातीत प्रगति हुई। कल-कारखाने खुले। मिल मालिक तथा मजदूर, शासित एवं शोषक, पूँजीपति और पूँजीहीन ये दो वर्ग अस्तित्व में आ गये। इन सबका प्रभाव समाज पर पड़ना अवश्यम्भावी था और परिणामस्वरूप ऐसे विचारक उत्पन्न होने लगे जो अपने समय की सामाजिक समस्याओं का वैज्ञानिक ढंग से निदान खोजने लगे। उनका मत था कि समाज के विकास में निश्चित नियम काम करते हैं। उन भौतिक नियमों के आधार पर चन्द

ग्रहण के विषय म भविष्यवाणी की जा सकती है, वसे ही सामाजिक नियमा के आधार पर समाज की भविष्य मे क्या अवस्था होगी—इस पर भविष्यवाणी की जा सकती है। इन विचारको का कहना था कि अन्य भौतिक विज्ञाना की तरह समाज शास्त्र भी एक निश्चित विज्ञान है। इस विज्ञान का नाम सर्वप्रथम आगस्ट काम्टे ने समाजशास्त्र' (सोशियालाजी) रखा और इसलिए उसे समाजशास्त्र का पिता कहा जाता है। आगस्ट कॉम्टे फ्रांसीसी विचारक था। उसके बाद इग्लैण्ड म इस शास्त्र की चर्चा १८४३ ई० मे जेम्स स्टुअर्ट मिल तथा बाद म हरबर्ट स्पेंसर (१८२० १९०३ ई०) ने की।

आजकल अमेरिका म समाजशास्त्र पर विशेष चर्चा चल रही है। इस समय पाश्चात्य जगत् म समाजशास्त्र एक महत्त्वपूर्ण विषय हो गया है। इस शास्त्र के विचारको मे पेरेटो, दुरखीम, वेबलन, कार्ल मार्क्स मैक्स वबर सोरोकिन और पारसन्स आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

समाजशास्त्र के विषय मे आज यह कहा जाता है कि यह अन्य विज्ञाना की तरह एक विज्ञान है। इस विषय म विद्वाना म एक धारणा बन गई है कि अन्य सामाजिक विज्ञान समाज के एक पहलू पर प्रकाश डालते हैं परन्तु समाजशास्त्र समाज के हर पहलू का सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करता है और यह अन्य सामाजिक विज्ञाना की अपेक्षा अधिक महत्त्व का विज्ञान है।

यही कारण है कि आज भारत म भी समाजशास्त्र' पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। पहले-पहल बम्बई विश्वविद्यालय ने १९१९ ई० म इस विषय को अपने पाठ्य क्रम म सम्मिलित किया। अब यह विषय आगरा, लखनऊ गोरखपुर, बड़ौदा, पटना, राजपूताना दिल्ली मेरठ आदि विश्वविद्यालया मे पढाया जाने लगा है और जहा नहा भी पढाया जाता, वहा भी इस विषय को पढाये जाने की चर्चा चल पडी है।

समाजशास्त्रीय अध्ययन के प्रमुख आधार

प्राचीन काल मे समाज इतना जटिल नही था, जितना जटिल आज के युग म है। आज समाज की अनेक प्रकार की समस्याएँ हैं, जैसे राजनीतिक सामाजिक सास्कृतिक और आर्थिक समस्याएँ। समाज ने इन सभी समस्याओ का अध्ययन करने के लिए अलग अलग शास्त्रो का निर्माण किया है। समाज के राजनीतिक पहलू का अध्ययन राजनीतिशास्त्र ऐतिहासिक पहलू का अध्ययन इतिहास, धार्मिक पहलू का अध्ययन धर्मशास्त्र और आर्थिक पहलू का अध्ययन अर्थशास्त्र करता है परन्तु ये सभी शास्त्र समाज के हर पहलू का समग्र रूप म अध्ययन नही करते इसलिए समाजशास्त्र की आवश्यकता हुई और समाजशास्त्र ने इन सभी पहलुओ का सम्मिलित रूप से अध्ययन किया है। इस प्रकार समाजशास्त्रीय अध्ययन के अन्तर्गत प्राय समाज की राजनीतिक, सामाजिक, सास्कृतिक और आर्थिक स्थितियो का

मक्त थे। भारतीय उच्च नौकरियों के योग्य नहीं समझे जाते थे। लार्ड सॉलिसबरी ने जान-बूझकर इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा के लिए आयु कम कर दी जिससे भारतीय ऊँचे पदों का लाभ न उठा सकें। अब भारत अंग्रेजों के लिए एक स्वतन्त्र बाजार न रहकर एक अधिकृत उपनिवेश बन गया और उन्होंने शोषण की नीति अपनाई। इस नीति की सबसे बड़ी देन यह है कि इसमें हिन्दू-मुस्लिम-एकता का जन्म हुआ। इससे यह शिक्षा मिली कि अंग्रेजों के विरुद्ध हिन्दू तथा मुसलमान संयुक्त हो सकते हैं। ए० आर० देसाई के मतानुसार इस एकता ने भारतीय जनता के संयुक्त राष्ट्रीय आन्दोलन की भूमिका तैयार की है।[1]

(२) किसान विद्रोह (१८६० ई०)—१८५७ ई० के स्वाधीनता संग्राम के असफल हो जाने पर भी स्वाधीनता की भावना का अन्त नहीं हुआ बल्कि वह अधिक जाग्रत हो गयी। १८६०-६२ ई० में बंगाल में किसान-विद्रोह हुआ। उस समय बंगाल में नील की खेती बड़े पैमाने पर होती थी और यह खेती प्रायः अंग्रेजों जमींदारों के स्वत्व में थी। नील के खेतों के मालिक अंग्रेज थे। वे भारतीय किसानों के साथ गुलामों का-सा व्यवहार करते थे। इस कारण इन किसानों पर भयंकर अत्याचार होने लगे। परिणाम यह हुआ कि किसानों ने विद्रोह कर दिया परन्तु अंग्रेजी शक्ति के एक हो जाने के कारण यह विद्रोह असफल हुआ और भारतीय किसानों में एक नई जागृति उत्पन्न हुई।

(३) राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म—१८८५ ई० तक अंग्रेजी शासन ने भारत में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी जिनसे जनता त्रस्त हो गई और भारतीयों के हृदय में अंग्रेजों के प्रति घृणा के भाव उठने लगे। देश में भीषण अकाल, कठोर शासन व्यवस्था, पुलिस के अत्याचार तथा सरकारी करों से त्रस्त जनता में विद्रोह की अग्नि सुलगने लगी। भारतीयों को उच्च सरकारी पदों से वंचित किया गया था, इसलिए शिक्षित मध्यवर्ग में भी असन्तोष व्याप्त हो गया। सरकार की आर्थिक नीति शोषण-युक्त होने के कारण औद्योगिक वर्ग में भी असन्तोष छा गया। देश के बड़े-बड़े शिक्षा केन्द्रों ने भी ऐसी अनेक संस्थाओं को जन्म दिया जिनसे शिक्षित मध्य वर्ग संगठित हो गया। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने समस्त भारत का भ्रमण करके सिविल सर्विस की परीक्षा के लिए आयु कम करने की अंग्रेजी नीति के विरुद्ध लोकमत जाग्रत किया। ह्यूम साहब चिन्तित थे कि यदि शिक्षित मध्यवर्ग और सामान्य जनता दोनों मिल गए तो यह असन्तोष कहीं विद्रोह का रूप न ले ले। इन सब परिस्थितियों को देखकर ह्यूम साहब ने एक नीति अपनाई जिसमें भारतीयों के सहयोग को आवश्यक समझा गया और १८८५ ई० में तत्कालीन वायसराय लार्ड डफरिन से मिलकर एक संस्था की स्थापना की जिसका नाम आल इण्डिया कांग्रेस रखा गया। प्रारं

---

[1] It created a tradition for a united nationalist movement of the Indian people.—
A. R. Desai *The Social Background of Indian Nationalism* 1954 p. 275

अन्तर्गत यही कांग्रेस भारत की सर्वप्रथम राजनीतिक शक्ति बनी।

इस युग के राजनीतिक नेताओं का विश्वास था कि भारत का हित ब्रिटिश सरकार के साथ सहयोग करने में है। भारतीय नेताओं को यह आशा भी थी कि ब्रिटिश सरकार कुछ वैधानिक सुधार करेगी परन्तु उनकी यह आशा निरर्थक रही। परिणाम यह हुआ कि शिक्षित मध्य वर्ग तथा औद्योगिक वर्ग के असन्तोष को जनता के असन्तोष से नहीं मिलने दिया गया तथा हिंसक क्रान्ति और जन आन्दोलन से हटकर वैधानिक विरोध का मार्ग प्रस्तुत किया गया।

(ख) १९०१-१९८७ ई०— नव-जागरण प्रवृत्ति

(१) भारतीय राष्ट्रीयता का जन्म—अंग्रेजों ने भारत में आकर ऐसी परिस्थितियाँ तैयार कीं जिनसे भारतीय राष्ट्रीयता का जन्म हुआ। सुदृढ़ राजकीय प्रणाली, नवीन औद्योगिक क्रान्ति, व्यवस्था, आधुनिक साधनों का निर्माण, शिक्षित मध्य-वर्ग का प्रादुर्भाव, आर्थिक शोषण, उदारवाद व विज्ञान राष्ट्रीयता को जन्म देने में सहायता पहुँचाई। अंग्रेजी सरकार इन उपकरणों के द्वारा भारत का शोषण करना चाहती थी, शोषण तो हुआ परन्तु इस शोषण ने भारतीयों को अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए बाध्य कर दिया। ब्रिटिश स्वार्थों से भारतीय हितों का संघर्ष भारतीय राष्ट्रीयता का मूल स्रोत था। स्वार्थों का संघर्ष जितना ही तीव्र होता गया भारतीय राष्ट्रीयता उतनी ही उग्र होती गई।

(२) बंगाल का विभाजन—लार्ड कर्जन साम्राज्यवादी नीति का प्रवर्तक था। उसने स्पष्ट रूप से यह कहा कि भारतीय उच्च पदों के योग्य नहीं हैं। १९०४ ई० में कर्जन ने विश्वविद्यालय एक्ट पास किया जिससे विश्वविद्यालयों की रही-सही स्वतन्त्रता भी छीन ली गई। कर्जन का कहना था कि वह शिक्षा का स्तर ऊँचा उठाना चाहता है। गोखले का अनिवार्य शिक्षा बिल अस्वीकृत किया गया। सबसे पहले कर्जन ने हिन्दू तथा मुसलमानों में फूट डालने का प्रयत्न किया। १६ अक्तूबर १९०५ ई० में बंगाल का विभाजन कर दिया गया। कर्जन की बंग भंग नीति के दो उद्देश्य थे। एक तो बंगाल की एकता समाप्त करना क्योंकि बंगाल तथा देश की राजधानी कलकत्ता बौद्धिक तथा राजनीतिक केन्द्र थे। अतः भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को शिथिल करने का उपाय बंग भंग सोचा गया। दूसरा बंगाल को हिन्दू-मुसलमान दो जातियों के आधार पर दो भागों में विभाजित करके साम्प्रदायिक वैमनस्य को प्रश्रय देकर कांग्रेस की शक्ति को क्षीण करने का प्रयास किया गया। अंग्रेजों ने 'फूट डालो और शासन करो' नीति को अपनाया। पूर्वी बंगाल तथा आसाम के लेफ्टिनेंट गवर्नर बैम्फील्ड फुलर ने मुसलमानों को भड़काया कि अंग्रेजों के लिए मुसलमान हिन्दुओं से अधिक प्रिय हैं। परिणामस्वरूप मुसलमानों ने विशेष राजनीतिक अधिकारों की माँग की जिसे कर्जन के उत्तरा-
[illegible]

प्रतिनिधित्व की माग स्वीकृत होन पर हिंदू-मुसलमाना के भिन्न भिन्न मानदण्ड निर्धारित कर दिए गए।

(३) प्रथम विश्व-युद्ध का भारतीय राजनीति पर प्रभाव—१९०५ ई० म बग भग होने से सारे देश मे असन्तोष की लहर फैल गई। १९०६ ई० की कलकत्ता काग्रेस म सभापति पद से भाषण देते हुए दादा भाई नौरोजी न प्रथम बार 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग किया। 'स्वराज्य' शब्द के द्वारा प्रथम बार जनता को राष्ट्रीय सन्देश दिया गया।

१९१४-१८ ई० के महायुद्ध से भारतीय आन्दोलन को विशेष बल मिला। ब्रिटिश पक्ष के लोग यही कहते थे कि व लोकतन्त्रवाद के सिद्धान्तो को ध्यान म रखकर युद्ध म सम्मिलित हुए हैं और उनका उद्देश्य आस्ट्रिया, हगरी, जमनी तथा टर्की के स्वेच्छाचारी शासन का अन्त कर लोकतन्त्रवाद के अनुसार यूरोप का पुनर्निर्माण करना है। उन्होंने भारत के नताओं को यह आश्वासन दिया कि यदि वे इस युद्ध मे उनकी सहायता करेंगे तो युद्ध की समाप्ति पर भारत की राष्ट्रीय आकाक्षाओ को पूर्ण करने म उन्हे कोई हिचक न रहेगी। परिणामस्वरूप भारत के कारखानो मे ब्रिटिश सरकार के लिए युद्ध-सम्बन्धी आवश्यक वस्तुओ का उत्पादन होने लगा। भारतीयो ने दिन रात परिश्रम करके उत्पादन बढाया। नवयुवक वग और काग्रेस ने युद्ध प्रयत्न म ब्रिटिश सरकार का उत्साहपूवक साथ दिया, परन्तु युद्ध की समाप्ति पर अग्रेजो की कृपा पर आश्रित रहकर स्वराज्य प्राप्ति की आशा छोड कर उन्होंने अपने बल द्वारा स्वतन्त्र होने का प्रयास प्रारम्भ किया।

१९१७ ई० मे रूसी क्रान्ति की सफलता तथा जनता के आत्म निर्णय न अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितियो म परिवतन कर दिया। इस क्रान्ति की सफलता को देखकर ब्रिटिश सरकार के मन मे एक भय उत्पन्न हुआ कि कही भारत म भी इसी प्रकार की क्रान्ति न हो जाए और शासन स हाथ धोना पडे। रूसी क्रान्ति की सफलता को देखकर भारतीयो के हृदयो म विशेष उत्साह का सचार हुआ। वे स्वराज्य को प्राप्त करने के लिए भरसक प्रयत्न करने लगे। इस समय काग्रेस का नेतृत्व महात्मा गाधी के हाथो मे आ गया था और काग्रेस को जनता का पूर्ण समथन प्राप्त हुआ।

(४) रौलेट ऐक्ट—रूसी क्रान्ति का भारत पर यह प्रभाव पडा कि भारत मन्त्री माण्टेग्यू को नई नीति की घोषणा करनी पडी। माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार (१९१९ ई०) से भारत को जो कुछ दिया गया था वह आशा से बहुत कम था। भारतीय जनता इससे बहुत असन्तुष्ट हुई। असन्तोष को देखकर सरकार न घबराकर रौलेट ऐक्ट पेश किया जिसका एसेम्बली मे विरोध किया गया परन्तु सरकार ने कोई परवाह न करके इस ऐक्ट को पास कर दिया। इसके अनुसार किसी भी व्यक्ति को राजद्रोह के अभियोग मे सजा दी जा सकती थी। गाधी जी **के नेतृत्व मे** सम्पूर्ण

प्रकार यहां कांग्रेस भारत की सर्वप्रथम राजनीतिक शक्ति बनी।

इस युग के राजनीतिक नेताओं का विश्वास था कि भारत का हित ब्रिटिश सरकार के साथ सहयोग करने में है। भारतीय नेताओं को यह आशा थी कि ब्रिटिश सरकार कुछ वैधानिक सुधार करेगी परन्तु उनकी यह आशा निष्फल रहा। परिणाम यह हुआ कि शिक्षित मध्य वर्ग तथा औद्योगिक वर्ग के असन्तोष को जनता के असन्तोष से तीव्र किया गया तथा हिंसक क्रान्ति और जन आन्दोलन से माँग कर वैधानिक विरोध की माँग प्रस्तुत किया गया।

(ग) १९०१-१९४७ ई०— नव जागरण प्रवृत्ति

(१) भारतीय राष्ट्रीयता का जन्म—अंग्रेजों ने भारत में प्रसार ऐसी परिस्थितियाँ तैयार की जिनसे भारतीय राष्ट्रीयता का जन्म हुआ। सुदृढ़ राजकीय प्रणाली नवीन औद्योगिक आर्थिक व्यवस्था, आधुनिक साधनों का निर्माण शिक्षित मध्य-वर्ग का प्रादुर्भाव आदि ऐसे उपकरण थे जिन्होंने राष्ट्रीयता के जन्म देने में सहायता पहुँचाई। अंग्रेजी सरकार इन उपकरणों के द्वारा भारत का शोषण करना चाहती थी जो शोषण भी हुआ परन्तु इस शोषण ने भारतीयों को अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए बाध्य कर दिया। ब्रिटिश स्वार्थों से भारतीय हितों का संघर्ष भारतीय राष्ट्रीयता का मूल स्रोत था। स्वार्थों का संघर्ष जितना ही तीव्र होता गया भारतीय राष्ट्रीयता उतनी ही उग्र होती गई।

(२) बंगाल का विभाजन—लार्ड कर्जन साम्राज्यवादी नीति का प्रबल पक्षपाती था। उसने स्पष्ट रूप से यह कहा कि भारतीय उच्च पदों के योग्य नहीं हैं। १९०४ ई० में कर्जन ने विश्वविद्यालय एक्ट पास किया जिससे विश्वविद्यालयों की रही-सही स्वतन्त्रता भी छीन ली गई। कर्जन का कहना था कि वह शिक्षा का स्तर ऊँचा उठाना चाहता है। बंगाल का अनिवार्य शिक्षा बिल अस्वीकृत किया गया। सबसे पहले कर्जन ने हिन्दू तथा मुसलमानों में फूट डालने का प्रयत्न किया। १६ अक्तूबर १९०५ ई० में बंगाल का विभाजन कर दिया गया। कर्जन की बंग भंग नीति के दो उद्देश्य थे। एक तो बंगाल की एकता समाप्त करना क्योंकि बंगाल तथा देश की राजधानी कलकत्ता बौद्धिक तथा राजनीतिक केन्द्र थे। अतः भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को शिथिल करने का उपाय बंग भंग सोचा गया। दूसरा, बंगाल को हिन्दू मुसलमान दो जातियों के आधार पर दो भागों में विभाजित करके साम्प्रदायिक वैमनस्य का सूत्रपात करके कांग्रेस की शक्ति को क्षीण करने का प्रयास किया गया। अंग्रेजों ने 'फूट डालो और शासन करो' नीति को अपनाया। पूर्वी बंगाल तथा आसाम के लेफ्टीनेंट गवर्नर बैम्फील्ड फुलर ने मुसलमानों को भड़काया कि अंग्रेजों के लिए मुसलमान हिन्दुओं से अधिक प्रिय हैं। परिणामस्वरूप मुसलमानों ने विशेष राजनीतिक अधिकारों की माँग की जिसे कर्जन के उत्तराधिकारी लार्ड मिण्टो ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। निष्कर्ष यह निकला कि साम्प्रदायिक

प्रतिनिधित्व की माग स्वीकृत होने पर हिंदू मुसलमानों के भिन्न भिन्न मानदण्ड निर्धारित कर दिए गए।

(३) प्रथम विश्व-युद्ध का भारतीय राजनीति पर प्रभाव—१६०५ ई० म बग भग होने स सारे देश म असन्तोष की लहर फैल गई। १६०६ ई० को कलकत्ता काग्रेस म सभापति पद से भाषण देते हुए दादा भाई नौरोजी ने प्रथम बार स्वराज्य शब्द का प्रयोग किया। 'स्वराज्य' शब्द के द्वारा प्रथम बार जनता को राष्ट्रीय सदेश दिया गया।

१६१४ १८ ई० के महायुद्ध से भारतीय आन्दोलन को विशेष बल मिला। ब्रिटिश पक्ष के लोग यही कहते थे कि वे लोकतन्त्रवाद के सिद्धान्तो को ध्यान मे रखकर युद्ध मे सम्मिलित हुए हैं और उनका उद्देश्य आस्ट्रिया, हगरी, जमनी तथा टर्की के स्वेच्छाचारी शासन का अन्त कर लोकतन्त्रवाद के अनुसार यूरोप का पुनर्निर्माण करना है। उन्होंने भारत के नेताओं को यह आश्वासन दिया कि यदि वे इस युद्ध मे उनकी सहायता करेंगे तो युद्ध की समाप्ति पर भारत की राष्ट्रीय आकाक्षाओं को पूर्ण करने मे उन्हे कोई हिचक न रहेगी। परिणामस्वरूप भारत के कारखानों मे ब्रिटिश सरकार के लिए युद्ध-सम्बन्धी आवश्यक वस्तुओ का उत्पादन होने लगा। भारतीयो ने दिन रात परिश्रम करके उत्पादन बढाया। नवयुवक वर्ग और काग्रेस ने युद्ध प्रयत्न म ब्रिटिश सरकार का उत्साहपूर्वक साथ दिया, परन्तु युद्ध की समाप्ति पर अग्रेजो की कृपा पर आश्रित रहकर स्वराज्य प्राप्ति की आशा छोड कर उन्होंने अपने बल द्वारा स्वतन्त्र होने का प्रयास आरम्भ किया।

१६१७ ई० मे रूसी क्रान्ति की सफलता तथा जनता के आत्म निर्णय ने अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितियो म परिवर्तन कर दिया। इस क्रान्ति की सफलता को देखकर ब्रिटिश सरकार के मन मे एक भय उत्पन्न हुआ कि कहीं भारत म भी इसी प्रकार की क्रान्ति न हो जाए और शासन स हाथ धोना पडे। रूसी क्रान्ति की सफलता को देखकर भारतीयो के हृदयो म विशेष उत्साह का सचार हुआ। वे स्वराज्य को प्राप्त करने के लिए भरसक प्रयत्न करने लगे। इस समय काग्रेस का नेतृत्व महात्मा गान्धी के हाथो मे आ गया था और काग्रेस को जनता का पूर्ण समर्थन प्राप्त हुआ।

(४) रोलेट ऐक्ट—रूसी क्रान्ति का भारत पर यह प्रभाव पडा कि भारत मन्त्री माण्टेग्यू को नई नीति की घोषणा करनी पडी। माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार (१६१६ ई०) से भारत को जो कुछ दिया गया था वह आशा से बहुत कम था। भारतीय जनता इससे बहुत असन्तुष्ट हुई। असन्तोष को देखकर सरकार ने घबराकर रोलेट ऐक्ट पेश किया जिसका एसेम्बली मे विरोध किया गया परन्तु सरकार ने कोई परवाह न करके इस ऐक्ट को पास कर दिया। इसके अनुसार किसी भी व्यक्ति को राजद्रोह के अभियोग मे सजा दी जा सकती थी। गान्धी जी के नेतृत्व मे सम्पूर्ण

इसने रौलट बिल का विरोध किया। यह पहला अवसर था कि राष्ट्रीय स्तर पर जन आन्दोलन चला।

(५) **जलियाँवाले बाग का हत्याकाण्ड**—१३ अप्रैल को बैसाखी के दिन पंजाब के अमृतसर नगर के जलियाँवाले बाग में नागरिकों की एक विशाल सभा हुई। पंजाब के गवर्नर सर माइकल ओडायर ने जनरल डायर को गोली चलाने का आदेश दे दिया और गोली तब तक चलती रही जब तक सारे कारतूस समाप्त नहीं हो गए। डॉ० पट्टाभि सीतारमैया ने लिखा है कि सरकार के अपने बयान के मुताबिक चार सौ मरे और घायलों की संख्या एक से दो हजार के बीच में थी।[1] मरनेवाले तथा घायल रात भर वहीं पड़े रहे और न तो उनको पीने का पानी मिला और न डाक्टरी या अन्य कोई सहायता ही मिली। इस अमानुषिक अत्याचार से भारत का सारा वातावरण क्षुब्ध हो उठा। जनता के क्रोध का दमन करने के लिए पंजाब में मार्शल-ला लागू किया गया। इसकी प्रतिक्रिया में अनेक स्थानों पर अंग्रेजों की हत्याएँ की गई और सरकारी थानों को फूँका गया।

(६) **असहयोग आन्दोलन**—जलियाँवाला बाग काण्ड तथा मार्शल ला के कारण गांधी जी की आत्मा बड़ी क्षुब्ध हो उठी। अतः उन्होंने असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। इस आन्दोलन में चार प्रमुख बातें थीं—(१) सरकार की सेवा में जो भारतीय काम कर रहे हैं वे त्यागपत्र दे दें ताकि ब्रिटिश शासकों के लिए इस देश पर शासन करना सम्भव न रह सके। (२) सरकार द्वारा संचालित व सहायता प्राप्त शिक्षालयों का बहिष्कार कर विद्यार्थी राष्ट्रीय विद्यालयों व विद्यापीठों में शिक्षा प्राप्त करें जिससे कि वे राष्ट्रीय हित की विरोधी शिक्षा के प्रभाव से अछूते रहें। (३) सब विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार कर स्वदेशी वस्तुओं और हाथ के बुने वस्त्रों का व्यवहार करें ताकि भारतीय उद्योग धंधों को प्रोत्साहन मिले। (४) सरकारी अदालतों का बहिष्कार किया जाए और पंचायतों द्वारा मुकदमों का निर्णय कराया जाए यही भारत के हित में लाभदायक होगा।

इस आन्दोलन का जनता पर बहुत प्रभाव पड़ा। हजारों विद्यार्थी कालेज तथा स्कूल छोड़ कर बाहर आ गये। अनेक व्यक्तियों ने सरकारी उपाधियों का त्याग कर दिया और नौकरियों से त्यागपत्र दे दिए। इसी समय से वे नये राष्ट्रीय शिक्षालय स्थापित हुए जिनमें नेशनल कालेज लाहौर, जामिया मिलिया इस्लामिया, बंगाल राष्ट्रीय विद्यालय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया गया और अनेक स्थानों पर विदेशी माल की होलियाँ जलाई गईं। इस प्रकार स्वदेशी माल व चरखा-कताई को प्रोत्साहन मिला।

देश ने इस आन्दोलन में गांधी जी का पूरा सहयोग दिया। इसी बीच गांधी जी ने गुजरात में बारडोली में 'कर न दो' आन्दोलन का संगठन किया। कुछ

१　डॉ० पट्टाभि सीतारमैया : कांग्रेस का इतिहास, पहला खण्ड, पृ० १३१

आन्दोलनकारियों ने गोरखपुर में चौरा चौरी नामक स्थान पर पुलिस चौकी पर आक्रमण करके कुछ पुलिस के सिपाहियों की हत्या कर दी। गांधी जी ने नाराज होकर इस आन्दोलन को स्थगित कर दिया परन्तु सरकार ने गांधी जी को गिरफ्तार कर ६ वर्ष की सजा देकर जेल में डाल दिया। इस आन्दोलन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि नारी, मजदूर वर्ग, अशिक्षित वर्ग तथा मुसलमानों ने इस आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। इस असहयोग आन्दोलन से राजनीतिक चेतना सारे भारत में व्याप्त हो गई।

(७) साइमन कमीशन का बहिष्कार—१९२७ ई० तक भारत का राजनीतिक वातावरण बहुत क्षुब्ध हो चुका था। स्थान-स्थान पर हुई हत्याओं, डकैतियों, गिरफ्तारियों से परेशान होकर तथा भारत में शासन सुधार सम्बन्धी परामर्श देने के लिए १९२७ ई० में सर जान साइमन के नेतृत्व में एक साइमन कमीशन भारत में आया। काले झण्डों के प्रदर्शन और साइमन वापस लौट जाओ के नारों से उसका स्वागत किया गया। प्रदर्शनकारियों पर अनेक जगह लाठियों की मार पड़ी। लाला लाजपत राय पर भी लाठियों के भीषण प्रहार हुए और इसी चोट से उनकी मृत्यु हुई। इससे क्रान्तिकारी भड़क उठे और उन्होंने विधान सभा के अधिवेशन में बम फेंके। परिणाम यह हुआ कि लालाजी पर किये गये अत्याचार का बदला लेने के लिए भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव नामक क्रान्तिकारियों ने लाहौर के पुलिस अधिकारी की गोली से उड़ा दिया जिस पर तीनों देशभक्तों को फाँसी की सजा मिली।

(८) स्वाधीनता का घोषणा-पत्र—१९२९ ई० में जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व में कांग्रेस ने लाहौर के अधिवेशन में पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति को ही अपना उद्देश्य निश्चित किया। २ जनवरी १९३० ई० में नई कार्यसमिति की बैठक हुई और उसमें निश्चय किया गया कि देश भर में पूर्ण स्वराज्य दिवस मनाया जाए। इसके लिए २६ जनवरी १९३० ई० का दिन नियत हुआ। इस घोषणा-पत्र का मसौदा निम्नलिखित था

हम भारतीय प्रजाजन भी अन्य राष्ट्रों की भाँति अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं कि हम स्वतन्त्र होकर रहें, अपने परिश्रम का फल स्वयं भोगें और हमें जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक सुविधाएँ प्राप्त हों जिससे हम भी विकास का पूरा मौका मिले। हम यह भी मानते हैं कि यदि कोई सरकार यह अधिकार छीन लेती है और प्रजा को सताती है तो प्रजा को उस सरकार को बदल देने या मिटा देने का भी अधिकार है। अंग्रेजी सरकार ने भारतवासियों की स्वतन्त्रता का ही अपहरण नहीं किया है बल्कि उसका आधार भी गरीबों के रक्तशोषण पर है और उसने आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भारत का नाश कर दिया है। अतः हमारा विश्वास है कि भारतवर्ष को अंग्रेजों से सम्बन्ध विच्छेद करके पूर्ण स्वराज्य या स्वाधीनता प्राप्त कर लेनी चाहिए।[1]

---

१ डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या कांग्रेस का इतिहास प्रथम भाग पृ० २८८

इस दिन सार्वजनिक सभाएँ की गईं और सारे भारत में स्वाधीनता दिवस मनाया गया तथा जनता ने पूर्ण स्वाधीनता के घोषणा-पत्र का अनुमोदन कर दिया।

(६) सत्याग्रह आन्दोलन—१९३० ई० में महात्मा गांधी ने सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। दांडी नामक स्थान पर गांधी जी ने नमक कानून को तोड़ कर यह वक्तव्य प्रकाशित किया— 'नमक कानून विधिवत् भंग हो गया है।' इस आन्दोलन का मुख्य भाग नमक कानून को तोड़ना था पर साथ ही कांग्रेस ने यह आदेश भी दिया कि विदेशी वस्त्र की दुकानों और शराब की भट्टियों पर धरना दिया जाय और किसान सरकार को मालगुजारी अदा न करें। शीघ्र ही यह आन्दोलन सारे देश में फैल गया और जेल जाने वाले व्यक्तियों की संख्या एक लाख बारह हजार के लगभग हो गया। सरकार ने सत्याग्रहियों को न केवल गिरफ्तार किया उनके साथ मारपीट भी की। इस सत्याग्रह में महिलाओं ने विशेष सहयोग दिया। इस सम्बन्ध में डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या ने लिखा है 'पुलिस प्रदर्शनों का दमन करने का निश्चय कर चुकी थी। स्त्रियों ने जुलूसवालों को पानी पिलाने के लिए भिन्न भिन्न स्थानों पर पानी के बड़े-बड़े बर्तन रख छोड़े थे। पुलिस ने पहले तो इन बर्तनों को ही तोड़ा। फिर स्त्रियों को बलपूर्वक तितर बितर कर दिया। यह भी कहा जाता है कि जब स्त्रियाँ गिर गईं तो पुलिस वाले उनके सीनों को बूटों से कुचलते हुए चले गए।'[1] यह आन्दोलन पहले के आन्दोलनों से अधिक संगठित था। यद्यपि पुलिस ने प्रदर्शनकारियों पर भयंकर अत्याचार किए फिर भी स्वयंसेवकों में अनुशासनहीनता नहीं आई। यू पी मन के संवाददाता वेबमिलर साहब ने इस मारपीट के घृणित दृश्य पर इस प्रकार प्रकाश डाला— 'मैं २२ देशों में १८ वर्ष से संवाददाता का काम कर रहा हूँ। इस अर्से में मैंने असंख्य उपद्रव, मारपीट और विद्रोह देखे हैं किन्तु धरसाना के से पीड़ा-जनक दृश्य मेरे देखने में कभी नहीं आए। कभी-कभी ये इतने दुःखद हो जाते थे कि क्षण भर के लिए आँख फेर लेना पड़ता थी। स्वयंसेवकों का अनुशासन अद्भुत चीज थी। मालूम होता था इन लोगों ने गांधीजी के अहिंसा धर्म को पान कर पी लिया है।'[2] परिणाम यह हुआ कि १९२०-२१ ई० के असहयोग आन्दोलन तथा १९३०-३१ ई० के सत्याग्रह आन्दोलन से सर्वसाधारण जनता में अन्याय का विरोध करने की शक्ति और स्वराज्य की आकांक्षा उत्पन्न हो गई और भारत में एक ऐसी जागृति प्रादुर्भूत हुई जिससे ब्रिटिश शासन का इस देश में स्थिर रह सकना असम्भव सा हो गया। इसी बीच गांधीजी ने भारतीय समाज में एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया जो कि खादी प्रचार, अछूतोद्धार तथा हिन्दू मुस्लिम एकता से सम्बन्धित था और इस कार्य का स्वराज्य प्राप्ति में विशेष योगदान रहा है।

---

१ डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या कांग्रेस का इतिहास प्रथम भाग पृ० ३१९
२ वही पृ० ३३३-३३४

(१०) १९३५ ई० का गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट—साइमन कमीशन की रिपोर्ट और गोलमेज परिषदों के निर्णयों को ध्यान में रखकर ब्रिटिश सरकार ने भारत के शासन में अनेक महत्त्वपूर्ण सुधार किए और इस प्रयोजन से १९३५ ई० में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने एक नया गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट स्वीकार किया।

इस एक्ट के अनुसार भारतीय शासन में जो आवश्यक सुधार किए गए थे उनमें जनता में सन्तोष नहीं हुआ। प० जवाहरलाल नेहरू ने इस विषय में कहा कि इस एक्ट से ब्रिटिश सरकार की देशी रियासतों जमींदारों और भारत के अन्य प्रतिक्रियावादी वर्गों से मित्रता और भी अधिक दृढ़ हो गई। पृथक निर्वाचन-पद्धति का अनुसरण कर इसने पृथक्त्व की प्रवृत्तियों को शक्ति प्रदान की। इस ऐक्ट ने ब्रिटिश व्यापार, उद्योग, बैंकिंग और जहाजी व्यवसाय को जिसका भारत में पहले ही प्रभुत्व था, अब और भी सुदृढ़ कर दिया। इस ऐक्ट में ऐसी धाराएँ स्पष्ट रूप से रख दी गई कि उनकी (ब्रिटिश व्यापार आदि की) स्थिति पर रोक या पाबन्दियां नहीं लगाई जा सकती। इस एक्ट के अनुसार वायसराय को पहले से कहीं अधिक शक्ति मिल गई।

यद्यपि कांग्रेस ने १९३५ ई० का भारतीय विधान स्वीकार नहीं किया था, लेकिन ब्रिटिश सरकार को अपनी शक्ति का परिचय देने के लिए उसने चुनावों में भाग लिया और सात प्रान्तों में कांग्रेस सरकार बनी। पंजाब तथा बंगाल में लीग का बहुमत रहा। १९३९ ई० में द्वितीय विश्वयुद्ध आरम्भ होने पर कांग्रेसी सरकारों ने त्यागपत्र दे दिये, फिर भी इस छोटी सी अवधि में इन सरकारों ने कानून, शिक्षा, समाज-सुधार तथा स्वास्थ्य आदि के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य किए।

(११) द्वितीय विश्वयुद्ध का भारतीय राजनीति पर प्रभाव—१९३९ ई० में द्वितीय विश्वयुद्ध आरम्भ हो गया, और इसकी आग सारे संसार में भड़क उठी। फासिस्ट देश जर्मनी इटली तथा जापान एक हो गये तथा दूसरी ओर ब्रिटेन, फ्रांस तथा रूस में सन्धि हुई जो मित्र राष्ट्र कहलाए। युद्ध के आरम्भ होते ही वायसराय ने भारतीयों की आवश्यक सम्मति लिए बिना ही भारत को युद्ध में सम्मिलित कर दिया। इस युद्ध ने राष्ट्रीय चेतना को बहुत ही जागरूक बना दिया और अन्तरराष्ट्रीय राजनीति भी एक गहन मनन का विषय बन गई। इस युद्ध से उत्पन्न अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितियों के कारण ब्रिटेन तथा अमेरिका ने अटलांटिक चार्टर की घोषणा की कि प्रत्येक देश को अपनी पसन्द की सरकार चुनने का अधिकार मिलना चाहिए, परन्तु ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री चर्चिल भारत के लिए इस नीति के समर्थक न थे। ब्रिटिश सरकार ने भारत से युद्ध के लिए सहायता माँगी तो कांग्रेस ने कुछ माँग रखी जिसमें युद्ध का स्पष्टीकरण और स्वच्छापूर्ण शासन प्रबन्ध की माँगें प्रमुख थी परन्तु सरकार ने इन मांगों को ठुकरा दिया और भारतीयों ने सरकार की कोई सहायता नहीं की।

इसी समय सुभाषचन्द्र बोस ने आजाद हिन्द सेना का संगठन कर ब्रिटिश

शेष हिन्दू बहुमत प्रान्तों ने मान लिया। १९४६ ई० में चुनाव हुए और पं० जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में अस्थायी सरकार बनी, जिसमें मुस्लिम लीग ने भाग नहीं लिया। मुस्लिम लीग ने साम्प्रदायिक दंगों का सहारा लेकर तथा अस्थायी सरकार में अपने प्रतिनिधि भेजकर उसे असफल बनाने का भरसक प्रयत्न किया। आचार्य जावडेकर के मतानुसार मुस्लिम लीग द्वारा किए गए इन दंगों में कुछ यूरोपीय अधिकारी तथा कुछ नरेश भी शामिल हो गए थे।[1] सेना वायसराय के हाथ में होने के कारण नेहरू सरकार इन दंगों को रोक नहीं पायी। अतः कांग्रेस को पाकिस्तान की माँग स्वीकार करनी पड़ी ताकि राष्ट्र तथा जनता को आवश्यक सुरक्षा प्रदान की जा सके।

३ जून १९४७ ई० को पाकिस्तान की माँग पूर्ण रूप से स्वीकार कर ली गई। अन्त में सरकार ने घोषणा की कि मुस्लिम बहुमत वाले भाग पंजाब, बंगाल और उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त, सिंध तथा आसाम का कुछ भाग मिलाकर पाकिस्तान के नाम से एक स्वतन्त्र राज्य होगा और शेष भारत भी स्वतन्त्र राज्य कहलाएगा। १५ अगस्त १९४७ ई० को इन दोनों राज्यों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान कर दी गई।

(ग) १९४७-१९५० ई०— स्वतन्त्र भारत के सामने समस्याएँ एवं भविष्य के प्रति आस्था

(१) साम्प्रदायिक दंगे—१५ अगस्त १९४७ ई० को भारत को स्वतन्त्रता मिली। पूर्वी बंगाल और पश्चिमी पंजाब के भाग पाकिस्तान में चले गए। इन दोनों स्थानों पर मुसलमानों की जनसंख्या अधिक और हिन्दुओं की जनसंख्या थोड़ी थी। इस विभाजन का सबसे भयंकर दुष्परिणाम यह हुआ कि पाकिस्तान में हिन्दुओं का रहना असम्भव हो गया और मुसलमानों ने हिन्दुओं को मारना-काटना, लूटना, उनके घरों में आग लगाना और उनकी स्त्रियों का अपमान करना आरम्भ कर दिया। परिणामस्वरूप साम्प्रदायिक दंगे आरम्भ हो गये। ऐसी स्थिति में हिन्दू लोग भाग कर भारत आने लगे। इन दंगों में हजारों व्यक्ति मारे गये और लाखों की सम्पत्ति लूटी या नष्ट की गई और लाखों लोग बेघरबार हो गये। इस प्रकार भागकर आए शरणार्थियों की समस्या सरकार के सामने आ पड़ी।

(२) शरणार्थियों के पुनर्वास की समस्या—पाकिस्तान से भागकर आए शरणार्थियों की संख्या लगभग ८५ लाख थी। भारत सरकार के सामने उनके बसाने की, रोजगार की, अन्न-वस्त्र की और शिक्षा की समस्या थी। सर्वप्रथम सरदार पटेल ने शरणार्थी सहायता कोष की स्थापना की। इसके पश्चात् शरणार्थियों को सरकारी संरक्षण प्रदान किया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना में इस क्षेत्र पर विशेष ध्यान दिया गया। सरकार को इनके बसाने में करोड़ों रुपये व्यय करने

---

1 आचार्य शंकर दत्तात्रय जावडेकर, आधुनिक भारत पृ० ५४३

हैं—समानता का अधिकार, स्वतन्त्रता का अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार, धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार, संस्कृति और शिक्षा का अधिकार, सम्पत्ति का अधिकार तथा संवैधानिक उपचारों का अधिकार और ये अधिकार प्रत्येक नागरिक के लिए सुरक्षित हैं। इन अधिकारों के अतिरिक्त भारतीय संविधान में राज्य की नीति के निर्देशक सिद्धान्तों का भी उल्लेख है जिनके द्वारा प्रत्येक नागरिक उन्नति कर सकता है।

भारतीय संविधान भारत को एक धर्म निरपेक्ष राज्य घोषित करता है। राज्य का अर्थ है कि धर्म के सम्बन्ध में राज्य किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगा। अस्पृश्यता को हमारे संविधान में दण्डनीय माना गया है और ऊँच-नीच की भावना को समाप्त करके समानता की भावना को प्रोत्साहित किया गया है। अभी तक हमारे समाज में स्त्रियों की दशा बहुत ही खराब थी जिसके निवारणार्थ संविधान में स्त्रियों और पुरुषों को समान अधिकार प्रदान किए गए हैं। राज्य की नीति के निर्देशक तत्त्वों में समाज-कल्याण-सम्बन्धी अनेक बातें कही गई हैं, जैसे ग्राम पंचायतों का संगठन, शिक्षा तथा लोककल्याण-सम्बन्धी कार्य, सबके लिए समुचित रोजगार, कृषि तथा पशु-पालन, जनता का स्वास्थ्य आदि।

स्वतन्त्रता से पहले व्यक्ति के विकास की कोई समुचित व्यवस्था नहीं थी प्रत्येक दृष्टि से उसका शोषण होता था और न्याय की तो उसको आशा ही नहीं थी। संविधान के लागू होने पर हमें भविष्य के प्रति आशा हुई कि भारत विभिन्न क्षेत्रों में उन्नति करेगा तथा दूसरे विकसित देशों के समान हो जायगा। प्रत्येक व्यक्ति को निष्पक्ष भाव से उन्नति करने का समान अवसर प्रदान किया जाएगा एव उसके इस अधिकार का अपहरण करने पर उचित न्याय भी दिया जायगा।

(घ) १९[illegible]–१९६[illegible] ई० मूल्य निर्माण की प्रक्रिया

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत के नागरिक को आशा हुई कि उसके जीवन में एक नया मोड़ आएगा और वह उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होगा। संविधान में उसके अधिकार सुरक्षित हो गये थे एवं उसे विचारों की स्वतन्त्रता भी मिल चुकी थी। उसने भारत सरकार के सामने चुनावों में अपनी समस्याएँ प्रकट की एवं सरकार ने इन समस्याओं को दूर करने का भरसक प्रयत्न भी किया। जमींदारी उन्मूलन कानून, फैक्टरी-कानून, न्यूनतम वेतन कानून, बालक-श्रम कानून, प्राविडेन्ट फण्ड एक्ट, कर्मचारी बीमा कानून, किराएदारी कानून आदि समाज के लाभ को दृष्टिगत करके बनाये गये हैं और इन कानूनों से समाज को बहुत लाभ हुआ है। इसके अतिरिक्त जीवन बीमा के कारोबार का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया है। सरकार ने मजदूरों के स्वास्थ्य कारखानों के साथ चिकित्सालय, प्रसूति-गृहों का निर्माण, शिशु-पालन एवं वृद्ध-उद्योगों की ओर विशेष ध्यान दिया है।

हिन्दू-कोड का मिलना, अस्पृश्यता अधिनियम १९५५ ई० का लागू होना

पिछड़ी जातियों की शिक्षा की ओर ध्यान देना, एवं उनकी सेवाओं को सुरक्षित करना तथा उनके स्तर को उठाना आदि दिशाओं में सरकार ने बहुत प्रशंसनीय कार्य किया है। जनता के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिए तथा उनके स्वास्थ्य के लिए मद्य निषेध की नीति को अपनाया गया है। इसके अतिरिक्त ग्राम्य जीवन को उच्च स्तर पर लाने के लिए ग्राम पंचायतों के संगठन की दिशा में विशेष प्रगति हुई है। भारत सरकार ने हिन्दी का प्रचार करने के लिए हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित कर दिया है।

भारत सरकार ने अन्तरराष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा में 'पंचशील' के सिद्धान्त को अपनाया है। स्वर्गीय पं० जवाहरलाल नेहरू ने १९५४ ई० में विश्व-शान्ति स्थापित करने के लिए अपनी परराष्ट्र नीति को पंचशील के सिद्धान्तों में प्रतिपादित किया, जिनका वर्णन इस प्रकार है—(१) दूसरे देश की सार्वभौमिकता एवं प्रादेशिक अखण्डता का सम्मान (२) अनाक्रमण (३) दूसरे देश के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना, (४) समानता तथा पारस्परिक लाभ और (५) शांतिपूर्ण सह अस्तित्व।

इस प्रकार सरकार ने सामाजिक जीवन को उच्च स्तर पर लाने के लिए प्रयास किया एवं इसमें वह काफी हद तक सफल भी रही। सरकार की नीति कानूनों तथा सहायता से जनता को बहुत लाभ हुआ और आपस के सम्बन्धों में भी सुधार हुआ। वह एक दूसरे के अधिक निकट आई एवं सामाजिक सम्बन्धों का आदान प्रदान हुआ। परिणामस्वरूप सामाजिक मूल्यों की स्थापना होने लगी और समाज उन्नति की ओर अग्रसर हुआ।

(ड) गतिरोध

भारत सरकार ने सामाजिक जीवन को ऊँचा उठाने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं को कार्यान्वित किया है। इसी उद्देश्य से विदेशों से आर्थिक सहायता भी ली जा रही है। परन्तु इसके साथ-साथ कुछ गतिरोध भी अवश्य आए हैं जिन्होंने विकास के मार्ग में बाधा डाली है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही विस्थापितों की समस्या आई जिस पर सरकार का करोड़ों रुपया खर्च हुआ है और इसमें लगभग १० वर्ष का समय लग गया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् कई बार चुनाव हो चुके हैं जिनमें बहुत रुपया खर्च हुआ। इसके अतिरिक्त, २० अक्तूबर, १९६२ को चीन ने भारत पर आक्रमण कर दिया एवं इससे भारत को जानी तथा माली हालत को बहुत नुकसान पहुँचा। संसद में प्रकट किए सरकारी अनुमान के अनुसार २० अक्तूबर के बाद हमारी सैनिक क्षति ६७६५ थी जिसमें २२४ मृत तथा ४६८ घायल सैनिक शामिल थे। गायब हुए और बन्दी बनाये गये सैनिकों की संख्या इस प्रकार लगभग ६००० थी।[१]

---

[१] डॉ० आर० मानकेकर सन ६२ के अपराधी कौन ? पृ २७

इस प्रकार सरकार की आर्थिक स्थिति अस्त-व्यस्त हो गई और सामाजिक जीवन का समुचित विकास नहीं हुआ। इसके अतिरिक्त हिन्दी राजनीति ने चुनावों एवं सामान्य जीवन में असामाजिक तत्वों को प्रश्रय दिया जिससे जीवन में और भी गतिरोध आया। चुनावों में दल-बदल की प्रक्रिया, भाषा, प्रान्तीयता, जातीयता, धार्मिकता तथा भ्रष्टाचार का आश्रय लिया जाता है जिससे मनुष्य का निर्णय उलझ जाता है कि वह किसको अपना मत प्रदान करे और किस को नहीं। शिक्षित बेकारी तथा निर्धनता ने भी सामाजिक जीवन में गतिरोध उत्पन्न किए हैं। आज की बढ़ती हुई श्रमिक अशान्ति ने भी गतिरोध में सहायता दी है। इसके अतिरिक्त आर्थिक अभाव ने भी सामाजिक विकास में व्यवधान उत्पन्न किया है। निष्कर्ष यह हुआ कि आज का मनुष्य कुछ दिग्भ्रान्त है और जीवन के एक चौराहे पर खड़ा है तथा उसे यह ज्ञान नहीं है कि किधर जाए और क्या करे।

सामाजिक प्रतिमानों का विकास

प्राचीन भारत में गाँव के लोग आर्थिक समस्याओं में उलझे रहने के कारण सामाजिक रूप से अधिक विकसित नहीं हो सके, क्योंकि उस समय शिक्षा का इतना प्रचार नहीं हुआ था। भारतीय हिन्दू समाज ग्राम-पंचायतों, जाति-व्यवस्था और संयुक्त-परिवार द्वारा ही नियन्त्रित होता था। उचित शिक्षा तथा ज्ञान के अभाव में समाज में रूढ़ि, परम्परा, रीति-रिवाज तथा धर्म के नाम पर अनेक बुराइयों का जन्म हो गया। परिणामस्वरूप समाज में परिवर्तन न हो सका और विकृतियों ने समाज को अविकसित बना दिया।

शताब्दियों से नारी मानवीय भूमि पर न रहकर उपभोग्या सामग्री की तरह थी। वह जीवन भर पिता, पति तथा पुत्र के संरक्षण में पलती थी। न स्त्री स्वातन्त्र्यमनु के अनुसार उसे स्वतन्त्रता का अधिकार न था। स्त्री के विधवा होने पर उसको पति की चिता पर भस्म होना एवं समाज का सम्मान में भाग लेना गौरव की बात मानी जाती थी।

वर्ण-व्यवस्था के आदर्शों के अनुसार शूद्र को अछूत समझा जाता था तथा उसकी उन्नति का कोई भी मार्ग प्रशस्त नहीं था। खान-पान तथा विवाह के नियम इतने कठोर थे कि एक जाति दूसरी जाति से निकट नहीं आ सकती थी। ईश्वर की कल्पना अनेक रूपों में की गई और प्रत्येक जाति अपने-अपने ढंग से अपने इष्टदेव की अनुयायी बन गई। पुरोहित वर्ग ने अन्धविश्वास के कारण समाज में सामाजिक मान्यताओं, विचारों और धार्मिक विषयों को विकृत किया। उचित धार्मिक चिन्तन न रहने के कारण अन्धविश्वास तथा कुरीतियों का पालन करना ही समाज का मुख्य धर्म रह गया।

इन परिस्थितियों में ईसाई मिशनरियों ने धर्म प्रचार के साथ ही समाज सेवा तथा नवीन सामाजिक विचारों का प्रचार आरम्भ किया। परिणामस्वरूप

भारत का शिक्षित वग इस नए सामाजिक विचार-दशन स प्रभावित हुआ एव अपन परम्परागत रूढ़िवादी समाज स छुटकारा पान के लिए प्रयास करने लगा। अंग्रेजी शिक्षा स प्रभावित व्यक्ति यूरोपीय विचार दशन क प्रति आकृष्ट हुआ और अपन समाज, सस्कृति तथा धम क प्रति घृणा करन लगा। यह दखकर भारतीय विचारकों की दृष्टि इस ओर गई और विभिन्न सामाजिक, धार्मिक आन्दोलनों का जन्म हुआ।

(क) समाज सुधार— विविध आन्दोलन

(१) ब्राह्म समाज—सवप्रथम राजा राममोहन राय न आधुनिक सामाजिक विचारों को प्रतिष्ठित करने के लिए ब्राह्म समाज की नीव डाली। इस सस्था म व व्यक्ति थे जो मूर्ति पूजा के विरोधी थे और ईश्वर मे विश्वास रखते थ। राजा राममोहन राय ने यूरोपीय प्रगतिशील तत्त्वों को पहचान कर पहलीबार सती प्रथा को ब द किया। उनके मतानुसार बगाल म सती प्रथा दस गुनी अधिक है जिसका कारण बहुविवाह प्रथा है। बहुविवाह प्रथा का एकमात्र कारण था—नारी को साम्पत्तिक अधिकारों स वचित करना। सवप्रथम राजा राममोहन राय ने ही प्राचीन शास्त्रकारों की सम्मतियाँ उद्धृत करके बतलाया था कि प्राचीन भारत मे भी लडकी को चौथाई भाग तथा विधवा होने के पश्चात् माता एव पुत्र को सम्पत्ति पर समान अधिकार होता था जिसे स्वार्थी पुरुषो न समय पाकर इन अधिकारों को छीन लिया। उन्होंने विधवा विवाह की माँग की और बहुविवाह का विरोध किया।

राजा राममोहन राय के पश्चात् देवेन्द्रनाथ टगोर ने इस दिशा म कोई विशेष काय नही किया। केशवचन्द्र सेन के सामाजिक सुधार का मुख्य विषय नारी समस्याएँ थी। नारी शिक्षा, विधवा विवाह, बाल विवाह का विरोध, परदे को हटाना तथा अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहन दिया गया। उन्होंने अकाल तथा महामारी से पीडित जनता म भोजन तथा आवश्यक वस्तुएँ बाँटकर जन कल्याण की सवा का आदश प्रस्तुत किया। सबस बढकर मूर्ति पूजा का विरोध किया गया। अन्तर्जातीय विवाह को स्वीकार करके वण व्यवस्था के आधार को ही हिला दिया गया जिससे समाज की जागृति म एक नया मोड़ आया।

(२) प्रार्थना समाज—उन्नीसवी सदी के हिन्दू-नवोत्थान की मूल प्रेरणा सामाजिक थी और इस युग के नेता सामाजिक सुधारों की ओर अधिक झुके हुए थे। १८४९ ई० मे बम्बई मे परमहस समाज नामक एक सस्था थी जो सामाजिक सुधार के काय किया करती थी। फरकुहर के मतानुसार इस सस्था का सदस्य वही हो सकता था जो ईसाई तथा मुसलमान का बनाया भोजन खा सके।[1] १८६७ ई० म केशवचन्द्र

1 No one would become member unless he was willing to eat bread made by a christian and drink water brought by a mohammaden
—Farquher *Modern Religious Movements in India* p 5

सेन के प्रयास से इसी संस्था को प्रार्थना-समाज का रूप मिला, जिसके मुख्य चार उद्देश्य थे—(१) जाति प्रथा का विरोध (२) विधवा विवाह का समर्थन, (३) स्त्री शिक्षा का प्रचार और (४) बाल विवाह का विरोध। इस संस्था ने अनेक अनाथालयों, विधवाश्रमों और रात्रि पाठशालाओं की स्थापना की तथा अछूतों की दशा को सुधारने के लिए एक 'दलितोद्धार मिशन' स्थापित किया। प्रार्थना-समाज की विशेषता यह है कि यह धार्मिक न होकर सामाजिक संस्था ही रहा। इस समाज के सामने सदैव 'मनुष्य की सेवा में ही ईश्वर का प्रेम है' उद्देश्य रहा। इस समाज की सबसे अधिक सेवा महादेव गोविन्द रानाडे ने की जिनके प्रयास से १८८८ ई० में 'भारतीय राष्ट्रीय सामाजिक सम्मेलन' की स्थापना हुई। इस समाज की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि इसने व्यावहारिक पक्ष की अवहेलना कभी नहीं की।

(३) आर्य समाज—हिन्दू जाति का पुनरुद्धार करने के लिए जिन विविध आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ उनमें आर्य समाज का स्थान सबसे ऊँचा है। आर्य समाज का प्रभाव समूचे भारत में सारी जनता पर पड़ा। आर्य समाज की स्थापना १८७५ ई० में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने की थी। इस समाज की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि यह एक बड़े वर्ग के सीमित क्षेत्र में न रहकर विशाल जनता तक पहुँच गया। स्वामी दयानन्द ने अपने सिद्धान्तों का प्रचार हिन्दी भाषा में किया जिसे साधारण जनता समझ सकती थी। आर्य समाज ने समाज में व्याप्त अशिक्षा को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया। इस समाज ने जाति-व्यवस्था का कड़ा विरोध किया और दृढ़तापूर्वक घोषित किया कि जाति-व्यवस्था का आधार जन्म न होकर गुण कर्म तथा स्वभाव होना चाहिए और प्रत्येक व्यक्ति अपने श्रम तथा योग्यता के अनुसार उच्च जाति प्राप्त कर सकता है। इस सम्बन्ध में आचार्य जावडेकर का कथन है कि 'चातुर्वर्ण्य जन्म सिद्ध नहीं गुण कर्म पर अवलम्बित होना चाहिए और जिसमें जिस वर्ग के गुण हों उसे उसी वर्ग के अधिकार मिलने चाहिए।'[1]

आर्य समाज का विश्वास था कि जब तक अछूत वर्ग शिक्षित नहीं होगा, तब तक इसे उच्च वर्ग के समकक्ष नहीं माना जायगा। अतः उसने इस वर्ग की शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया। आर्य समाज ने यह भी बतलाया कि वैदिक युग में स्त्रियों को शिक्षा तथा विवाह का पूर्ण अधिकार प्राप्त था और इसलिए स्त्रियों में जागृति उत्पन्न करने के लिए नारी शिक्षा पर अधिक बल दिया। इस समाज ने बाल विवाह का भी कड़ा विरोध किया और इस बात पर बल दिया कि विवाह के समय लड़की की आयु १६ वर्ष तथा लड़के की आयु २५ वर्ष होनी चाहिए। विधवा विवाह पर आवश्यक जोर दिया गया। ऊँच-नीच तथा मूर्ति-पूजा का विरोध किया गया। इसके अतिरिक्त अनेक विद्यालय, कालेज, अनाथालय, विधवा

---

१ आचार्य शंकर दत्तात्रय जावडेकर : आधुनिक भारत पृ० ६६

श्रम, चिकित्सालय तथा आश्रमों की स्थापना की गई। आर्य समाज पर निरन्तर दूसरे धर्मों के प्रहार होते रहे परन्तु कोई भी इस पर हावी न हो सका। रामधारी सिंह दिनकर का मत है कि 'ईसाई मत और इस्लाम के आक्रमणों से हिन्दुत्व की रक्षा करने में जितनी मुसीबतें आर्य समाज ने झेली हैं उतनी किसी और संस्था ने नहीं।'[1] इस समाज ने हिन्दुत्व का पुनरुद्धार करने में अथक परिश्रम किया और इसीलिए यह संस्था आज भी जीवित है।

(४) थियोसाफिकल सोसायटी— थियोसाफिकल सोसायटी की स्थापना १८७५ ई० में न्यूयार्क में एक रूसी महिला हेलना पट्रोवना ब्लेवास्की और न्यूयार्क के कर्नल आलकाट द्वारा हुई। ये दोनों प्रेत विद्या के जानकार थे। इस संस्था का उद्देश्य उन अगोचर नियमों का अनुसंधान और प्रचार करना था, जिनके आधार पर यह सृष्टि संचालित होती है परन्तु बाद में इसके उद्देश्य विशद और विस्तृत हो गये। ब्लेवास्की और आलकाट १८७९ ई० में भारत आये और १८८२ ई० में इन्होंने थियोसाफी समाज का प्रधान कार्यालय मद्रास में स्थापित किया। श्रीमती एनी बेसेंट १८९३ ई० में भारत आई और आते ही वे भारत के सुधार सम्बन्धी कार्यों में भाग लेने लगीं तथा थियोसाफी समाज में सुधार कर इसके नाम को ऊंचा किया।

श्रीमती एनी बेसेंट मानती थीं कि वे पूर्व जन्म में हिन्दू थीं। श्रीमती बेसेंट का कहना था कि भारत अपनी सब समस्याओं का हल सुगमतापूर्वक कर सकता है बशर्ते कि भारत अपने प्राचीन आदर्शों और संस्थाओं का पुनरुद्धार कर ले। इसके बिना भारतीयों में देशभक्ति का विकास हो सकना सम्भव नहीं। उन्होंने इस बात पर विशेष बल दिया कि भारत में नव राष्ट्र का निर्माण तभी सम्भव है जब इस देश के लोग अपने धर्म, सभ्यता व संस्कृति के लिए गर्व अनुभव करने लगेंगे। इससे भारतीय जनता में जागृति तथा आशा का संचार हुआ। इस संस्था ने जाति-पांति, ऊँच-नीच, काले गोरे के भेदभाव का विरोध कर विश्व भ्रातृत्व की भावना को प्रोत्साहन दिया। श्रीमती बेसेंट ने हिन्दू धर्म की ईसाइयों के आक्रमण से रक्षा की और भारत के लिए राजनीतिक तथा सामाजिक सुधार का काम किया। उन्होंने संसार भर में हिन्दुत्व का प्रचार किया। श्रीमती बेसेंट ने बनारस में सैण्ट्रल हिन्दू स्कूल की स्थापना की, जिसका विकसित रूप आज हिन्दू विश्वविद्यालय है। रामधारीसिंह दिनकर ने उनकी सेवाओं के विषय में कहा है कि 'श्रीमती बेसेंट ने भारत में रहकर तो हिन्दुओं को जगाया ही, वे यूरोप अमेरिका और आस्ट्रेलिया जाकर वहाँ के लोगों को भी हिन्दू धर्म की गरिमा का ज्ञान कराती थीं और उनके इन प्रयत्नों से भारत के विषय में बाहर वालों की उत्सुकता एवं एक प्रकार की अस्पष्ट भक्ति बढ़ती जा रही थी।'[2]

---

१ रामधारीसिंह दिनकर: संस्कृति के चार अध्याय पृ० ५६७
२ वही पृ० ५७१

(ख) वर्णाश्रम-व्यवस्था मे परिवर्तन

(१) वर्ण-व्यवस्था मे परिवतन—समाजशास्त्रीय विचारा के क्षेत्र म वर्ण व्यवस्था वन्कि समाज शास्त्र की विश्व को महान् दन ह। काइ भी व्यक्ति स्वय सार काय नही कर सकता। उसे दूसरे मनुष्यो का सहारा लेना ही पडता है। यही स श्रम विभाजन के सिद्धात की आवश्यकता होती है। आर्यो ने सामाजिक व्यवस्था का मुख्य आधार प्रदान करने के लिए ही वर्ण व्यवस्था का अपनाया था। वेदा के अनुसार परम पुरुष के मुख म ब्राह्मण भुजाआ से क्षत्रिय उदर स वश्य तथा चरण स शूद्र की उत्पत्ति हुई है।[1] इस विभाजन के अनुसार वर्ण व्यवस्था व्यक्तिया के गुण व कर्मानुसार है, जन्म के आधार पर नही। इन चारा वर्णों के अपन अपन काय निश्चित हाते थे जिनका व आवश्यक रूप स पूरा करत थ।

(अ) ब्राह्मण—ब्राह्मण तीना वर्णो स श्रेष्ठ माना जाता था और धम का भी अधिकारी वही होता था। मनुस्मृति के अनुसार ब्राह्मण का कतव्य पढना, पढाना, यज्ञ करना कराना, दान दना तथा आवश्यकतानुसार थाडा ग्रहण करना बताया गया है। अपन धम का पालन करत हुए वह मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

(आ) क्षत्रिय—अपन समाज की आतरिक तथा बाह्य—दोना प्रकार स शत्रुआ म रक्षा करना क्षत्रिय का कतव्य है। शुक्र नीति के अनुसार जो लाक की रक्षा करन म चतुर हा शूर आत्म सयमी, पराक्रमी और दुष्टा को दबान म समथ हा, वही क्षत्रिय है। मनुस्मृति कहती है कि क्षत्रिय का धम प्रजा की रक्षा करना, दान, यज्ञ करना वद इत्यादि का पढना है।

(इ) वश्य—वैश्य का मुख्य कत्तव्य वाणिज्य कृषि उद्याग व पशु-पालन द्वारा समाज की आवश्यकता को पूरा करना है। मनु के मतानुसार वश्य को वेदाध्ययन का भी अधिकार प्राप्त है।

(ई) शूद्र—जा व्यक्ति उपयुक्त तीना वर्णो का काय करन म असमथ है, वह शूद्र की कोटि म गिना जाता है। शूद्र का कत्तव्य तीना वर्णो की सेवा करना है। वैदिक काल म शूद्रा को वेदाध्ययन का अधिकार था। महाभारत म भृगु ऋषि कहत हैं कि जो ब्राह्मण अपन पथ स विचलित हाकर हिंसा और असत्य को धारण करता है, वह शूद्र हो जाता है और इसीलिए उस वेदाध्ययन का अधिकार नही है।

समय क परिवतन के साथ साथ युग की मान्यताएँ भी बदल जाती हैं और इसी सिद्धात के अनुसार इन वर्णो को अपने अपने कम पर अहकार होने लगा। परिणाम यह हुआ कि इन वर्णो का आधार जन्म ही मान लिया गया और वतमान काल म प्राचीन वर्ण-व्यवस्था का ह्रास हा गया।

---

१ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्य कृत ।
ऊरूतदस्य यद्वश्य पद्भ्या शूद्रो अजायत ॥
ऋग्वेदसहिता दशम् मडल-पुरुषसूक्त मत्र स० १२

(५) अन्य समाज सुधारक— ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने शास्त्रों की सहायता से विधवा विवाह का समर्थन किया और उनके इस प्रयास से १८५६ ई० में विधवा विवाह कानून बना। इसके साथ साथ उन्होंने बहु-विवाह का भी कड़ा विरोध किया था। गोपालकृष्ण गोखले ने १९०५ ई० में भारत सेवक समाज की स्थापना की। गोखले ने हिन्दू मुस्लिम एकता पर बहुत बल दिया। इसके अतिरिक्त नारी शिक्षा, मजदूरों में सहकारी आन्दोलन तथा मेलों में यात्रियों की सहायता के लिए भी इस संस्था ने महत्त्वपूर्ण कार्य किए।

१९०६ ई० में जी० के० देवधर ने पूना में सेवासदन की स्थापना की। सेवासदन ने महिलाओं, अनाथों तथा पीड़ितों की अनेक प्रकार से सहायता की एवं स्त्रियों को नर्स तथा डाक्टरी की शिक्षा देकर उनके गौरव को बढ़ाया। भारत सेवक समाज के सदस्य श्री एन० एम० जोशी ने १९११ ई० में सामाजिक सेवा समिति की स्थापना औद्योगिक क्षेत्र बम्बई में की। इस समिति ने श्रमिकों के मनोरंजनात्मक कार्यों के अतिरिक्त उनकी सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं पर भी ध्यान दिया। १९१४ ई० में हृदयनाथ कुंजरू ने इलाहाबाद में अकाल, बाढ़, महामारी से पीड़ित जनता के लिए सेवा-समिति की स्थापना की। इस समिति ने अछूतों की सेवा के अतिरिक्त उनमें शिक्षा का भी प्रचार किया।

गांधीजी ने राजनीतिक समस्याओं के साथ-साथ सामाजिक समस्याओं पर भी विशेष ध्यान दिया। उन्होंने स्वदेशी धारण करने, हिन्दू मुस्लिम एकता स्थापित करने और अछूतोद्धार पर विशेष रूप से बल दिया। गांधीजी ने सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य शक्ति के मानदण्ड को परिवर्तित कर अहिंसा और सत्याग्रह आदि के नये मानदण्डों को राजनीतिक क्षेत्र में स्थापित किया। अहिंसा और सत्याग्रह का आधार शारीरिक न होकर आत्मिक बल था। उन्होंने नारी तथा पुरुष की समानता पर बल देते हुए कहा कि नारी को अबला कहना उसके प्रति अन्याय करना है। उन्होंने विधवा विवाह का दृढ़ शब्दों में समर्थन किया था। १९२१ ई० की जनसंख्या के विवरण के अनुसार १५ वर्ष से नीचे ३ लाख २१ हजार ७६ बाल विधवाएँ थीं। गांधीजी ने पर्दा प्रथा का विरोध किया और साथ ही नारी के प्रति रूढ़िवादी नैतिक दृष्टिकोण के लिए पुरुष वर्ग की आलोचना की। उनके मतानुसार नैतिक दृष्टिकोण अन्तर्मन से प्रवाहित होता है और पुरुष को कोई अधिकार नहीं कि वह नारी की पवित्रता का नियमन करे।[1] उन्होंने वर्ण-व्यवस्था के विषय में भी कहा कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे वर्ण का पेशा अपना सकता है और उसके अधिकार प्राप्त कर सकता है।

---

1 Why should men arrogate themselves the right to regulate female purity? It cannot be superimposed from without. It is a matter of evolution from within and therefore of individual self effort

—*Young India* 25 11 1926

(ख) वर्णाश्रम व्यवस्था में परिवर्तन

(१) वर्ण-व्यवस्था में परिवर्तन—समाजशास्त्रीय विचारों के क्षेत्र में वर्ण व्यवस्था वस्तिक समाज शास्त्र को विश्व को महान् देन है। कोई भी व्यक्ति स्वयं सारे कार्य नहीं कर सकता। उसे दूसरे मनुष्यों का सहारा लेना ही पड़ता है। यहीं से श्रम विभाजन के सिद्धान्त की आवश्यकता होती है। आर्यों ने सामाजिक व्यवस्था को सुदृढ़ आधार प्रदान करने के लिए ही वर्ण व्यवस्था को अपनाया था। वेदों के अनुसार परम पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय उदर से वैश्य तथा चरण से शूद्र की उत्पत्ति हुई है।[1] इस विभाजन के अनुसार वर्ण व्यवस्था व्यक्तियों के गुण व कर्मानुसार है जन्म के आधार पर नहीं। इन चारों वर्णों के अपने अपने कार्य निश्चित होते थे जिनको वे आवश्यक रूप से पूरा करते थे।

(अ) ब्राह्मण—ब्राह्मण तीनों वर्णों में श्रेष्ठ माना जाता था और धर्म का भी अधिकारी वही होता था। मनुस्मृति के अनुसार ब्राह्मण का कर्तव्य पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना कराना, दान देना तथा आवश्यकतानुसार थोड़ा ग्रहण करना बताया गया है। अपने धर्म का पालन करते हुए वह मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

(आ) क्षत्रिय—अपने समाज की आन्तरिक तथा बाह्य—नाना प्रकार के शत्रुओं से रक्षा करना क्षत्रिय का कर्तव्य है। शुक्र नीति के अनुसार जो लोक की रक्षा करने में चतुर हो, शूर, आत्म-संयमी, पराक्रमी और दुष्टों को दबाने में समर्थ हो वही क्षत्रिय है। मनुस्मृति कहती है कि क्षत्रिय का धर्म प्रजा की रक्षा करना, दान यज्ञ करना व इत्यादि का पढ़ना है।

(इ) वैश्य—वैश्य का मुख्य कर्तव्य वाणिज्य कृषि, उद्योग व पशु-पालन द्वारा समाज की आवश्यकता को पूरा करना है। मनु के मतानुसार वैश्य को वेदाध्ययन का भी अधिकार प्राप्त है।

(ई) शूद्र—जो व्यक्ति उपर्युक्त तीनों वर्णों का कार्य करने में असमर्थ है, वह शूद्र की कोटि में गिना जाता है। शूद्र का कर्तव्य तीनों वर्णों की सेवा करना है। वैदिक काल में शूद्रों को वेदाध्ययन का अधिकार था। महाभारत में भृगु ऋषि कहते हैं कि जो ब्राह्मण अपने पथ से विचलित होकर हिंसा और असत्य को धारण करता है, वह शूद्र हो जाता है और इसीलिए उसे वेदाध्ययन का अधिकार नहीं है।

समय के परिवर्तन के साथ-साथ युग की मान्यताएँ भी बदल जाती हैं और इसी सिद्धान्त के अनुसार इन वर्णों को अपने अपने कर्म पर अहंकार होने लगा। परिणाम यह हुआ कि इन वर्णों का आधार जन्म ही मान लिया गया और वर्तमान काल में प्राचीन वर्ण व्यवस्था का ह्रास हो गया।

---

१ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥
ऋग्वेद संहिता दशम् मंडल-पुरुषसूक्त, मंत्र सं० १२

वर्ण-व्यवस्था के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि किसी भी वर्ण का व्यक्ति दूसरे वर्ण के योग्य होने पर और परिश्रम के बल पर उस वर्ण के अधिकार प्राप्त कर सकता है। वर्ण व्यवस्था के सम्बन्ध में आचार्य क्षितिमोहन सेन का मत है कि जिस समाज में चरित्र, गुण, मनीषा, साधना और तपस्या की अपेक्षा जन्मगत जाति का आदर ही अधिक है वह समाज किसी प्रकार उन्नति के पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता। नारद, विदुर, व्यास आदि महापुरुषों का जन्म तो बहुत्तापयुक्त है किन्तु साधना और तपस्या के बल पर समाज में उन्हें कितना उच्च पद मिला था। हीन वर्ण में जन्म लेने से ही व्यक्ति हीन नहीं हो जाता। अनेक समय 'हीन' कहे जाने वाली जातियों में ऐसे महापुरुषों का जन्म होता है जिनके चरित्र की तुलना नहीं की जा सकती।[1]

जब जन्म को अधिक महत्व प्राप्त होने लगा तब चतुर्वर्ण ह्रासोन्मुख होकर जातियों के रूप में परिणत हो गया। जाति के मुख्य लक्षण हैं—वर्णानुक्रम सगोत्र विवाह तथा सहभोज-सम्बन्धी प्रतिबंध। परन्तु आज के युग में नवीन व्यवसायों और औद्योगिक प्रणाली ने इस जाति व्यवस्था को भी भंग कर दिया है। वर्ण व्यवस्था में निर्धारित पेशों पर निर्भर रहना कठिन हो गया तथा स्कूलों, होटलों तथा मिल-कारखानों में एक साथ बैठने के कारण जाति-भेद, खान-पान आदि के नियमों का पालन करना आवश्यक भी नहीं रहा। नवीन शिक्षा तथा समाज सुधार आन्दोलनों द्वारा फैलाई चेतना ने भी जाति व्यवस्था पर कठोर प्रहार किए। परिणामस्वरूप जाति-व्यवस्था टूटने लगी। वास्तव में जाति व्यवस्था ने आज के मनुष्य के विकास में बहुत बाधा पहुँचाई है। डा० राधाकृष्णन् का मत है कि, 'जाति प्रथा अनवरत एवं तुच्छता का एक साधन बन गई है और यदि यह अपने वर्तमान स्वरूप में बनी रही और चलती रही तो इससे विरक्त रहने वाले लोगों का यह निर्बल और अवचार बना रहेगी।'[2]

आज के वैज्ञानिक युग में पुरानी जातियाँ तो समाप्त हो रही हैं परन्तु विभिन्न व्यवसायों के आधार पर नए वर्ग बनते जा रहे हैं। आचार्य क्षितिमोहन सेन के मतानुसार अब शायद यह है कि एक ही जाति में आई० ए० एस० वालों की अलग जाति है, जैसे सुशिक्षित इंजीनियर, डाक्टर, प्रोफेसर, टीचर, क्लर्क—ये भिन्न भिन्न जातियाँ हैं। व्यवसायों में भी अर्थानुसार भेद हो गए हैं।[3] जाति भेद को समाप्त करने में आज की आर्थिक समस्याओं ने भी सहयोग दिया है। सामाजिक प्रतिष्ठा का परम्परागत आधार नष्ट होने पर इसका स्थान नवीन सामाजिक आर्थिक वर्गों ने ले लिया है।

---

१ आचार्य क्षितिमोहन सेन भारतवर्ष में जाति भेद पृ० १४१
२ डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन प्राच्य धर्म और पाश्चात्य विचार पृ० ४१४
३ आचार्य क्षितिमोहन सेन भारतवर्ष में जाति भेद पृ० १ ७

(२) सामन्त वर्ग—सामन्त वर्ग में स्वतन्त्र रियासतों के राजा और जमींदार दोनों ही आते है। ये प्राय अर्थात् धन सम्पत्ति के स्वामी होते थे। अंग्रेजों ने लगान वसूल करने के उद्देश्य से इन जमींदारों को जन्म दिया था। इसके पश्चात् साहूकार लोग भी किसानों की जमीनें छीनने लगे और जमींदार बनने लगे। सामन्त वर्ग प्राय विलासिता और शोषण का प्रतीक था। इस वर्ग में नारी को भोग की वस्तु समझा गया और इसी से बहु विवाह की प्रथा ने जन्म लिया। पर्दाप्रथा भी इसी वर्ग में सबसे अधिक रही। अनमेल विवाह भी इसी वर्ग मे अधिक होते थे। ये लोग सामाजिक सुधार के पक्षपाती नहीं थे। ए० आर० देसाई का मत है कि जमींदार वर्ग अधिकतर प्रगतिशील सामाजिक सुधारों का विरोध करता था।[1] सामन्त वर्ग ने रूढियों और पुरानी मान्यताओं का विशेष रूप से समर्थन किया। सामन्त वर्ग ने राष्ट्रीय आन्दोलन का भी विरोध किया, क्योंकि स्वाधीनता का अर्थ था, जनतन्त्र की स्थापना। जनतन्त्र की स्थापना से सामन्तवर्ग के अधिकारों को ठेस न पहुंचे, इसलिए इस वर्ग ने अंग्रेजों से समझौता तथा गुटबन्दी की। ब्रिटिश सरकार ने भी इनके अधिकारों की रक्षा की।

(३) पूंजीपति वर्ग—सामन्त वर्ग की तरह पूंजीपति वर्ग ने ब्रिटिश सरकार के साथ समझौता नहीं किया क्योंकि यह वर्ग अत्यन्त प्रतिभासम्पन्न, चतुर और धूर्त था। अत इस वर्ग ने अंग्रेजों का विरोध ऊपरी तौर पर किया तथा राष्ट्रीय आन्दोलन का समर्थन भी किया। दिखावे के लिए पूंजीपतियों वर्ग ने स्वदेशी और बहिष्कार आन्दोलनों को सफल बनाने मे सहयोग भी प्रदान किया और द्वितीय विश्व-युद्ध के पश्चात् पूंजीपति वर्ग ने विदेशी पूंजीपतियों से समझौते करके नए नए उद्योग को जन्म दिया। इनका उद्देश्य था कि माल विदेशों में बनता रहे तथा राष्ट्रीय ट्रेड मार्क लगाकर उसे भारत मे बेचा जाए। इस प्रकार इस विधि से राष्ट्र का हित नहीं होता वरन् पूंजीपतियों का व्यक्तिगत लाभ होता है। इस वर्ग ने वैज्ञानिक शिक्षा तथा अन्य वैज्ञानिक भौतिक साधनों की उन्नति में भी सहयोग प्रदान किया है। सामन्त वर्ग अधिकतर किसानों का शोषण करता था और पूंजीपति वर्ग प्रत्यक्ष रूप से मजदूरों का। परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से किसानों तथा सामन्त आदि का भी शोषण करता था। मिलों और कारखानों का सारा लाभ इसी पूंजीपति वर्ग को मिलता था। परिणाम यह हुआ कि देश के समस्त उद्योगों पर कुछ घरानों का अधिकार हो गया। पूंजी के इस केन्द्रीकरण से श्रमिक वर्ग का शोषण और तीव्र हो गया जिससे इस वर्ग में चेतना आई और उसे अपने अधिकारों का ध्यान आया। इस तरह श्रमिक आन्दोलन को बल प्राप्त हुआ।

(४) मध्यम वर्ग—पाश्चात्य तथा वैज्ञानिक शिक्षा ने आधुनिक नए-नए पेशों को जन्म दिया। जो व्यक्ति न तो शारीरिक श्रम कर सकते हैं और न साधन सम्पन्न

---

1 A R Desai *Social Background of Indian Nationalism* p 61

के व्यक्ति मध्यम वर्ग में आते हैं। धनवान् व्यापारी वर्ग तथा उच्च सरकारी नौकरी प्राप्त व्यक्ति पूँजीपति वर्ग के अधिक निकट हैं और छोटे छोटे व्यापारी तथा सरकारी सेवा में साधारण व्यक्ति जो श्रमिक वर्ग से कुछ अधिक सम्पन्न हैं वे व्यक्ति मध्यम वर्ग में गिने जाते हैं। मध्यम वर्ग अपने अस्तित्व के लिए सशक्त भी नहीं हो सकता क्योंकि इस वर्ग में टकराव रहा है। अतः समाज में हमेशा से इसी वर्ग की स्थिति दयनीय रहती है और यहाँ वर्ग टूटता है। विभिन्न पेशों और नौकरियों के ग्रेड के अनुसार इस वर्ग में भी संस्थाएँ बनने लगीं जो अपने वर्ग स्वार्थों के लिए काम करती हैं। इसीलिए यह वर्ग नए-नए विचारों तथा मान्यताओं को जन्म देता है और अन्य वर्गों का अगुवा नेतृत्वकारी होता है।

(५) श्रमिक वर्ग—जमींदारों और साहूकारों ने किसानों की जमीन छीन कर उनको भूमिहीन बना दिया तो उद्योगपतियों और कारखानों के मालिकों ने भूमिहीन किसानों तथा निर्धन वर्ग के व्यक्तियों को मजदूर बनने के लिए बाधित किया। जो व्यक्ति खेतों में मजदूरी करते हैं मिलों-कारखानों में कम वेतन पर शारीरिक श्रम का काम करते हैं और जो सड़कों पर मजदूरी करते हैं, वे सभी व्यक्ति श्रमिक वर्ग में आते हैं। क्योंकि इस वर्ग के सामने रोटी का प्रश्न रहता है इसलिए शिक्षा का अभाव पाया जाता है और इसी कारण बहुत समय तक इस वर्ग में सामाजिक तथा राष्ट्रीय चेतना का अभाव रहा। शिक्षा के अभाव में इस वर्ग में सबसे अधिक सामाजिक बुराइयाँ मिलती हैं क्योंकि इस वर्ग के अधिकांश व्यक्ति रूढ़िवादी और अन्धविश्वासी होते हैं। आज के युग में सबसे अधिक सशक्त वर्ग श्रमिक वर्ग है।

(६) आश्रम-व्यवस्था का विघटन—वैदिक समाज व्यवस्था का दृढ़ आधार आश्रम प्रथा है। वेदों ने मनुष्य की आयु १०० वर्ष निर्धारित की थी। तदनुसार इस आयु को चार विभागों—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास में विभक्त किया गया। यही जीवन के चार आश्रम हैं। वैदिक संस्कृति के अनुसार मनुष्य का सबसे बड़ा उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति करना है और मोक्ष को प्राप्त करने के लिए इन चारों आश्रमों की यात्रा करना आवश्यक है।

(अ) ब्रह्मचर्याश्रम—इस आश्रम में बालक २५ वर्ष तक घर से दूर गुरुकुल में रहकर विद्याध्ययन करता था। वेदाध्ययन के अतिरिक्त विद्यार्थी को सामाजिक, भौतिक तथा आध्यात्मिक विषयों की शिक्षा दी जाती थी और चरित्र निर्माण पर विशेष बल दिया जाता था।

(आ) गृहस्थाश्रम—विद्याध्ययन के पश्चात् ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था और ५० वर्ष तक सांसारिक विषयों में लिप्त रह कर अपने धर्म तथा कर्त्तव्य का पालन करता था। गृहस्थ सदैव शान्त और गम्भीर रहता था।

(इ) वानप्रस्थाश्रम—व्यक्ति गृहस्थाश्रम में धर्मानुसार सांसारिक ऐश्वर्यों को भोगने के पश्चात् वानप्रस्थ में विधिवत् प्रवेश करता था। इस आश्रम में व्यक्ति

अपने कुटुम्ब का भार अपने पुत्र को सौंप कर वन में प्रस्थान करता था। यहाँ पर आकर मनुष्य ऋषियों मुनियों के पास रहकर इन्द्रियों और मन के निग्रह करने का प्रयत्न करता था ताकि मोक्ष का अधिकारी बन सके। यह कार्य ७५ वर्ष की आयु तक चलता था।

(ई) सन्यासाश्रम—मन व इन्द्रियों का निग्रह करने के पश्चात् पुरुष सन्यासाश्रम में प्रवेश करता है और इस अवस्था को प्राप्तकर मनुष्य के समस्त बन्धन कट जाते हैं। सन्यासी समस्त विषयों से दूर रह कर विशुद्ध आत्म चिंतन में लीन रहकर मोक्ष को प्राप्त करता है।

समय के परिवर्तन के साथ-साथ युग की मान्यताएँ भी बदल जाती हैं। वैज्ञानिक शिक्षा तथा आर्थिक स्वार्थों ने मनुष्य जीवन को आस्थाहीन बना दिया और आश्रमों के प्रति कोई आकर्षण नहीं है। आज के युग में मनुष्य को २१ वर्ष की आयु में चुनाव में भाग और सरकारी सेवा में प्रविष्ट होना पड़ता है और ५५-५८ वर्ष की आयु में सेवा निवृत्ति भी हो जाती है। दूसरे मनुष्य की आयु १०० वर्ष न रह कर प्रायः ६०-७० वर्ष तक ही रह गई है। इसके अतिरिक्त आज का शिक्षित नवयुवक २४-३० वर्ष की आयु में विवाह करता है और मृत्यु पर्यन्त विषय वासनाओं में लिपटा रहता है। सरकारी व्यवस्था में राष्ट्रपति तथा अनेक मन्त्री ७०-७५ वर्ष की आयु तक कार्य करते हैं। अतः भौतिकतावादी युग में सामाजिक परिवर्तनों के कारण आश्रमों के प्रति आस्था न रहने से प्राचीन आश्रम व्यवस्था समाप्त होती जा रही है।

(ग) संयुक्त परिवार— आस्था का विघटन

प्राचीनकाल से हिन्दू समाज व्यवस्था का एक आधार संयुक्त प्रणाली है आधुनिक समाजशास्त्री संयुक्त परिवार के लिए एक घर, एक चूल्हा, सामूहिक पूजा पाठ और एक देवता में विश्वास तथा सम्मिलित सम्पत्ति का होना आवश्यक मानते हैं। संयुक्त परिवार में सब व्यक्ति मिलकर काम करते हैं और एक वृद्ध व्यक्ति के नेतृत्व में सब अनुशासित रहकर पारिवारिक समृद्धि के लिए काम करते हैं। यदि संयुक्त परिवार में एक स्त्री विधवा भी हो जाती थी, तो सारा परिवार उसका तथा उसके बच्चों के व्यय का भार वहन करता था।

समय के परिवर्तन के साथ युग की मान्यताओं में भी परिवर्तन आने लगा। औद्योगिक आर्थिक व्यवस्था के कारण गांव से व्यक्ति परिवार को छोड़ कर शहर में नौकरी के लिए आने लगे और एक ही परिवार के लोग विभिन्न पेशों को अपनाने लगे। पाश्चात्य तथा वैज्ञानिक शिक्षा जन्य व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के कारण नवयुवक संयुक्त परिवार के प्रति घृणा करने लगा और आणविक परिवार की ओर प्रवृत्त हुआ। जब एक व्यक्ति नगर में कार्य करने के लिए आता है तो वह अपने निजी परिवार—पत्नी, नाबालिक बच्चों को साथ रखना पसन्द करता है। और इस प्रकार

संयुक्त परिवार में विघटन प्रारम्भ हो जाता है।

संयुक्त परिवार में दाम्पत्य प्रेम का समुचित विकास नहीं होता है। डॉ० राजेन्द्रप्रसाद का मत है कि संयुक्त परिवार में दाम्पत्य प्रेम के विकास का अवसर कम प्राप्त होता है। पति पत्नी द्वारा कृत्रिम और अस्वाभाविक परिस्थितियों में मिलते हैं कि उनमें प्रेम के विकास की बात दूर की बात है। मातृत्व पक्षिय भी कम होता है। संयुक्त परिवार में नारी किसी न किसी के अधिकार में रहती थी परन्तु आज के युग में उसकी शिक्षा, स्वतन्त्रता तथा अधिकारों का प्रश्न उपस्थित हुआ और उसकी पश्चिम की सामाजिक व्यवस्था ने समाज के मत पर प्रभाव किया। इसके अतिरिक्त आधुनिक विचारधारा समाज के मूल्यों, आदर्शों, प्रथाओं, विश्वासों, रहन सहन तथा आचार व्यवहार में परिवर्तन आने के कारण संयुक्त परिवार टूटने लगे। वर्तमान युग में औद्योगिक क्षेत्र में पुरुष तथा स्त्री साथ साथ काम करते हैं और स्वतन्त्र रहना चाहते हैं। इससे संयुक्त परिवार के प्रति उनकी आस्था कम हो गई और परिवारों में विघटन आरम्भ हो गए।

निष्कर्ष

आज के परिवार की स्थिति को स्पष्ट कहा जा सकता है कि वर्तमान औद्योगिक संगठन ने तो संयुक्त परिवार हो है और पाश्चात्य अर्थ में आणविक परिवार परन्तु यह निश्चित है कि वर्तमान आर्थिक व्यवस्था में संयुक्त परिवार के प्रति आस्था का विघटन हो रहा है और संयुक्त परिवार बिखर जा रहे हैं।

(घ) समाज की मुख्य समस्याएं

व्यक्तिगत समस्याएँ

आज के युग में व्यक्ति समाज के बन्धन को मानने के लिए तैयार नहीं है क्योंकि व्यक्ति अपने विकास में समाज को बाधक मानता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने हित और स्वार्थों को जितना अच्छी तरह से समझ सकता है उतना समाज कदापि नहीं। अतः सामाजिक बन्धन और परम्पराएं, रीति और रिवाज, सामूहिक संस्थाएं और मान्यताएं निरंकुशता के साथ व्यक्ति पर शासन नहीं कर सकता। आज के व्यक्ति के सामने पुराने युग की समस्याएं न रह कर एक नए प्रकार की समस्याएँ आ रही हैं जिनका समाधान केवल व्यक्ति के पास ही हो सकता है समाज के पास नहीं।

(१) विवाह समस्या—प्राचीनकाल में व्यक्ति के सामने विवाह की समस्या इतनी जटिल नहीं थी, जितनी आज है। पुराने युग में माता पिता को पूर्ण अधिकार था जिसमें चाहे अपनी सन्तति का विवाह कर दें परन्तु आज की मान्यताओं में अंतर आ गया है। आज का व्यक्ति अपने विवाह के सम्बन्ध में स्वयं निर्णय लेना अधिक पसन्द करता है माता पिता का पूछना भी नहीं चाहता। माता

पिता पुराने विचारो वे हैं और पुरानी मान्यताओं के मानन वाले है तथा प्राचीन विचारधारा स ही विवाह करना चाहते हैं। परन्तु आज की शिक्षा, मनोविज्ञान तथा बदली हुई आर्थिक चेतना ने मनुष्य को सोचने के लिए बाध्य कर दिया है। आज का व्यक्ति शिक्षित कन्या का इच्छुक है वह कन्या से नौकरी कराना चाहता है और स्वतन्त्रता का पुजारी है। आज का शिक्षित नवयुवक स्वच्छन्द रूप मे विवाह करने म विश्वास रखता है। यदि समाज इसकी आज्ञा नहीं देता है तो वह कानून का सहारा लेकर विवाह करता है और इस रूप म समाज की अवहेलना हो जाती है। आधुनिक शिक्षा म पला हुआ नवयुवक प्रेम विवाह का समर्थक है क्योंकि इसम उसको उसके विचारो के अनुरूप कन्या मिल जाती है। यदि उसको उसके अनुरूप कन्या नहीं मिलती तो वह जीवन मे एक ग्रंथि का अनुभव करता है। इस प्रकार विवाह आज के जीवन की एक ज्वलन्त समस्या बन गई है।

(२) प्रेम की समस्या—प्राचीनकाल समाज म व्यक्ति अधिक स्वतन्त्र नहीं था परन्तु आज का व्यक्ति अधिक स्वतन्त्र है और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र म वह अपनी स्वतन्त्रता का पूरा लाभ उठाता है। प्राचीनकाल म शिक्षा का इतना प्रसार नहीं था जितना आज है। आज का व्यक्ति विश्वविद्यालय म ऊंची शिक्षा प्राप्त करने जाता है विद्यालयों और कालेजों म अध्यापन का कार्य करता है विभिन्न कार्यालयों म सेवा करता है, वहाँ उसे स्वतन्त्र रूप म किसी भी विषय को सोचने का अवसर प्राप्त होता है। इन क्षेत्रों म पुरुष तथा नारी दोनो ही समान अवसरों पर मिलते हैं और साथ साथ कार्य करते हैं। जब पुरुष तथा नारी साथ साथ कार्य करते हैं तो प्राकृतिक रूप स वे आपस म सम्बन्ध स्थापित करेंगे और इन्हीं सम्बन्धो से प्रेम की समस्या उत्पन्न होती है।

आज का पुरुष विद्यालय कॉलेज तथा कार्यालय म नारी से प्रेम करना चाहता है क्योंकि उसका विचार है कि यदि उन दोनो म विचार साम्य हो जाए तो जीवन को सुचारु रूप स व्यतीत किया जा सकता है। प्रेम की समस्या ने आज के युवक के जीवन म एक उथल पुथल पैदा कर दी है जिसमे उसके जीवन का विकास रुक गया है। आज का युवक कॉलेज म एक युवती स प्रेम करता है परन्तु समाज रूपी विषैली वायु का एक ही झोंका उनके प्रेम को खण्डित कर देता है और जीवन म वे दोनो ही भटकते रहते हैं तथा एक विघटन की स्थिति पैदा हो जाती है। अत आज के जीवन म प्रेम ने भी एक समस्या का रूप धारण कर लिया है।

(३) बेकारी की समस्या—आधुनिक शिक्षा मनुष्य के जीवन म अधिक सहायक सिद्ध नहीं हुई क्योंकि जितने भी युवक युवतियाँ विद्यालयों तथा कालेजों से शिक्षा प्राप्त करके आते हैं, उन सबको नौकरी नहीं मिलती। आज के रोजगार-कार्यालयों म हजारों की संख्या मे शिक्षित व्यक्तियों के नाम दर्ज हैं परन्तु कहीं से भी अधिकांश को साक्षात्कार के लिए नहीं बुलाया जाता है, और यदि बुलाया भी जाता है तो साक्षात्कार

मात्र आडम्बर होता है, नियुक्ति अधिकारी किसी अपने नाती पोतों को रख लेता है और प्रत्याशियों को केवल निराशा प्राप्त होती है। बेकारी का एक और भी कारण है कि आज का शिक्षित व्यक्ति अपने विचारानुसार ही सेवा करना चाहता है। यदि उसके विचारानुसार नौकरी मिल गई तो ठीक है, नहीं तो वह अपने आप को बेकार समझता है। धीरे धीरे उसके मन में एक ग्रंथि बनती जाती है और उसके जीवन का ह्रास होने लगता है।

निष्कर्ष

विवाह, प्रेम तथा बेकारी की समस्या ने आज के व्यक्ति को निराश बना दिया है और एक ऐसी स्थिति पैदा कर दी है जिसमें न तो वह आगे ही बढ़ पाता है और न पीछे ही लौटना चाहता है। आधुनिक युग में व्यक्ति की स्थिति किंकर्तव्य विमूढ़ता की स्थिति है और उसका अपना भविष्य उज्ज्वल नजर नहीं आता।

समाजगत समस्याएं

प्रारम्भ से ही मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में ही रहकर वह अपना विकास कर सकता है। इस विकास के लिए मनुष्य को समाज के कुछ आधारभूत नियम मानने पड़ते हैं जिनके अन्तर्गत समाज तथा व्यक्ति—दोनों का ही कल्याण है। परन्तु आज के विकासशील समाज में मनुष्य समाज के प्रति अधिक उत्तरदायी नहीं है और इसीलिए उसका दृष्टिकोण समाज के प्रति कुछ परिवर्तित-सा हो गया है।

(१) नैतिकता के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण— प्राचीन काल में समाज में नैतिक मूल्यों का बहुत महत्त्व था। यदि कोई व्यक्ति समाज विरोधी कार्य कर देता था तो उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था। रामचन्द्र जी तथा श्रवणकुमार माता पिता की आज्ञा का पूर्ण रूप से पालन करते थे परन्तु आज के वैज्ञानिक युग में पाश्चात्य सभ्यता के कारण सामाजिक स्थिति में बहुत अन्तर आ गया है। आधुनिक नवयुवक माता पिता की आज्ञा की अवहेलना करता है और अपने ऊपर उनको भार समझता है। भाई बहिन को बहिन नहीं समझता और बहिन भाई को भाई नहीं समझती। सीता तथा सावित्री का युग बीत गया आज के शिक्षित और स्वतन्त्र समाज में नारी पुरुष के बन्धनों से मुक्त हो चुकी है। पत्नी किसी पर-पुरुष से अवैध सम्बन्ध रखती है तो पति भी किसी दूसरी नारी से सम्बन्ध रखता है। परिणाम यह होता है कि आधुनिक वैवाहिक जीवन पारस्परिक सन्देह और अनास्था के कारण नारकीय जीवन बन गया है।

इस युग में गुरु और छात्र के सम्बन्धों में भी विघटन आ गया है। आज की शिक्षा विद्यार्थी को अपने गुरु के प्रति नमस्कार करना भी नहीं सिखलाती वरन् अवहेलना करना सिखलाती है। विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता तथा असंयम

का वातावरण परिव्याप्त है। समाज के प्रति भी व्यक्ति अपने कर्तव्य को पूर्ण रूप से नहीं निभा पाता। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आज के समाज में नैतिकता के प्रति मानव दृष्टिकोण परिवर्तित हो गया है। प्राचीन नैतिक मूल्यों का विघटन हो गया है तथा नवीन नैतिक मूल्यों का स्थापित नहीं किया जा सका है।

(२) व्यक्तिवादी दृष्टिकोण—प्राचीन काल में समाज के लिए व्यक्ति का बलिदान कर दिया जाता था परन्तु आज के युग में स्थिति बदल चुकी है। वर्तमान काल में समाज को व्यक्ति पर उसके अधिकारों और स्वतन्त्रता पर बल प्रयोग का अधिकार नहीं है। व्यक्ति स्वातन्त्र्यवादी मानते हैं कि आज का समाज व्यक्ति के लिए है न कि व्यक्ति समाज के लिए। यदि समाज व्यक्ति के लिए उचित व्यवस्था नहीं करेगा तो व्यक्ति का समुचित विकास नहीं हो पायगा। फलतः समाज की अपेक्षित उन्नति असम्भव है।

साम्यवादी देशों में समाज पर बल दिया जाता है परन्तु प्रजातन्त्रीय देशों में भारत आदि में व्यक्ति पर। प्रायः भारत में यह माना जाता है कि यदि व्यक्ति का समुचित विकास हो जाता है तो समाज का विकास तो स्वयं ही हो जायगा। इसीलिए भारत के संविधान में व्यक्ति के अधिकारों को उचित संरक्षण प्राप्त है। आज का व्यक्ति सिगमन फ्रायड युग, एडलर आदि की ओर अधिक आकृष्ट है। इसलिए समाज की ओर अधिक आकर्षित नहीं होता। आज का व्यक्ति कहता है कि व्यक्ति की समस्याओं के समाधान में ही समाज की समस्याओं का समाधान निहित है। अतः व्यक्ति के विवाह, शिक्षा, नौकरी, उचित संरक्षण आदि की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। इन सब कारणों से व्यक्ति ने समाज की अवहेलना करनी आरम्भ कर दी और समाज का विघटन होना प्रारम्भ हो गया।

(३) समाज का विघटन—आज के वैज्ञानिक तथा प्रगतिशील युग में समाज का विघटन दिखाई देने लगा है। वर्तमान शिक्षा, अधिकार, स्वतन्त्रता तथा बुद्धिवाद ने भी समाज के विघटन में सहयोग दिया है। सर्वश्री इलियट तथा मेरिल के मतानुसार एक गतिशील समाज में उसके विघटन के तत्त्व उसके अपने में ही अन्तर्निहित रहते हैं। वे ही तत्त्व जो सामाजिक संरचना को गतिशील बनाते हैं सामाजिक विघटन को भी उत्पन्न करने वाले होते हैं।[1] वर्तमान युग के पूँजीवादी आर्थिक ढाँचे में बेकारी, निर्धनता, वर्ग-संघर्ष, शोषण की मनोवृत्ति ने समाज को विघटित बना दिया है। समाज में विवाह से पूर्व यौन-सम्बन्ध, अवैध प्रेम, अन्तर्जातीय विवाह, विवाह का कानूनी रूप, दहेज की समस्या, अनमेल विवाह, अवैध सन्तान आदि ने भी समाज के ढाँचे को हिला दिया है।

---

[1] A dynamic society carries within itself as it where the elements of its own disorganization The same elements that make the social structure dynamic are also those that bring about its disorganization

—Elliot and Merrill *Social Disorganization* p 22

त्मक अतिरिक्त टूटा परिवार असन्तोष वातावरण, पारिवारिक कलह मानसिक अशान्ति ने समाज को विकृत कर दिया है।

इन कारणों के अतिरिक्त वर्ग-संघर्ष जाति-पाँति की भावना राजनीतिक संगठन धार्मिक द्वेष प्रान्तीयता तथा भाषा के प्रश्न ने समाज को जर्जर बना दिया है। सबसे बढ़कर तो मनुष्य की विचार शक्ति ने समाज को मानने से इन्कार कर दिया है। इस सम्बन्ध में सवर्थी इलियट और मेरिल का कथन है कि सामाजिक विघटन उस समय उत्पन्न होता है जब सन्तुलन स्थापित करने वाली शक्तियों में परिवर्तन होता है और सामाजिक संरचना इस प्रकार टूटने लगती है। पहले से स्थापित आदर्श नवीन परिस्थितियों पर लागू नहीं होते और सामाजिक नियन्त्रण के स्वीकृत रूपों का प्रभावपूर्वक कार्यान्वयन असम्भव हो जाता है।[1]

निष्कर्ष

आधुनिक प्रगतिशील विचारधारा ने सम्मिलित परिवारों को तोड़कर आणविक परिवारों को जन्म दिया है और प्रजातन्त्रीय भावना ने समाज की अपेक्षा व्यक्ति के महत्त्व को बढ़ाकर समाज के आधार को ठेस पहुँचाई है। यदि भारतीय समाज का ढाँचा इसी प्रकार चलता रहा तो इसमें सन्देह नहीं कि भविष्य में समाज के प्रति व्यक्ति की आस्था का विघटन होगा तथा समाज व्यक्ति के विकास में सहायक नहीं हो पाएगा।

सांस्कृतिक चेतना का स्वरूप

(क) 'संस्कृति' का शाब्दिक अर्थ

संस्कृत भाषा के सम् उपसर्ग तथा कृ धातु के संयोग से संस्कृति शब्द निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ सामान्यतः परिष्करण या परिमार्जन की क्रिया अथवा सम्यक्करण निर्माण से है। संस्कृति के शाब्दिक अर्थ की अपेक्षा भावार्थ अधिक विशद एवं व्यापक है। डा० प्रसन्नकुमार आचार्य के शब्दों में इसमें परिमार्जन या परिष्कार के अतिरिक्त शिष्टता एवं सौजन्य के भावों का भी समावेश हो जाता है।[2]

आधुनिक युग में संस्कृति शब्द को अंग्रेजी के कल्चर (Culture) शब्द का पर्यायवाची मान लिया गया है। निरुक्ति की दृष्टि से इस शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा की धातु कालरे (Colere) से निष्पन्न कुल्टुरा (Cultura) शब्द से हुई है जो सम्भवतः क्रमशः पूजा करना तथा 'कृषि-सम्बन्धी कार्य' का बोधक

---

१ Social disorganization occurs when there is a change in the equilibrium of forces a breakdown of the social structure so that former patterns no longer apply and the accepted forms of social control no long r function effectively

—*Ibid* p 20

२ डॉ प्रसन्नकुमार आचार्य भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता पूर्वाभास पृ १

है। विद्वानों ने इन मूल अर्थों के साथ कल्चर के वास्तविक अर्थ के समन्वय का प्रयास भी किया है। शब्दार्थ तथा व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'कल्चर' तथा कल्टिवेशन में भी कुछ साम्य मिलता है। 'कल्टिवेशन' का अर्थ कृषि है। भूमि की प्राकृतिक अवस्थाओं को परिष्कृत करना ही कृषि का उद्देश्य है। कृषि की विभिन्न पद्धतियों द्वारा भूमि का परिष्कार किया जाता है जिससे भूमि उर्वरा बनती है।

कोलर से प्राप्त होने वाले द्वितीय अर्थ 'वरशिप' या पूजा करना पर विचार करने से पता चलता है कि जिस समय यह अर्थ प्रचलित हुआ उस समय तक मानव समाज कृषक जीवन अपना चुका था और कृषक प्राकृतिक शक्तियों के आतंक से त्राण पाने के लिए समय-समय पर उनकी पूजा प्रारम्भ कर दी थी। इसके पश्चात् मनुष्य का सम्बन्ध समाज के अन्य मनुष्यों के साथ हुआ और वह क्रमशः प्रकृति का दास न रह कर दूसरे मनुष्यों की सहायता लेने लगा। अतएव मानव जीवन को कल्याणकारी बनाने के लिए इस समय तक कुछ सामाजिक नियमों की प्रतिष्ठा के साथ साथ सामाजिक संस्थाओं तथा संगठनों का भी विकास हुआ।

निष्कर्ष

भूमि की भाँति मनुष्य की मानसिक एवं सामाजिक अवस्थाएँ भी विकसित हुआ करती हैं। 'संस्कृति अथवा 'कल्चर' मनुष्य की सहज प्रवृत्तियों नैसर्गिक शक्तियों तथा उनके परिष्कार का द्योतक है अर्थात् मानव जीवन के आचार विचार का शुद्धिकरण है जिसका परम उद्देश्य जीवन का चरमोत्कर्ष प्राप्त करना है।

(ख) अंग्रेज-पूर्व भारतीय संस्कृति

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व अपनी विच्छिन्नावस्था में भारतीय संस्कृति की मुख्य विशेषता थी—परम्परागत विश्वासों विचारों के प्रति अन्ध आस्था की भावना एवं बौद्धिक चिंतन का अभाव। प्रारम्भ से ही भारतीय जीवन धर्म से अनुप्राणित होता आया है और बाद में सचालक पुरोहितों के ही बौद्धिक ह्रास के कारण धर्म में भी विकृति आ गई जिससे समाज में अन्ध विश्वास और रूढ़ियों तथा परम्पराओं का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। परम्परागत विचारों तथा मान्यताओं के कारण मानव चेतना का विकास न हो सका और समाज में नये क्रान्तिकारी विचार तथा आधुनिक वैज्ञानिक धारणाओं का आगमन बन्द हो गया। इस विषय में हुमायूं कबीर का मत है कि व्यक्ति की उपेक्षा होने के कारण ही सम्भवतः मध्ययुगीन भारत में विज्ञान का विकास न हो सका। रामधारीसिंह दिनकर का कथन है कि व्याकरण, साहित्य दर्शन और ज्योतिष के सिवा यदि कोई और पाठ्यक्रम था तो वह अत्यन्त साधारण गणित का था।[1] इस युग में धार्मिक मान्यताओं के कारण हिन्दू तथा

---

1 रामधारीसिंह दिनकर संस्कृति के चार अध्याय पृ० ४६८

मुसलमान दोनों जातियाँ धार्मिक शिक्षा पर विशेष ध्यान देती थीं।

(ग) धार्मिक भावना को प्रोत्साहन

भारत में कृषि की प्रधानता होने के कारण वैज्ञानिक सुविधाओं के अभाव था तथा प्राकृतिक प्रकोप से हार मानकर व्यक्ति निराश, उदासीन एवं भाग्यवादी बन गया। परिणामस्वरूप व्यक्ति अपनी आत्म विश्वास खोकर ईश्वर की पूजा करने लगा और प्रत्येक घटना तथा परिवर्तन का कारण ईश्वर को मान कर ईश्वर को ही सर्वशक्तिमान मानने लगा। प्राय जनता अशिक्षित थी इसलिए पुरोहित वर्ग का विशेष सम्मान होने लगा। समाज में धर्म सम्बन्धी सारी क्रियाएँ पुरोहित ही सम्पन्न कराते थे इसलिए उन्होंने समाज में धर्म की भावना का विशेष प्रसार किया। इस युग की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि व्यक्ति, समाज तथा राज्य की अपेक्षा धर्म को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ। हिन्दू धर्म का आधार कर्मवाद तथा पुनर्जन्म है। अत जनता ने वर्तमान जीवन के सुख दुःखों को पूर्व जन्म के कर्मों का फल मान लिया। परिणाम यह हुआ कि व्यक्ति वर्तमान जीवन में सुख की कामना न करके आगामी जीवन तथा मोक्ष की कामना करने लगा। व्यक्ति ने अपना ध्यान बौद्धिकता की अपेक्षा आध्यात्मिकता, पारलौकिकता तथा मोक्ष प्राप्ति की ओर विशेष रूप से केन्द्रित किया।

(घ) सांस्कृतिक परिवर्तन के कारण

भारत में ब्रिटिश राज्य की स्थापना के पश्चात् इस देश में आधुनिक वैज्ञानिक साधनों का प्रचार हुआ और सामाजिक विचारधारा में एक विशेष परिवर्तन आया। यूरोपीय विचारधारा के प्रचार का अंग्रेजों के रहन सहन का तथा ईसाई मिशनरियों का हिन्दू धर्म पर प्रबल प्रहार हुआ। तत्कालीन बौद्धिक उन्मेष ने भी भारतीय विचारधारा पर कठोर प्रहार किया और उसको हिला दिया। औद्योगिक सभ्यता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं यूरोपीय भौतिकवादी संस्कृति ने भारतीय सांस्कृतिक भावना को विशेष रूप से प्रभावित किया जिससे नवीन विचारधाराओं का जन्म हुआ। परिणामस्वरूप राजा राममोहन राय, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी दयानन्द आदि ने समाज में पदार्पण किया।

(ङ) धार्मिक आन्दोलन

प्राचीन हिन्दू धर्म मोक्ष तथा पारलौकिकता पर विशेष बल देता था परन्तु इस युग में यह धारणा परिवर्तित हो गई और नवीन धार्मिक आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ। राजा राममोहन राय ने ब्राह्म समाज के निर्माण में हिन्दू, इस्लाम तथा ईसाई धर्मों के सद्सिद्धान्तों की स्थापना की। उन्हें हिन्दुत्व की पवित्रता, इस्लाम का विश्वास और ईसाइयत की स्वच्छता विशेष रूप से प्रिय थी। स्वामी दयानन्द विशेष रूप से वैदिक संस्कृति के पुनराख्याता के रूप में सामने आए और उन्होंने बिना किसी

अन्भाव के आय समाज का द्वार प्रत्येक मनुष्य, जाति तथा धम के लिए खोला। रामधारीसिंह दिनकर के मतानुसार स्वामी जी ने छूआछूत के विचार को अवदिक बनाया और उनके समाज ने सहस्रा अन्त्यजों को यज्ञोपवीत देकर उन्हें हिन्दुत्व के भीतर आदर का स्थान दिया। आय-समाज ने नारियों की मर्यादा में वृद्धि की और उनकी शिक्षा संस्कृति का प्रचार करते हुए विधवा विवाह का भी प्रचलन किया।[1]

ब्राह्म समाज, प्राथना समाज तथा आय समाज ने अध्यात्मवाद पर कोई विशेष बल न देकर मानव जीवन के बाह्य जीवन पर विशेष ध्यान दिया। मोक्ष प्राप्ति के स्थान पर राजनीतिक दासता से मुक्ति प्राप्ति ही प्रधान उद्देश्य माना गया। परिणामस्वरूप देशवासियों का ध्यान सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रगति की ओर केन्द्रित हो गया। ईश्वर का चिन्तन नाम मात्र का रह गया और मानव की समस्याएँ ही प्रमुख बन गई। सारांश यह है कि इस युग के सभी धार्मिक आन्दोलन सामाजिक सुधार, निम्न शापित जनता के उद्धार तथा राजनीतिक सुधारों की ओर प्रवृत्त हुए दिखाई देते हैं।

(ख) भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य प्रभाव

जब दो संस्कृतियाँ परस्पर सम्पर्क में आती हैं तो कम प्रभाव वाली संस्कृति अपने को अधिक प्रभाववाली संस्कृति में विलीन कर देती है। यदि दोनों संस्कृतियाँ समान हैं तो परोक्ष या अपरोक्ष रूप से एक दूसरे को प्रभावित अवश्य करती हैं। इस विषय में अधिकांश विचारक सहमत हैं कि पाश्चात्य संस्कृति ने भारतीय संस्कृति को प्रभावित किया है।[2]

(१) हिन्दू धर्म पर प्रभाव—अंग्रेजों ने भारत में आकर हिन्दू धर्म के अनेक अन्ध विश्वासों, रूढ़ियों तथा दोषों का वर्णन करके हिन्दू धर्म के प्रति घृणा और ईसाई धर्म की प्रशंसा करके अपने धर्म का प्रचार करना आरम्भ किया। अंग्रेजी शिक्षा में दीक्षित भारतीय नवयुवक हिन्दू धर्म के महत्व को न समझने के कारण ईसाई धर्म की ओर प्रवृत्त हुए और हिन्दू धर्म से घृणा करने लगे। तत्पश्चात् भारतीय विद्वानों ने अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करके हिन्दू धर्म की त्रुटियों को पहचाना और उनको दूर किया। इस काय में ब्राह्म समाज, आय समाज, थियोसाफिकल सोसायटी एवं रामकृष्ण मिशनादि ने प्रशंसनीय योगदान दिया और हिन्दू धर्म का उत्थान किया।

(२) संयुक्त परिवार एवं जाति प्रथा पर प्रभाव—अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत में जाति प्रथा जोरों पर थी और संयुक्त परिवार प्रणाली प्रचलित थी। परन्तु पाश्चात्य संस्कृति तथा सभ्यता के कारण भारत में बड़े-बड़े कारखाने खुले जिनसे भारतीय गृह-उद्योग धन्धे नष्ट हो गए और ग्रामीण जनता शहर में काम धन्धे के लिए आने लगी। परिणाम यह हुआ कि सहशिक्षा, विज्ञान तथा श्रमिकों के नगरों में बसने के कारण जाति-पाँति, छुआछूत निरर्थक समझा जाने

१ रामधारीसिंह दिनकर संस्कृति के चार अध्याय पृ० २६४

लगा और इसी के फलस्वरूप संयुक्त परिवार के स्थान पर प्राथमिक परिवार बनने लगे।

(३) **नारी की स्थिति में परिवर्तन**—ब्रिटिश शासन से पूर्व भारतीय नारी की स्थिति बड़ी ही शोचनीय थी। सती प्रथा, पर्दा प्रथा तथा बाल विवाहों का प्रचलन था। नारी को भोग की वस्तु माना जाता था और उस पर अनेक प्रकार के अत्याचार किए जाते थे। अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् शिक्षा का प्रचार हुआ एवं नारी शिक्षा पर विशेष बल दिया गया। बाल विवाह, सती-प्रथा तथा पर्दे की प्रथा को समाप्त किया गया और विधवा विवाह को मान्यता प्रदान की गई। इसके साथ-साथ प्रेम विवाह एवं कानूनी विवाह का प्रचलन भी हुआ और तलाक की प्रथा का समाज में पदार्पण हुआ।

(४) **वेशभूषा तथा रीति रिवाजों में परिवर्तन**—अंग्रेजी सभ्यता ने भारतीय वेशभूषा तथा खानपान को बहुत प्रभावित किया है। अंग्रेजों की देखादेखी छुरी-काँटे से भोजन करना, कटलरी का प्रयोग करना एवं बूट पहन कर खाना आदि क्रियाएँ पाश्चात्य सभ्यता की ही देन हैं। इसके अतिरिक्त सूट-बूट-नेकटाई धारण करना, अभिवादन में हाथ मिलाना आदि अनेक रीतियाँ पश्चिम से आई हैं। प्राचीनकाल में शिखा तथा जनेऊ का भारतीय जीवन में विशेष महत्त्व था, परन्तु आधुनिक युवक इनको बन्धन मानता है और इनको धारण करना प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझता है।

(५) **शिक्षा में क्रान्ति**—अंग्रेजों ने भारत में आने के पश्चात् सबसे पहला कार्य पश्चिमी शिक्षा एवं साहित्य के प्रसार की दिशा में किया। उनका मत था कि यदि अंग्रेजी शिक्षा तथा साहित्य का विधिवत् प्रसार किया जाएगा तो भारतीय उनके समर्थक होंगे और उनकी साम्राज्य की नींव दृढ़ होगी, परन्तु ऐसा न होकर भारतवासियों का दृष्टिकोण व्यापक हुआ। अंग्रेजों को अपने धर्म प्रचार करने के लिए अंग्रेजी में लिखित साहित्य तथा देशी भाषाओं के प्रचार की भी आवश्यकता हुई। अतः उन्होंने भारत में स्कूलों, कालेजों तथा विश्वविद्यालयों को प्रोत्साहन दिया और प्रेस तथा समाचार-पत्रों को भी प्रमुखता प्रदान की। रामधारीसिंह दिनकर के मतानुसार सिरामपुर मिशन वालों ने अपना छापाखाना ही नहीं, कागज का कारखाना भी स्थापित कर रखा था और उन्होंने बाइबिल का अनुवाद देश की छब्बीस भाषाओं में प्रकाशित कर दिया था।[1] पाश्चात्य शिक्षा ने विज्ञान, इतिहास, पुरातत्त्व, मानवशास्त्र, मनोविज्ञान, मेडिकल, इंजीनियरिंग आदि विषय भारतवासियों को पढ़ने के लिए दिए। रामधारीसिंह दिनकर का कथन है कि अंग्रेजी की शिक्षा भारत में इस उद्देश्य से चलाई गई थी कि यहाँ के अंग्रेजी पढ़े लिखे लोग तन से भारतीय किन्तु मन से अंग्रेज हो जायें जिससे अंग्रेजों का विरोध करने की उनकी

---

1 रामधारीसिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ५०

इच्छा ही नहीं हो।[1] परन्तु इसी शिक्षा के प्रभाव ने भारतीयों में चेतना लाई जिसके फलस्वरूप भारत स्वतन्त्रता के पथ पर अग्रसर हुआ।

(६) भारतीय शासन पद्धति पर प्रभाव—अंग्रेजों ने भारत को जनतन्त्रात्मक राष्ट्रीय दृष्टिकोण ही नहीं दिया अपितु शासन सचालन की पद्धति भी दी है। स्वतन्त्रता के पश्चात् जो संविधान निर्मित हुआ है वह पाश्चात्य-मुख्यतः इंगलैण्ड अमेरिका के संविधानों की छाया मात्र है। भारतीय राजनीति में दलीय प्रणाली पाश्चात्य देशों के अनुकरण पर बनी है। इस प्रकार राजनीति एवं शासन में भी हम पाश्चात्य संस्कृति तथा सभ्यता के कम ऋणी नहीं हैं।

(छ) व्यष्टि में समष्टि का चिन्तन

जब से संसार में व्यक्ति और समाज को लेकर द्वन्द्व छिड़ा है, तब से प्रत्येक समस्या के साथ यह प्रश्न भी उपस्थित होने लगा है कि समाधान व्यक्ति के लिए खोजा जाए या समाज के लिए। प्राचीनकाल में प्रायः प्रत्येक देश के लोग वैयक्तिक मुक्ति को मानव-जीवन का सबसे बड़ा लक्ष्य मानते थे परन्तु उन्नीसवीं सदी में मार्क्स ने कहा कि मुक्ति कल्पना हास्यास्पद तथा निरर्थक है। वास्तव में मुक्ति समाज की होनी चाहिए। मार्क्स की इस घोषणा का प्रभाव सारे विश्व पर पड़ा परन्तु भारत में एक नया सन्देश मुखरित हुआ। गाधी जी ने कहा मुक्ति समाज की नहीं, व्यक्ति की होती है। व्यक्ति समाज में रहकर उसकी सेवा करे और समाज सेवा का भी अर्थ समाज में रहने वाले व्यक्तियों की सेवा ही है।

प्रारम्भ से ही भारतीय दर्शन की विशेषता रही है कि व्यक्ति को ध्यान में रखकर चिंतन किया जाए। अरविन्द के अतिमानस की कल्पना, रवीन्द्र का प्राकृतिक रहस्यवाद और इकबाल का खुदी दर्शन समाज की अपेक्षा व्यक्ति को अधिक महत्त्व देता है। इन दार्शनिकों की विशेषता यह है कि इनका व्यक्ति मानवतावादी है। परन्तु इनके चिंतन का आधार वैयक्तिक होते हुए भी उसका उद्देश्य समाज का हित है। इस व्यक्तिवादी चिंतनधारा की एक विशेषता यह भी है कि ये धर्म और ईश्वर की शक्ति में आस्था रखते हैं। इस चिन्तनधारा की दूसरी विशेषता यह है कि बुद्धि की अपेक्षा अन्तःप्रेरणा शक्ति को अधिक महत्त्व दिया जाता है। आत्मा, ईश्वर तथा प्रकृति का ज्ञान बुद्धि से नहीं वरन् अन्तःशक्ति से ही प्राप्त किया जा सकता है। महात्मा गाधी भी बुद्धि की अपेक्षा ईश्वरीय प्रेरणा पर अधिक विश्वास रखते थे और उनका अहिंसा दर्शन भी वैयक्तिक परिष्कार को प्रमुख मानता है। रामधारीसिंह दिनकर के मतानुसार 'गाधी जी से पूर्व किसी ने भी समष्टि के धरातल पर अथवा कोटि जन-व्यापी महा आन्दोलनों के भीतर से अहिंसा का प्रयोग नहीं किया था। गाधी जी ने

१ रामधारी सिंह दिनकर संस्कृति के चार अध्याय पृ० ५ ३

यह प्रयोग किया और उनके प्रयोग से समाज के असंख्य लोगों में यह आस्था उत्पन्न हुई कि अहिंसा का साधन सामूहिक कार्यों में भी चल सकता है।[1]

(ज) विश्वबन्धुत्व की भावना

वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना भारतीय संस्कृति की प्राचीन देन है। इस भावना का विकास उपनिषद्काल से होता हुआ बौद्ध युग तक आया है परन्तु बाद में इस विचारधारा का ह्रास हो गया। फिर भी भारतीय संस्कृति में इसके तत्त्व विद्यमान रहे। इस युग में आकर यह विचारधारा फिर बलवती हुई और इसे पश्चिम मानवतावाद का विशेष योग मिला। आधुनिक काल में महात्मा गांधी, अरविन्द, रवीन्द्र तथा विवेकानन्द धर्म विशेष से ऊपर उठकर व्यक्ति का सम्बन्ध समस्त विश्व से जोड़ने का प्रयास करते हैं। इनके विचारों में एक ओर व्यक्ति है तो दूसरी ओर विश्व है। ये व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के साथ-साथ समस्त विश्व में एकता के सूत्र देखते हैं और इस प्रकार सारे विश्व को एक कुटुम्ब बनाने की भावना का प्रसार करते हैं।

भौतिकवादी दर्शन व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधिक महत्त्व देता है क्योंकि उसके मतानुसार व्यक्ति समाज की देन है। अतः भौतिकवादी दर्शन भी व्यष्टि तथा समष्टि के बीच आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था के माध्यम से विश्वबन्धुत्व की भावना पर बल देता है। सारांश यह है कि भारतीय और पाश्चात्य विचारधारा दोनों ही भिन्न मार्गों के द्वारा विश्वबन्धुत्व की भावना को स्वीकार करते हैं।

(झ) बौद्धिक उन्मेष

प्राचीन काल से ही भारतीय चिन्तन एवं मनन की विचारधारा मुख्यतः धार्मिक तथा आध्यात्मिक रही है। मानव जीवन का परम उद्देश्य पारलौकिकता एवं मोक्ष को प्राप्त करना ही था। परन्तु पश्चिम के विज्ञान ने इस विचारधारा के मूल पर ही कुठाराघात किया और इस नये वैज्ञानिक चेतना से मानव जीवन की आस्तिक भावना का स्थान बुद्धि ने ले लिया। आध्यात्मवाद के स्थान पर भौतिकवाद को चिन्तन का आधार मान लिया गया और व्यक्ति, समाज तथा विश्व की समस्याओं का अध्ययन भी वैज्ञानिक रीति से होने लगा।

वैज्ञानिक चिन्तन ने परम्परागत अन्धविश्वास के स्थान पर तर्क प्रणाली को सम्मान प्रदान करके समाज में उसे ग्राह्य रूप दिया। विज्ञान ने जादू टोना तथा अहितकारी क्रियाओं को धर्म से अलग करके धर्म को स्वस्थ तथा बुद्धिग्राह्य बनाने का स्तुत्य प्रयास किया। आधुनिक बौद्धिक युग में वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने दो विचार-दर्शनों को जन्म दिया। प्रथम भौतिक समाजवाद जो समाज का अध्ययन करता है। इसका चरम विकास तथा वैज्ञानिकीकरण के आधार पर प्रतिष्ठापन मार्क्स ने किया। अतः इसको मार्क्सवाद के नाम से पुकारा गया। द्वितीय डार्विन

के जीवविज्ञान से प्रभावित होकर सर्वप्रथम सिगमंड फ्रायड ने मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय व्यक्ति तथा उसका मस्तिष्क बतलाया है। क्योंकि मनोविज्ञान का वैज्ञानिक अध्ययन सर्वप्रथम फ्रायड ने किया था इसलिए इसे फ्रायडवाद भी कहा जाने लगा है। सारांश यह है कि वैज्ञानिक रुचि तथा बौद्धिकतापूर्ण उन्मेष बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में हुआ। विश्व की वैज्ञानिक प्रगति के परिणामस्वरूप भारतीय मस्तिष्क को अपने पिछड़ेपन का समाधान ढूंढने के लिए वैज्ञानिक चिन्तन पद्धति सर्वाधिक संतापपूर्ण और विश्वसनीय जान पड़ी।

(ट) धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र की स्थापना

वर्तमान काल में संस्कृति के आध्यात्मिक एवं धार्मिक मूल्य ढह चुके हैं और आध्यात्मिक दृष्टिकोण की उपेक्षा ही नहीं वरन् उसके प्रति विश्वास भी उठ गया है। नई पीढ़ी में धर्म के प्रति उदासीनता का भाव समा गया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय संविधान में भारत, धर्म निरपेक्ष राष्ट्र घोषित कर दिया गया है। भारत में किसी धर्म को न राजकीय धर्म माना जाता है और न किसी धर्म के प्रति पक्षपात किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है कि वह जिस धर्म को चाहे माने और उसके अनुसार विधि विधाना व पूजा का अनुष्ठान करे। सरकारी शिक्षणालयों में किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में धर्म निरपेक्ष राष्ट्र, धर्म निरपेक्ष समाज, धर्म निरपेक्ष कानून तथा धर्म निरपेक्ष चिंतन पद्धति की स्थापना हो चुकी है और भारत सरकार इस का विधिवत् पालन भी कर रही है।

आर्थिक चेतना का विकास

(क) प्राचीन भारतीय आर्थिक प्रणाली

ब्रिटिश शासन में पूर्व भारत में गांवों की स्थिति बहुत अच्छी थी। प्रत्येक ग्राम एक आर्थिक इकाई के रूप में समझा जाता था तथा इन ग्रामों में दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं का उत्पादन होता था और वस्तुओं का आदान प्रदान ही मुख्यतः विनिमय का रूप था। गांव अपने आप में पूर्ण होते थे। इसलिए कलात्मक वस्तुओं का उत्पादन जनता के लिए न होकर नगरों में रहने वाले सामन्तों तथा राजा महाराजाओं और धनी व्यक्तियों के लिए ही होता था। इन्हीं के संरक्षण में भारतीय उद्योग धन्धे जीवित रहते थे। भारत में निर्मित सूती रेशमी वस्त्र शाल दुशाले सोने चांदी, हाथीदांत, लकड़ी व पत्थर की कलात्मक वस्तुओं का निर्यात विदेशों में होता था। यूरोप भारतीय व्यापार का बाजार था और वहां का बहुत सा सोना चांदी भारत में आता था। परिणामस्वरूप ब्रिटिश शासन कम्पनी के डायरेक्टरों को चिंता हुई और उन्होंने व्यापारिक नीति में परिवर्तन किया। श्री रमेशचन्द्र दत्त का कथन है कि १७६९ ई० को कम्पनी के डायरेक्टरों ने लिखा था

कि बंगाल के कच्चे रेशम के उत्पादन को प्रोत्साहन दिया जाए और रेशमी वस्त्रों के उत्पादन को हतोत्साहित किया जाए। कच्चा रेशम उत्पादन करने वाले कारीगरों को अपने घरों पर काम करने से रोका जाए और उन्हें कम्पनी में काम करने के लिए बाध्य किया जाए।

(ग) विदेशी पूंजी के द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था का विघटन

१८५७ ई० की क्रान्ति के पश्चात् ईस्ट इंडिया कम्पनी की समाप्ति हो गई और भारत का शासन सीधे इंग्लैण्ड सरकार के हाथों में चला गया। ब्रिटिश सरकार ने अपने शासन को सुदृढ़ करने के लिए भारत में रेलों का जाल बिछाना प्रारम्भ कर दिया जिससे उनका एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल ले जाने तथा लाने में सुविधा हो सके। १८३३ ई० के चार्टर एक्ट के द्वारा यूरोपीय लोगों के बसने एवं रुपया लगाने पर से नियन्त्रण हटा लिया गया। फलतः भारत में विदेशी पूँजी का आगमन हुआ। सर्व प्रथम विदेशी पूँजी चाय, रबड़, काफी, नील इत्यादि के बागानों में लगाई गयी। इसके पश्चात् कलकत्ता की जूट मिलों में भी विदेशी पूंजी लगी तथा खान उद्योग में भी प्रायः उसी को स्थान मिला।

इस समय तक इंग्लैण्ड में व्यापारिक और औद्योगिक क्रान्ति का प्रारम्भिक काल समाप्त हो चुका था और वहाँ लोहे तथा कपड़े के उद्योगों से सम्बन्धित बड़े बड़े कारखाने स्थापित हो चुके थे। फलस्वरूप निर्मित माल के स्थान पर भारत से इंग्लैण्ड के कारखानों के लिए कच्चा माल—जूट, कपास, तिल, तिलहन, चमड़ा व खालें इत्यादि निर्यात होने लगा। इसके स्थान पर इंग्लैण्ड से निर्मित माल—कपड़ा, लोहे का सामान, हर प्रकार की मशीनें इत्यादि भारत में आयात होने लगी। परिणाम यह हुआ कि भारत में उद्योग धन्धों की दशा गिरती चली गई और भूमि पर जन संख्या का भार बढ़ने लगा। इंग्लैण्ड में बनी हुई वस्तुएँ भारतीय वस्तुओं से सस्ती होती थीं। अतः विदेशी माल की बिक्री अधिक होने से भारतीय धन-दौलत विदेशों में पहुँचने लगी और भारत के कारीगर बेकार होने लगे। इस प्रकार भारत की आर्थिक व्यवस्था का विघटन आरम्भ हो गया।

(१) लघु एवं कुटीर उद्योगों का ह्रास— भारत में ब्रिटिश शासन के साथ साथ भारतीय राजाओं, नवाबों एवं छोटे छोटे शासकों का पतन हो गया। इन्हीं के संरक्षण में भारतीय कारीगर बहुमूल्य वस्तुएं निर्मित करते थे। अतः इनके पतन के साथ-साथ आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन बन्द हो गया। पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता के फलस्वरूप राजाओं के महलों में ब्रिटेन, फ्रांस तथा इटली में बने सामान का प्रयोग में लाया जाने लगा। सबसे दुःखद बात यह थी कि ब्रिटिश शासनकाल में भारतीयों को शस्त्रों के रखने पर प्रतिबंध लग जाने पर भारतीय अस्त्र शस्त्र उद्योग को गहरा धक्का पहुँचा और वह धीरे धीरे नष्ट हो गया। इंग्लैण्ड में भारतीय माल पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इससे भारतीय उद्योगों का बाजार समाप्त हो गया।

भारतीय माल पुरान डिजाइन का ही रहा और विदेशी माल नये नये डिजाइनो पर आधारित होने के कारण भी भारतीय उद्योगो की प्रगति पर प्रतिकूल प्रभाव पडा। परिणाम यह हुआ कि भारतीय माल को लोगो न खरीदना बन्द कर दिया। भारतीय लघु एव कुटीर उद्योग धधो के पतन का सबसे महत्त्वपूर्ण कारण विदेशो मे निर्मित सस्ता माल था। इस सस्ते माल के साथ साथ भारतीय मशीनो ने भी सस्ता माल उत्पादित किया परन्तु वृहत् स्तर पर आयोजित मशीन उद्योग के समक्ष कुटीर उद्योगो की प्रगति असम्भव हो गई। फलस्वरूप धीरे धीरे कारीगर अपना स्वतन्त्र व्यवसाय छोडकर मिलो मे श्रमिको का काय करने लगे तथा कुछ कारीगर कृषि की ओर प्रवृत्त हुए। साराश यह है कि १६वी सदी तक भारतीय कुटीर उद्योगो का पूर्ण रूप से पतन हो गया और देश का आर्थिक सन्तुलन बिगड गया।

(२) **कृषि मे ह्रास**—भारतीय उद्योग धधो के पतन के पश्चात् कुछ कारीगर तो मिलो मे काय करने के लिए चले गए और कुछ खेती की ओर पहुचे। इस समय तक विदेशी पूजी ने भारत मे अपना व्यापार सम्भाल लिया था। सारे देश मे रेलो का जाल बिछाया जा चुका था। देश मे लोहे सीमेट, कागज, खनिजो के उद्योग मे बडी-बडी मशीनें लग चुकी थी। नए-नए कारखाने खुलते जा रहे थे जिनमे स्वचालित मशीनें स्थापित की गई थी। इस समय तक भारत का सम्बन्ध ससार के बाजार के साथ सीधे रूप मे हो चुका था। गेडगिल महोदय का कथन है कि १८८५ से १८६० ई० तक ५ वर्ष के अन्दर भारत मे ५० कारखाने खुले।[1] उत्तरप्रदेश पजाब आदि मे भयकर अकाल पडे तथा मध्यप्रदेश और बिहार मे खाद्यान्न के सकट की घोषणा कर दी गई। आस्ट्रेलिया से दो लाख टन गेहूँ मँगवाने पर भी खाद्यान्न की समस्या नही सुलझी। परिणाम यह हुआ कि भारत खाद्यान्न के लिए विदेशो पर निर्भर रहने लगा। एक और महत्त्वपूर्ण बात यह हुई कि पाश्चात्य सभ्यता के कारण सम्मिलित परिवार टूटने लगे और व्यक्ति शहरो मे मिलो मे काम करने के लिए जाने लगा। ओकारनाथ श्रीवास्तव का मत है कि 'व्यक्तिवाद के आधुनिक विचारों के प्रचार से सयुक्त परिवार टूट चले इसलिए भूमि का विभाजन बहुत अधिक हो गया। फलत भूमि की उपज कम हो गई और कृषि का विकास रुक गया।'[2]

बडे-बडे कारखाने तथा मिल खुलने के कारण गाँवो से लोग शहरो मे आने लगे क्योकि अकाल पडने से भूमि की हालत सुधर नही सकी थी और खेती मे अधिक उपज भी नहीं हुई। इसके साथ-साथ जमीदार वर्ग ने भी किसानो से बेगार लेनी आरम्भ कर दी थी। परिणाम यह हुआ कि सरकारी कर तथा लगान चुकाने मे

---

१. In the five years from 1885 to 1890 there were added fifty mills which marks the line of greatest expansion

Dr D R Gadgil *The Industrial Evolution of India* p 77

२ ओकारनाथ श्रीवास्तव हिन्दी साहित्य परिवर्तन के सौ वर्ष पृ ११३

करोड़ रुपये तथा १९६४-६५ ई० में २८० करोड़ रुपये था।

(१) पूंजी पर स्वामित्व—स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय पूंजी पर सरकार का नियन्त्रण हो गया। भारतीय पूंजी के साथ-साथ विदेशी पूंजी भी सहायतार्थ लगाई गई। भारत सरकार ने देश की आर्थिक प्रगति के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का सहारा लिया एवं देश में बड़े-बड़े कारखाने तथा मिल स्थापित किए। कुछ कारखाने विदेशी सहायता से भी लगाए गए और कुछ पूंजी विदेशों से ऋण रूप में भी ली गई। इस प्रकार भारत सरकार का अब पूंजी पर स्वामित्व हो गया जिससे विकासात्मक कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ।

(२) प्रथम पंचवर्षीय योजना—असाधारण परिस्थितियों जैसे खाद्यान्नों एवं कच्चे माल का अभाव बढ़ती हुई कीमतें विस्थापितों का पुनर्स्थापन आदि की व्यवस्था को इस योजना में प्रमुखता दी गई। सन् १९५५-५६ ई० तक सार्वजनिक क्षेत्र में कुल २०६९ करोड़ रुपया व्यय करने का अनुमान था परन्तु दो वर्ष पश्चात् बेकारी की समस्या उत्पन्न होने पर इसे २३७८ करोड़ रुपया तक कर दिया गया। सबसे अधिक महत्ता कृषि ग्राम विकास एवं सिंचाई तथा शक्ति योजनाओं को दी गई। इसके पश्चात् जल स्थल एवं वायु तीनों में सम्बन्धित परिवहन के साधनों के विकास को कार्यान्वित किया गया। इसके पश्चात् शिक्षा, स्वास्थ्य गृह निर्माण और श्रम जीवियों के लिए कल्याण-कार्यों का प्रसार तथा पिछड़ी जातियों के विकास की ओर ध्यान दिया गया। अन्त में उद्योगों का भी ध्यान दिया गया। सारांश यह है कि प्रथम योजना आशानुसार सफल हुई।

(३) द्वितीय पंचवर्षीय योजना—इस योजना के अन्तर्गत देश की जनता के जीवन-स्तर में वृद्धि करना मूल और वृहद् उद्योगों का विकास करना बेरोजगारी समाप्त करना आय और सम्पत्ति की असमानता में कमी करना आदि कार्यक्रम रखे गये। इन मूल उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर १९५६-५७ ई० से १९६०-६१ ई० तक सार्वजनिक क्षेत्र में ४८०० करोड़ रुपये तथा निजी क्षेत्र में २४०० करोड़ रुपये व्यय करने का निश्चय किया गया। इस योजना में औद्योगिक विकास को अधिक महत्त्व दिया गया और कृषि सिंचाई तथा शक्ति की प्रगति को भी कायम रखने का प्रबन्ध किया गया। परिवहन तथा समाचार संवहन के साधनों—विशेषत रेलों को अधिक व्यापक रूप दिया गया। सामाजिक सेवाओं जैसे शिक्षा स्वास्थ्य गृह निर्माण पिछड़े वर्गों का कल्याण आदि पर पहले की ही भांति ध्यान रखा गया। उद्योगों के अन्तर्गत उपयोगी सामग्री का उत्पादन बढ़ाने तथा रोजगारी का क्षेत्र फैलाने के लिए कुटीर उद्योग धन्धों पर पर्याप्त ध्यान दिया गया।

(४) तृतीय पंचवर्षीय योजना—इस योजना का काल १९६१ ई० से १९६६ ई० तक रहा। इस योजना में द्वितीय योजना की उन अपूर्ण इकाइयों को पूरा किया गया जो कि विदेशी मुद्रा की कठिनाइयों अथवा अन्य बाधाओं के कारण पूरी नहीं हो सकी थीं। इस योजना में भारी इन्जीनियरी उद्योग,

मशीन उद्योग और अन्य ऐसे ही आवश्यक उद्योगों की उत्पादन क्षमता को बढ़ाया गया जिससे देश के आर्थिक विकास को उन्नति के शिखर पर ले जाया जा सके। आधारभूत कच्चे माल यथा—अलुमीनियम, खनिज तेल, विविध रसायन आदि के उत्पादन पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया। इस योजना में घरेलू उद्योगों के उत्पादन को भी बढ़ाया गया जिसने बड़े उद्योगों की विभिन्न औद्योगिक आवश्यकताओं को ठीक रूप से पूरा किया। इसके साथ-साथ जन-कल्याण के साधनों शिक्षा खेल-कूद डाक-तार, गृह निर्माण आदि की ओर भी पर्याप्त ध्यान दिया गया।

(५) श्रम का मूल्य—स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व जमींदार महाजन तथा साहूकार किसानों तथा श्रमिकों से बेगार लिया करते थे और उनके विरोध करने पर उन पर अनेक प्रकार के अत्याचार किए जाते थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार ने जमींदारी प्रथा को समाप्त कर दिया और बेगार लेने पर कानूनी रोक लगा दी। इसके साथ साथ किसी भी कारखाने में १४ वर्ष से कम आयु वाले बच्चे को काम पर लगाना प्रतिबन्धित कर दिया गया क्योंकि इससे बच्चों का शोषण होता है और समाज में अनैतिकता फैलती है। इसके अतिरिक्त कानून के अनुसार किसी भी श्रमिक का वेतन नहीं काटा जा सकता उसको पूरा वेतन दिया जाएगा। बेगार नहीं ली जाएगी और आवश्यकता से अधिक काम नहीं लिया जाएगा। उनके काम करने के घण्टे नियत कर दिए गए। उनकी स्वास्थ्य सम्बन्धी व्यवस्था भी की गई है। उनके बच्चों का उचित संरक्षण भी दिया गया है। इस प्रकार भारत सरकार ने श्रमिक को उसके श्रम का पूरा प्रतिदान देने की व्यवस्था की है। ऐसा न होने पर वह कानून का सहारा ले सकता है और अपना अधिकार प्राप्त कर सकता है।

(६) कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन—स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले कुटीर-उद्योगों को कोई प्रोत्साहन नहीं दिया गया परन्तु उसके पश्चात् भारत सरकार ने इस दिशा की ओर उचित ध्यान दिया है। सरकार ने कुटीर उद्योगों के विकास और संगठन पर परामर्श एवं सहायता देने के लिए कुटीर उद्योग परिषद् (काटेज इण्डस्ट्रीज बोर्ड) की स्थापना की है। घरेलू और छोटे उद्योगों के विकास के लिए ऋणों और अनुदानों के रूप में केन्द्रीय सरकार अधिकाधिक व्यय कर रही है। इस १९४९-५० ई० से १९५२-५३ ई० तक के चार वर्षों में कुल ५० लाख रुपया मद में व्यय किया गया तथा १९५३-५४ ई० में सरकार ने ५.६४ करोड़ रुपया व्यय किया और १९५५-५६ ई० के बजट में खादी और ग्रामोद्योगों को प्रोत्साहन देने के लिए भारत सरकार ने ६.५ करोड़ रुपये रखे जिसमें ४ करोड़ रुपये के अनुदान के रूप में एवं २.५ करोड़ रुपये अविनिर्दिष्ट विषयों पर व्यय किये गये।

केन्द्रीय सरकार मुख्य रूप से राज्य सरकारों द्वारा इन उद्योगों को सहायता देती है। इसके अतिरिक्त भी केन्द्रीय सरकार ने इन उद्योगों को उचित परामर्श

और निरीक्षण करने के लिए विभिन्न क्षेत्रों के अलग अलग मण्डल बना दिए जिनमें अखिल भारतीय खादी और ग्रामोद्योग मण्डल, अखिल भारतीय हाथ करघा मण्डल, केन्द्रीय रेशम मण्डल, नारियल जटा मण्डल और लघु उद्योग म आदि प्रमुख हैं। लघु उद्योग मण्डल के अधीन छोटे उद्योगों के लिए प्रौ शिल्पशालाओं की स्थापना की जा रही है। इनमें से कुछ उद्योगों की विशेष रू खादी और ग्रामोद्योग की योजनाओं का संचालन सम्बन्धित मण्डल स्वयं भी कर है। इसके अतिरिक्त अनेक छोटे कुटीर उद्योग यथा—चीनी के बर्तन, रबड़ खिलौने, कागज, रेशम आदि के निर्माण की प्रगति में सरकार सहायक हो है। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक घरेलू दस्तकारियों और शिल्प कलाओं की प्र की ओर भारत सरकार विशिष्ट रूप से सतर्क और सचेष्ट है।

२

प्रसाद-पूर्ववर्ती हिन्दी नाटक (१६०१-१६२० ई०)

अग्रेज भारतवर्ष म व्यापार करने के लिए आए थे परन्तु बाद म उन्होंने व्यवसाय की नीति का परित्याग कर राज्य स्थापना का श्रीगणेश किया। सन् १८६७ ई० तक उन्होंने भारत म ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी जिनमे राजनीतिक, सामाजिक एव सास्कृतिक विकास पर अत्यधिक बल दिया गया। परिणामस्वरूप साहित्य भी इससे अछूता न रहा और राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक समस्याओ का चित्रण साहित्य म होने लगा।

अग्रेजी मिशनरियो न अपने साहित्य और ईसाई धम का प्रचार प्रारम्भ कर दिया था जिसका प्रभाव भारतीय जनता पर आवश्यक रूप से पडा। भारतीय जनता पतनोन्मुखी हो चुकी थी और अग्रेजी सभ्यता के प्रति आकृष्ट होती जा रही थी। ऐसी परिस्थितियो म स्वामी दयानन्द, राजा राममोहन राय एव केशवचन्द सेन ने भारतीय जनता की स्थिति को देखा तथा भारतीय समाज मे व्याप्त कुरीतियो की ओर विशेष ध्यान दिया। इन धार्मिक नताओ ने धम-सुधार के साथ-साथ समाज सुधार का भी काय किया और विभिन्न सस्थाओ की स्थापना की। आय-समाज, ब्रह्म समाज, थियोसाफिकल सोसायटी आदि ऐसी अनेक सस्थाएँ थी जिनका प्रभाव साहित्य पर विशेष रूप स पडा।

भारतन्दु के समय जो वातावरण बन चुका था उसका प्रभाव युगीन नाटककारो पर विशेष रूप स पडा और उन्होने देश की तत्कालीन अवस्था को अपने साहित्य म स्थान दिया। उन्होने देखा कि देश मे नया जागरण हो रहा है। नई शिक्षा और पश्चिमी विचार प्रकाश म आ रहे हैं। भारतीय हीनावस्था को देखकर उनकी देश भक्ति छटपटा उठी एव यही देश भक्ति उनके साहित्य का प्राण बनी। देश भक्ति से ही प्रेरणा पाकर भारतेन्दु ने अपने नाटक, काव्य आदि की रचना की। भारतेन्दु का प्रभाव उनके समकालीन साहित्यकारो पर भी पडा और साहित्य म देश प्रेम जन्मभूमि की सेवा, राष्ट्रीयता आदि भावनाओ का समावेश हुआ।

लोकानुकृतिनाटयम्-नाटक का प्रत्यक्ष सम्बन्ध समाज स है। समाज मे ही वह अपना विषय चुनता है और समाज क लिए ही वह अपने रूप का निर्माण करता है। अत नाटक दूसरी विधाओ की अपेक्षा समाज को अधिक प्रभावित करता है इसलिए इस युग म नाटको की ओर विशेष ध्यान दिया गया। इस युग के नाटककारो न

पौराणिक कथाओं का आश्रय लेकर अपने नाटकों में समाज का चित्रण किया।

भारतेन्दुकालीन नाट्य-साहित्य में एक ओर तो प्राचीनता के प्रति मोह था और दूसरी ओर नए युग की मान्यताओं के प्रति सजगता थी। वास्तव में समाज प्राचीन युग से निकलकर नवीन युग में प्रवेश कर रहा था। संक्रमण युग होने के कारण भारतेन्दु में दोनों युगों की विशेषताएँ विद्यमान थीं। डॉ० वीरेन्द्रकुमार शुक्ल भारतेन्दु के विषय में लिखते हैं कि एक ओर रीतिकालीन परम्परा की रसिकता तो दूसरी ओर नवीन उत्थान की प्रेरक समाज-सुधार तथा राष्ट्रीयता की भावना इनमें वर्तमान दृष्टिगत होती थी।[1] इस विषय में हमारा मत यह है कि भारतेन्दु के नाट्य-साहित्य में प्राचीनता के कुछ तत्त्व विद्यमान हैं परन्तु उन्होंने प्राचीन विचारधारा को भी बदलते हुए समाज के लिए उपयोगी सिद्ध किया है और उसको नया रूप प्रदान किया है। डा० वीरेन्द्रकुमार शुक्ल मानते हैं कि यथार्थतः भारतेन्दु ने पुरानी परिपाटी का विश्लेषण कर उसमें से दोषों को निकालकर के उपयोगी उपकरणों को लेकर तत्कालीन प्रभावों के साथ उनका अपूर्व समन्वय करके उपादेय नाट्य-साहित्य की सृष्टि की है।[2] हम भी इस बात से पूर्णतया सहमत हैं कि भारतेन्दु के इस प्रयास से प्राचीनता की रक्षा भी हुई है और भविष्य के लिए प्रशस्त पथ का निर्माण भी हुआ है।

भारतेन्दु-युग में जितने भी नाटक लिखे गए उनमें प्रायः देश-प्रेम का चित्रण मिलता है। इस काल के नाटकों में दिखाया गया है कि किस प्रकार ग्राम पाठशालाओं में शिक्षा की दशा था—उनके अधिकारी किस प्रकार घूमते थे और उनके लिए आवास का कोई उचित प्रबन्ध भी नहीं था। साहूकार कृषक को थोड़े से रुपए और ब्याज उधार देकर कैसे किसान का सर्वस्व हड़प जाता था—इस विषय को इस युग के नाटकों में विशेष रूप से दिखाया गया है।

इस युग में सर्वप्रथम भारतेन्दु ने संस्कृत नाटक 'विद्यासुन्दर' का अनुवाद प्रकाशित किया था। इसके कुछ समय पश्चात् उन्होंने हिन्दी में मौलिक नाटकों की रचना की। इन नाटकों की विषय-वस्तु सामाजिक, राष्ट्रीय, धार्मिक, पौराणिक तथा राजनीतिक परिवेश से सम्बन्धित है। भारतेन्दु ने 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'चन्द्रावली', 'विषस्य विषमौषधम्', 'भारत-दुर्दशा', 'नीलदेवी', 'अंधेर नगरी', 'प्रेम योगिनी' तथा 'सती प्रताप' (अपूर्ण) नाटकों की रचना की। उनके अनूदित नाटकों में 'विद्यासुन्दर', 'पाखण्ड विडम्बन', 'धनंजय विजय', 'कर्पूरमंजरी', 'मुद्राराक्षस', 'सत्य हरिश्चन्द्र' तथा 'भारत जननी' हैं। 'सत्य हरिश्चन्द्र नाटक' को कुछ समीक्षक भारतेन्दु का मौलिक नाटक मानते हैं और कुछ अनूदित। इस सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि 'सत्य हरिश्चन्द्र मौलिक समझा जाता है पर हमने

---

१ डॉ० वीरेन्द्रकुमार शुक्ल : भारतेन्दु का नाट्य-साहित्य, पृ० ३६
२ वही, पृ० ४१

एक पुराना बगला नाटक देखा है जिसका यह अनुवाद कहा जा सकता है।[1] भारत दुदशा एव 'नीलदेवी' राष्ट्रीय जागृति के प्रतीक हैं। इन दोना नाटका म तत्कालीन समाज म व्याप्त विषमताग्रा का अभिव्यक्त तथा देशवासियो की हीन स्थिति पर दुख प्रकट किया गया है। ये दोना नाटक अपन युग की सामाजिक तथा राष्ट्रीय चेतना के प्रतीक हैं। 'चन्द्रावली' म प्रेम का आन्द है और विषस्य विषमौषधम् मे देशी रजवाडा की कुचक्रपूण परिस्थिति दिखाई गई है। 'प्रेमजोगिनी' में पाखण्डमय धार्मिक और सामाजिक जीवन झांकी प्रस्तुत की गई है।

अपने नाटका द्वारा भारतदु न राजनीतिक सामाजिक तथा धार्मिक—तीना प्रकार के उत्थान का प्रयत्न किया और साथ ही प्रेमतत्त्व की शाश्वत प्रतिष्ठा की है। उन्होंने अपना लक्ष्य देश प्रेम की ओर केंद्रित किया है। नाटय कला की दृष्टि स भारतेन्दु का झुकाव विशेष रूप मे सस्कृत नाटका की ओर रहा। उन्होंने अपन नाटका म सस्कृत नाटका की भाति नान्दी सूत्रधार तथा भरत वाक्य आदि का प्रयोग तो किया परन्तु वस्तु विन्यास म सवथा नवीनता को ही अपनाया है।

भारतदु युग के अन्य नाटककारा न भारतेन्दु से प्रभावित होकर धम सुधार समाज-सुधार तथा देश प्रेम आदि की भावना का प्रचार किया। भारतेन्दु तथा उनके समकालीन नाटककारा न कुछ नाटका की कथावस्तु अपन समाज स ली और कुछ की इतिहास या पुराण से। परन्तु इतिहास या पुराण म उन्हान वही कथा ली जो तत्कालीन जीवन को अपन युग के प्रति सचेत कर सके और समाज म जागृति उत्पन्न कर सके।

इस युग म कृष्ण-सम्बन्धी रामलीला नाटका की भी रचना हुई। इस काल के प्रसिद्ध नाटका म 'कृष्ण-सुदामा (१८७० ई०) रुक्मिणी हरण (१८७६ ई०), उषा हरण (१८८७ ई०) उद्धव-यशोदा-नाटिका (१८८३ ई०) प्रद्युम्न विजय' (१८६३ इ०) रुक्मिणी-परिणय (१८६५ ई०), 'द्रौपदी-वस्त्रहरण (१८६६ इ०) आदि का लिया जा सकता है। महाभारत तथा पुराणा की कथा पर अनेक नाटक रचे गए जसे—दमयन्ती-स्वयवर (१८८४ ई०) 'अभिमन्यु वध (१८६६ ई०) ध्रुव-तपस्या' (१८८५ ई०) और 'सावित्री (१६०० इ०)।

इस काल म एतिहासिक नाटक भी लिखे गए हैं जिनका उद्देश्य है—इतिहास के परिप्रेक्ष्य म वतमान जीवन को दिखाना और अतीतकालीन घटनाग्रा से आधुनिक काल के लिए प्रेरणा ग्रहण करना। ऐतिहासिक नाटका मे पद्मावती (१८८२ ई०) महाराणा प्रताप (१८६७ ई०) सयोगिता स्वयवर (१८८५ ई०) 'श्रीहर्ष' (१८८४ ई०) एव अमरसिंह राठौर' (१८८५ ई०) अत्यन्त ख्यातिप्राप्त नाटक हैं।

इस काल की राष्ट्रीय विचारधारा स प्रभावित होकर नाटककारा ने अपने नाटको मे राष्ट्रीय भावना का विशेष स्थान दिया है और इस राष्ट्रीय विचारधारा

---

१ रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ४२

किया गया है। इन नाटकों में मादक द्रव्य सेवन, बहु विवाह, बाल विवाह, वृद्ध विवाह, अंग्रेजी फैशन, सूदखोरी आदि का दुष्परिणाम दिखाया गया है और हास्य रस का भी परिपाक किया गया है। हास्य रस के नाटकों में पण्डा पुरोहितों का कुकृत्य, ढोंगी साधुओं की काली करतूत, अत्यधिक ब्याज लेने वाले महाजनों की दुर्दशा एवं वेश्यागमन का दुष्परिणाम दिखाया गया है। अंधविश्वासों और रूढ़िगत परम्पराओं का उपहास किया गया है। इन नाटकों से समाज का मनोविनोद ही नहीं अपितु सुधार की दिशा में विशेष प्रगति भी हुई है।

निष्कर्ष

भारतेन्दु युग के प्राय सभी नाटककार अपने युग से प्रभावित थे और बदलते हुए समाज के प्रति सजग भी थे। एक सजग साहित्यकार का दायित्व भी यही है कि अपने साहित्य में अपने समाज को प्रतिबिम्बित करें। रामगोपालसिंह चौहान का मत है कि भारतेन्दु युग के प्राय सभी नाटक राष्ट्रीय चेतना से प्रेरित हैं और उनका प्रधान उद्देश्य है देश की सोयी हुई जनता को जाग्रत करना, उसमें अपने प्राचीन राष्ट्रीय गौरव के प्रति सम्मान और गर्व की भावना जाग्रत करना, गतानुगत प्रगति—अवरोधक रूढ़ियों, परम्पराओं, अन्ध विश्वासों से मुक्ति का मार्ग दिखाना तथा जनता में राष्ट्र भक्ति, एकता और देशोन्नति की स्वस्थ चेतना का संचार करना।[1] हिन्दी नाट्य साहित्य में भारतेन्दु का योगदान विशेष रूप से सराहनीय है। उन्होंने युगीन समाज को बड़ी कुशलता से चित्रित किया है। डा० दशरथ ओझा के कथनानुसार 'हिन्दी नाट्य साहित्य के अभिनव मन्दिर का निर्माता, प्रतिमा-प्रतिष्ठापक और पुजारी एक ही व्यक्ति था और वह था भारतेन्दु हरिश्चन्द्र।'[2] भारतेन्दु ने अपने युग के तथा बाद के नाटककारों को विशेष रूप से प्रभावित किया और इनका मार्ग प्रशस्त किया। भारतेन्दु के साथ साथ इस युग के अन्य नाटककारों ने अपने नाटकों का विषय देश प्रेम बनाया और समाज में देश के प्रति प्रेम की भावना को जगाया। इन नाटककारों ने तत्कालीन समाज का सच्चाई के साथ चित्रण किया। डा० गोपीनाथ तिवारी के मतानुसार इस युग के नेता कलाकारों ने जब अपने भारत की दुर्दशा देखी तो इनका हृदय रो पड़ा। इन्होंने तत्कालीन दुर्दशा ग्रस्त अवनत और पीड़ित भारत की तुलना प्राचीन भारत से की तो दोनों दशाओं में महान् अन्तर पाया और सच्चाई से उनका चित्रण किया।[3] इस युग में मौलिक नाटकों के अतिरिक्त संस्कृत, अंग्रेजी तथा बंगला के अनेक नाटकों का अनुवाद भी किया गया जिनका नाटक साहित्य में विशेष महत्व है।

भारतेन्दु की मृत्यु के पश्चात् प्रसाद के आगमन तक कोई विशेष नाटक

---

१ रामगोपालसिंह चौहान हिन्दी नाटक सिद्धान्त और समीक्षा पृ० ६२

२ डा० दशरथ ओझा हिन्दी नाटक—उद्भव और विकास पृ० २०५

३ डा० गोपीनाथ तिवारी भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य पृ० २१०

रचना प्रकाश में नहीं आयी। इस विषय में हमारा मत यही है कि प्रसाद-युग के प्रारम्भ तक नाटक तो बहुत लिखे गये परन्तु उनका साहित्यिक महत्त्व बहुत ही कम है। रामगोपालसिंह चौहान का मत है कि भारतेन्दु तथा प्रसाद काल के बीच के समय में यों तो छुटपुट रूप में नाटक रचना होती रही किन्तु किसी प्रतिभासम्पन्न नाटककार के जन्म के अभाव के कारण बीच का यह समय नाटक रचना की दृष्टि से ठहराव का काल है।[1] भारतेन्दु-युग के पश्चात् प्राय दो प्रकार की नाट्य रचनाएं मिलती हैं—पारसी कम्पनियों के रंगमंच के लिए नाटक और सामाजिक धार्मिक और राजनीतिक विषयों पर व्यंग्यात्मक प्रहसन।

राजनीति भारतवासियों में नवीन प्रेरणाएं उत्पन्न कर रही थी। लार्ड कर्जन ने १९०५ ई० में बंगाल का विभाजन कर दिया और उसके परिणामस्वरूप वहां की जनता में एक व्यापक तथा जबरदस्त आन्दोलन उत्पन्न हुआ। इस आन्दोलन ने धीरे धीरे सर्वदेशव्यापी रूप धारण कर लिया एवं ब्रिटिश सरकार के प्रति जनता में असन्तोष और घृणा की भावना फैल गई। १९०७ ई० में लोकमान्य तिलक को निर्वासित-दण्ड दिया गया। १९१४ ई० में विश्व-युद्ध प्रारम्भ हो गया जिसका भारतीय राजनीति पर विशेष प्रभाव पड़ा। इस समय तक गांधी जी राजनीति में सक्रिय भाग लेने लगे थे और वे कांग्रेस के सभापति द्वारा पहली बार विषय-समिति के सदस्य चुने गए। एक ओर यह राजनीतिक स्थिति थी और दूसरी ओर पश्चिम से आए ज्ञान ने हमारे मानसिक दृष्टिकोण को विस्तृत करना प्रारम्भ कर दिया था। पढ़े लिखे लोगों का ध्यान प्राचीन पुराण ग्रन्थों के पठन-पाठन एवं प्राचीन इतिहास की टूटी हुई शृंखलाओं को तर्जो में गुम्फित करने में लगने लगा। प्रस्तुत नाटक साहित्य इन परिस्थितियों से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है।

नाटकों में अभिव्यक्त राजनीतिक चेतना का स्वरूप

१९०१ ई० से १९२० ई० तक के नाटकों में राजनीति की विशेष चर्चा नहीं मिलती। इन नाटकों में धार्मिक भावना को विशेष स्थान दिया गया है। फिर भी कुछ नाटककारों की दृष्टि सामाजिक और राजनीतिक पक्ष की ओर अवश्य गई है। राजनीतिक पक्ष में ब्रिटिश शासन के अत्याचार, शोषण, देशभक्ति एवं स्वतन्त्रता की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया गया है।

(क) अंग्रेजी शासन की क्रूरता

इस युग में भारतीय जनता स्वतन्त्रता के लिए अथक प्रयत्न कर रही थी परन्तु अंग्रेज लोग जनता की इस भावना को बड़ी क्रूरता के साथ दबा रहे थे। जो कोई नेता ब्रिटिश शासन के विरुद्ध आवाज उठाता उसी को जेल भेज दिया जाता था। अंग्रेज भारतीय जनता पर मनमाने अत्याचार कर रहे थे। परन्तु क्रान्ति की

१ रामगोपालसिंह चौहान हिन्दी नाटक सिद्धान्त और समीक्षा पृ० ६६

चिगारी जितन वग म दबाई जाती थी उतने ही जार के साथ वह अपना प्रकाग फनाता थी।

न्स युग के नाटककारो ने अपन नाटको के माध्यम से इस नासन स मुक्ति पान के लिए अनक मार्गों का महारा लेकर जनता म अग्रेजी शासन की क्रूरता के विरुद्ध प्रचार किया। प० माखनलाल चतुर्वेदी न अपने नाटक कृष्णार्जुनयुद्ध में राष्ट्रीय भावना अग्रेजा की राजनीति और भारत की सामाजिक दुर्व्यवस्था की ओर सकेत किया है। गालव ऋषि गगा स्नान के पश्चात् भगवान सूय को अघ्य देन के लिए अजलि मे गगाजल लेकर मत्र का जाप कर रहे थे कि तभी किसी न उनकी अजलि म पान थूक दिया। गालव ऋषि इस प्रकार क नासन प्रबन्ध स क्रुद्ध होकर बलराम स कहत हैं

गालव—आज तुम्हार हाथ म सत्ता है पर इसके सम्बन्ध म तुम्हे सारी बातें जाननी चाहिये। क्या तुम्ह ज्ञात है कि जो राजा प्रजा के दु खा की चिन्ता नही रखता वह राज्य का सवनाश की ओर ल जाता है। अब तुम्हारी भी यही दना हो रही है।[1]

इस समय ससार म एक नक्तिशाली राष्ट्र दूसरे निबल राष्ट्र को कुचलन का षडयन्त्र कर रहा था। एक राज्य दूसरे राज्य का निगल जाना चाहता था। 'कृष्णाजुन युद्ध नाटक मे यमराज इन्द्र स अपने शासन की श्रेष्ठता सिद्ध करत हैं और उनसे कहते है

यमराज—एश्वय की लालसा म एक राज्य दूसर पर अधिकार जमाता और परतत्र राष्ट्र का नाग करता है। छोटी छोटी जातिया ने बडे भूभागा पर प्रभुत्व जमा रखा है। फलस्वरूप गव लोभ क्रूरता, क्रोध अग्नि का बाहुल्य हो गया है।[2]

इस प्रकार न्स नाटक म ब्रिटिश नासन का क्रूरता का दिग्दर्शन कराया गया है।

राधेश्याम कथावाचक न अपन नाटक परमभक्त प्रह्लाद' म हिरण्यकशिपु की निदयता के माध्यम स अग्रेजो की क्रूरता का सकेत दिया है। हिरण्यकशिपु जनता से कहता है कि मेरी भक्ति किया करो परन्तु जनता उसकी भक्ति न करक परमात्मा की भक्ति करती है। इस पर हिरण्यकशिपु क्रुद्ध हाकर वज्रदन्त का आज्ञा दता है—' अच्छा वज्रदन्त जाओ। दुमति नाम क मन्त्री स कहो कि समस्त विद्रोही ब्राह्मणा के पोथी-पत्रे छीन लिए जायें अगर व उत्पात मचाएँ ता उनक यज्ञोपवीत भी उतरवा लिए जाएँ।'[3] हिरण्यकशिपु के अत्याचार की सीमा यहाँ

---

१ प० माखनलाल चतुर्वेदी कृष्णाजुन युद्ध प २३

२ वही प० ३६

३ राधेश्याम कथावाचक परमभक्त प्रह्लाद प० २८-२९

तक पहुँच जाती है कि वह उनको सूली पर चढ़ाने को तैयार हो जाता है। वह कहता है— बस आखिरी हुक्म यह है कि इनको यहाँ से अभी समय निकाल दो और कल सुबह सूली पर चढ़ा दो।[1] अंग्रेज लोग भी सूली पर चढ़ाने के आदेश दिया करते थे जिससे जनता त्रस्त हो जाती थी। इस प्रकार इन नाटकों के माध्यम से ब्रिटिश शासन की क्रूरता का चित्रण कराया गया है।

(ग) शोषण

इस काल में अंग्रेज लोग और उनके आश्रय में पलने वाले जमींदार साहूकार आदि अपने अधीन कर्मचारियों का शोषण कर रहे थे। किसान, मजदूर को जीवित रहने के लिए केवल रोटी प्राप्त होती थी उनका समुचित विकास नहीं हो रहा था। यदि वे शासन के विरुद्ध आवाज उठाते तो उनको कारा में डाल दिया जाता था। इस प्रकार मालदार व्यक्ति गरीबों का खून चूस रहे थे।

इस शोषण को देखकर इस युग के नाटककार अपने युगीन समाज से आँख बन्द नहीं कर सके एवं इस भावना को उन्होंने अपने नाटकों में समुचित रूप से दर्शाया है। राधेश्याम कथावाचक ने अपने द्रौपदी स्वयंवर नाटक में शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई है। सत्राजित् मणि के छिन जाने से पागल सा हो जाता है और इसके विरुद्ध अपनी पुत्री सत्यभामा से कहता है— मैं पूछता हूँ उन मालदारों से—जो गरीबों के मुँह से छीन टुकड़ा ग्रामों को हवाले कर मोटे बन हैं—क्या तुम्हारा खून खून है और हम गरीबों का खून पानी है? मैं पूछता हूँ उन नृपालों से—जो प्रजावासियों की गाढ़ी मेहनत की कमाई को टैक्स भी हो—राजकोष में हड़प लेना चाहते हैं—क्या तुम मनुष्य के रूप में देवता हो और हम—तुम्हारी तरह—दो हाथ और दो पाँव वाले होकर भी पशु हैं।[2] इस प्रकार राधेश्याम कथावाचक ने इस नाटक के लोग गरीबों के शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई है। अपने दूसरे नाटकों में भी उन्होंने शोषण के विरुद्ध समाज में जागृति उत्पन्न की है।

(ग) ब्रिटिश-शासन से मुक्ति पाने का प्रयत्न

ब्रिटिश शासन से मुक्ति पाने के लिए देश में जगह-जगह पर सत्याग्रह चल रहे थे अनेक स्थानों पर सभाएँ होती थीं और नेता लोग भाषण देते थे। विद्यार्थी पाठशालाओं में भाषण करके अंग्रेजों के विरुद्ध प्रचार कर रहे थे। जो विद्यार्थी इस प्रकार के कार्य करते थे उनको गिरफ्तार करके जेलों में भेज दिया गया। इससे विद्रोह की अग्नि शान्त न होकर और भी भड़क उठी। इस युग के नाटककारों ने भी अपनी लेखनी से जनता में इस भावना का प्रचार किया।

राधेश्याम कथावाचक ने परमभक्त प्रह्लाद नाटक में ब्रिटिश शासन का

---

१ राधेश्याम कथावाचक परमभक्त प्रह्लाद पृ० २

२ राधेश्याम कथावाचक द्रौपदी-स्वयंवर पृ० ५७

आसुरी शासन माना है। हिरण्यकशिपु अपने आसुरी शासन को प्रजा पर थापना चाहता है परन्तु प्रजा उसको मानने को तयार नहीं होती। विद्यार्थियों में इस शासन के प्रति असंतोष है। प्रमोद अपने साथियों से कहता है कि इस आसुरी शासन से मुक्ति लेनी चाहिए—'जननी जन्मभूमि कष्ट में है—देश दुःख में है—और उस दुःख तथा कष्ट का कारण यह है कि हिरण्यकशिपु अपने को जबरदस्ती परब्रह्म परमेश्वर कहलवाता है—तो बताओ तुम्हें उसके आसुरी शासन का पक्ष लेना उचित है या सत्य का?"[1] शासन के विरुद्ध प्रचार करने पर प्रमोद को गिरफ्तार कर लिया जाता है। कोतवाल प्रमोद के पिता लोभीलाल से कहता है कि प्रमोद ने राजकीय पाठशाला में व्याख्यान दिया था और वह व्याख्यान राजद्रोह पूर्ण समझा गया। उसी व्याख्यान से सब विद्यार्थी बागी हो गए। अतः उसे जेल जाना पड़ेगा। लोभीलाल अपने पुत्र से मिलता है और प्रमोद अपने पिता से इस बगावत का कारण बतलाता है— पाठशाला से निकले हुए विद्यार्थियों ने सारे देश में आग लगा दी। आग बुझ सकती थी, परन्तु राजकुमार प्रह्लाद को कारागार में डाल देना, घी का काम कर गया।[2] इस प्रकार की भावना उस समय के विद्यार्थी वर्ग में पायी जाती थी इसलिये उन्होंने स्वतन्त्रता के लिए भरसक प्रयत्न किया।

राधेश्याम कथावाचक ने अपने एक और नाटक 'वीर अभिमन्यु' में स्वतन्त्रता के लिए प्रयास किया है। पाण्डवों का राज्य दुर्योधन ने छलपूर्वक छीन लिया परन्तु अनेक प्रार्थना करने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ। अतः में युद्ध होता है और वीर अभिमन्यु लड़ता लड़ता सातों महारथियों को हरा कर अपनी मातृभूमि के लिए बलिदान होता है। मरते समय अभिमन्यु उनको धिक्कारता हुआ कहता है— तो थू है धिक्कार है सिंह के बच्चे को इस प्रकार धोखा देकर फांसने वाले वधिको! तुम पर हजार हजार फटकार है। हे भगवान् त्रिलोकीनाथ तुम साक्षी हो। हे आकाश में विचरने वाले तारागण! तुम देख रहे हो। अभिमन्यु अब तक धर्म पर ही लड़ा है और अब धर्म पर ही उसका देहावसान होता है। आर्य जाति के गौरव पर लड़ने वाला यह आर्यपुत्र आर्य माता पर ही बलिदान होता है।"[3] इस प्रकार उस समय के विद्यार्थी और नवयुवक अपने देश की आजादी के लिए हँसते-हँसते बलिदान हो जाते थे।

(घ) राष्ट्रीय एकता

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ही भारत में विभिन्न राजनीतिक दृष्टिकोण सामने आए जो अपने अपने ढंग से स्वतन्त्रता प्राप्त करना चाहते थे। राष्ट्रीय कांग्रेस में ही दो विचारधाराएँ थीं। एक ओर फिरोजशाह महता, वाचा, गोखले आदि उदार

१ राधेश्याम कथावाचक परमभक्त प्रहलाद पृ० १०७
२ वही पृ० १७४
३ राधेश्याम कथावाचक वीर अभिमन्यु, पृ० ८६-८७

था असहयोग उनकी नीति थी और शासन का बहिष्कार करके स्वराज्य प्राप्त करना उनका परमध्येय था।

उस समय ब्रिटिश सरकार भारतवासियों को ऊँचे पद नहीं दे रही थी। ऊँचे ऊँचे विशेष पदों पर अंग्रेजों की ही नियुक्ति होती थी। इसके विरोध में भारतीयों के मन में एक विशेष प्रकार का रोष था। राधेश्याम कथावाचक ने भारत माता नाटक में इस प्रकार की भावना को व्यक्त किया है। इस नाटक में दादाभाई नौरोजी ने ब्रिटिश सरकार से स्वराज्य की माँग की तथा भारतीयों को ऊँचे पद देने का आग्रह किया है। दादाभाई नौरोजी का कथन है— "इस बात की परम आवश्यकता है कि ब्रिटिश सरकार की छाया रहते हुए भारत के शासनाधिकार भारतवासियों के हाथ में दिए जाएँ। योग्य से योग्य भारतवासी चुन चुनकर ऊँचे ऊँचे ओहदों पर बहुत ज्यादा संख्या में मुकर्रर किए जाएँ। दूसरे शब्दों में भारत को कनेडा आस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रीका के समान स्वराज्य दिया जाय जिससे भारत निवासी सब प्रकार से सम्पन्न होकर फूलें और फलें। ऐसा होने पर भारत ब्रिटिश साम्राज्य का एक दृढ़ स्तम्भ बन जाएगा।"[1]

(च) खिताबों का त्याग

ब्रिटिश सरकार ने भारतीय नेताओं को विश्वास दिलाया था कि भारतीय शासन के योग्य होने पर उनको स्वराज्य दे दिया जाएगा परन्तु अंग्रेजों ने अपने वचन को कभी भी पूरा नहीं किया। वैधानिक सुधारों में थोड़ा-बहुत परिवर्तन करके भारतीय नेताओं से अपनी बात को मनवा लेते थे। अन्त में भारतीय नेताओं ने अंग्रेजों की फूट डालकर शासन करने की नीति को पहचाना और उनका विरोध किया। अंग्रेजों द्वारा कुछ भारतीयों को खिताब प्रदान किए गए थे। अंग्रेजों द्वारा दिए गए आश्वासन पूरे न होने पर भारतीयों ने उन खिताबों को वापिस कर दिया। इसका प्रभाव नाटकों में भी देखा जा सकता है।

भारतमाता नाटक में राधेश्याम कथावाचक ने भी भारतीयों द्वारा इन खिताबों का त्याग कराया है। इस नाटक में गोपालकृष्ण गोखले कहते हैं—"यह क्या है? हम खिताब मिल रहा है? स्वयं राजराजेश्वर की कृपा से? हम आज बड़भागी हैं परन्तु इसके लिए क्षमा चाहते हैं। यदि हम यह खिताब स्वीकार कर लेंगे तो हम अपने को बड़ा आदमी समझने लगेंगे। फिर शायद हम अपने गरीब भाइयों की सेवा उस वचनी के साथ नहीं कर सकेंगे।"[2] इस प्रकार इन खिताबों का त्याग कर भारतीय नेताओं ने एक आदर्शवादी भावना का परिचय दिया और तन मन धन से देश की सेवा की।

---

१ राधेश्याम कथावाचक भारतमाता पृ० ३२
२ वही पृ० ५४

नाटकों में अभिव्यक्त सामाजिक चेतना का स्वरूप

मध्ययुगीन रूढ़िवादी मान्यताओं का कड़ा विरोध १९वीं शताब्दी के समाज सुधारकों ने किया था और यह सुधार विशेषकर नारी को केन्द्र मानकर किया गया था। जाति-व्यवस्था का विरोध, विधवा विवाह, बाल विवाह निषेध, नारी शिक्षा आदि अनेक दिशाओं में सुधार के प्रयत्न किए गए थे। परन्तु इस युग में रूढ़िवादी वर्गों के कट्टर विरोध के कारण सम्पूर्ण समाज इन सुधारों को महत्व मानने के लिए तैयार नहीं था। परिणाम स्वरूप रूढ़िवादी तत्वों की कट्टरता इस युग में भी रही। भारतेन्दु युग में समाज सुधारकों से प्रेरणा लेकर तत्कालीन नाटककारों ने समाज-सुधार के अनेक विषयों पर नाटक लिखे थे परन्तु इस युग में भारतेन्दुकालीन स्तर के नाटक नहीं लिखे गए और न ही ये नाटककार अपने युग के प्रति अधिक सजग थे। यह हम पहले ही कह चुके हैं कि इस युग के नाटककार व्यवसायी कम्पनियों के मनोरंजनार्थ नाटक लिखते थे। फिर भी इन नाटककारों ने समाज के प्रति थोड़ा बहुत ध्यान तो दिया ही है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

(क) जाति भेद

प्राचीनकाल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—चार ही जातियाँ थीं और वे कर्म तथा गुणों पर आधारित थीं परन्तु समाज में विकृति आने पर जन्म के आधार पर जातियाँ बनती गईं एवं समाज अनेक जातियों में विभक्त हो गया। वर्तमान युग में जातियों का आधार जन्म ही माना जाता है। प्रस्तुत विवेच्य काल में भी जातियों का आधार जन्म ही माना गया था और एक जाति दूसरी जाति में विवाह नहीं कर सकती थी। जाति एवं विवाह के नियम बहुत ही कठोर थे। फिर भी समाज-सुधारकों ने इस दिशा में कुछ सुधार प्रस्तुत किए परन्तु अधिकांश जनता को वे सुधार मान्य न थे। केवल कुछ शिक्षित व्यक्तियों ने ही इन सुधारों को अपने जीवन में उतारा।

इस युग के नाटककारों ने अपने नाटकों के माध्यम से जाति भेदभाव को दूर करने का प्रयास किया। इन नाटककारों की कथा पुराणों पर आधारित थी। अतः उन्हीं के सहारे जाति भेद को समाप्त करने का ढंग सोचा गया। राधेश्याम कथावाचक ने अपने नाटक 'भारत माता' में इस भेदभाव को मिटाने का स्तुत्य प्रयास किया है। इस नाटक में रामसमान्त राय कहते हैं—'देश में शिक्षा का प्रचार करके लोगों को बताया जाए कि ईश्वर की सृष्टि में जब सब मनुष्य एक समान हैं तो फिर जाति-पाँति के भेद इस में क्यों वर्तमान हैं? कारण यही है कि लोग पुस्तकें पढ़ते हैं परन्तु उनमें लिखी हुई बातों पर अमल नहीं करते। हमने देखा शंकराचार्य ने लिखा है—'सर्वखल्विदं ब्रह्म' अर्थात् यह सारा संसार ब्रह्म का रूप है, जब सब में ही ब्रह्म है तो फिर यह वर्ण विरोध क्यों न दूर कर दिया जाए?'[1] इस प्रकार इस नाटक में जाति

---

१ राधेश्याम कथावाचक : भारतमाता, पृ० ५

के भेदभाव को मिटाने का प्रयास किया गया है। आगे चलकर वे कहते हैं कि वर्ण आश्रम के भेदभाव को मिटाकर समस्त हिन्दू जाति एक ही हिंदू भारतीय झण्डे के नीचे आए और चारों वर्णों में खान-पान तथा रोटी-बेटी का सम्बन्ध स्थापित हो, तब भारतीय समाज सुधर सकता है। राधेश्याम कथावाचक ने इस दिशा में यह नाटक लिखकर सराहनीय कार्य किया है।

आगा हश्र ने भी अपने नाटक 'भीष्म प्रतिज्ञा' में इसी समस्या को उठाया है। इस नाटक में राजा शान्तनु धीवरराज की कन्या सत्यवती पर मोहित हो जाता है और उससे विवाह करना चाहता है। परन्तु शिवदत्त इसका विरोध करता है और कहता है कि आप क्षत्रिय हैं और यह शूद्र की कन्या। दोनों का विवाह नहीं हो सकता। परन्तु राजा शान्तनु इस जाति के भेदभाव को नहीं मानता और शिवदत्त से कहता है— प्रेम की आंख रूप और गुण को देखती है जात पाँत को नहीं देखती।[1] इस प्रकार राजा शान्तनु जात पाँत को न मानकर सत्यवती से विवाह कर लेता है। इसी नाटक में आगे चलकर राजा शाल्व भीष्म से कहता है कि विचित्रवीर्य की माता क्षत्राणी न होकर एक शूद्र कन्या है। इस पर भीष्म कहते हैं कि क्षत्रिय जाति-पाँति को नहीं मानते। भीष्म का कथन इस प्रकार है—'निश्चय महाराज की माता क्षत्राणी नहीं है किन्तु क्या भारत जननी शूद्र को अपनी सन्तान नहीं समझती क्या गंगा यमुना अपने जल से शूद्र की प्यास नहीं बुझाती क्या आर्य भूमि के देवता शूद्र की प्रार्थना नहीं सुनते? ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य के समान शूद्र भी हिन्दू धर्म और हिन्दू शास्त्रों की मर्यादा को नमस्कार करते हैं। शूद्र भी प्रयाग और काशी को मुक्ति धाम समझते हैं। शूद्र भी जीवन और मरण में राम नाम का सहारा ढूंढते हैं। उच्चता और नीचता शूद्र होने में नहीं पापी और पुण्य आत्मा होने में है।[2] आगा हश्र ने भी जाति-पाँति के भेदभाव को नहीं माना है। इस नाटक के द्वारा नाटककार अपने युग को बताना चाहता है कि जाति पाँति समाज में कोई अर्थ नहीं रखती। जाति गुणों पर निर्भर करता है।

शूद्रों को सार्वजनिक कुओं से पानी नहीं लेने दिया जाता था क्योंकि उनको नीच जाति का माना गया था। यदि कोई भूल से इन कुओं से पानी ले भी लेता तो उसकी पिटाई होती एवं गाँव से निकाल दिया जाता था। नारायणप्रसाद 'बेताब' इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं हैं। वे कहते हैं कि सब मनुष्य समान हैं कोई छोटा बड़ा नहीं है। अपने नाटक 'महाभारत' में उन्होंने इसी समस्या को उठाया है। चेता चमार का बेटा सेवा ठाकुरजी को भोग लगाने के लिए सार्वजनिक कुएँ से पानी लेने जाता है परन्तु शान्ता (द्रोणाचार्य की पुत्री) उसे पानी लेने से रोक देती है और उसे गालियाँ देती है। वह उसे फाँसी दिलवाने की धमकी देती है और

---

१ आगा हश्र भीष्म प्रतिज्ञा पृ० २२
२ वही पृ० ५

पर निर्भर करती है। इस विषय में उनका मत इस प्रकार है—'क्या द्विज लोग भंगी चमारों के साथ स्पर्श कर सकते हैं? कदापि नहीं अछूत जाति अछूत ही रहेगी परन्तु अछूत व्यक्ति अछूत न रहे यह सम्भव है, धर्मभ्रष्ट ब्राह्मण भी छूने योग्य नहीं है और धर्मनिष्ठ अछूत भी सत्कार का पात्र है।'[1] इस प्रकार इस नाटक में बेताब भी जाति का गुण और कर्म पर आश्रित मानते हैं।

(ख) बहु विवाह

भारतीय समाज में नारी की स्थिति बहुत ही शोचनीय है। वह आरम्भ से ही शोषण का केन्द्र रही है और आज भी पुरुष उसे हीन समझता है। हिन्दू समाज में पुरुष एक पत्नी के जीवित रहते दूसरे तीसरे अथवा अधिक विवाह करता है तब तो नारी की स्थिति और भी विचारणीय हो जाती है। इस स्थिति में प्रश्न पहली पत्नी का ही नहीं, सभी पत्नियों का है और सब के लिए वह समान रूप से जटिल बन जाता है। बहु विवाह प्रथा से समाज में नई नई समस्याएँ उत्पन्न होती हैं परिवार बनते हैं तथा बिगड़ते हैं और कभी कभी तो पारिवारिक स्थिति बहुत गंभीर हो जाती है। बहु विवाह प्रथा से ही विधवा और तलाक की समस्या जन्म लेती है। बहु विवाह प्रथा इस युग के नाटकों में भी कहीं-कहीं देखी जा सकती है।

राधेश्याम कथावाचक ने अपने नाटक 'द्रौपदी स्वयंवर' में बहु विवाह की प्रथा को चित्रित किया है। श्रीकृष्ण की रानियों को देखकर नारद उनसे कहते हैं—'आप की भी तो यह बहु विवाह वाली लीला बड़ी गम्भीर है। रामावतार में 'एक पत्नी-व्रत' के जिस आदर्श को संसार के सामने रखा है इस अवतार में उसके विपरीत हो रहा है।'[2] नारद कहना चाहते हैं कि समाज में यह मान्यता चलती रहे क्योंकि बहु विवाह प्रथा से समाज दूषित होता है। इसका उत्तर भगवान् श्रीकृष्ण यह देते हैं कि मैंने जो अनेक विवाह किए हैं वह एक महासाम्राज्य स्थापित करने के लिए किए हैं। उनका कथन इस प्रकार है— 'मैंने जो इधर कालिन्दी मित्रविन्दा सत्या, भद्रा और लक्ष्मणा से विवाह किए हैं वह इसलिए कि अवन्ती अयोध्या केकय आदि सब देशों को संगठित करके आर्यावर्त में एक महासाम्राज्य की स्थापना की जाय।'[3] नाटककार ने साम्राज्य की एकता के लिए बहु विवाह कराया है परन्तु हमारा मत है कि इस प्रथा में पुरुष जाति का लोभ है चाहे पुरुष राज्य के विस्तार के लिए बहु विवाह करता हो, चाहे धन की इच्छा से और चाहे अपनी काम-वासना को शान्त करने के लिए—प्रत्येक स्थिति में उसका अपना व्यक्तिगत लाभ है। इस युग की स्थिति तो और भी स्पष्ट है—क्योंकि भारत में अनेक राजा महाराजा और नवाब थे जो बहु विवाह के पक्ष में थे।

---

१ नारायणप्रसाद बेताब रामायण पृ० १६१

२ राधेश्याम कथावाचक द्रौपदी-स्वयंवर पृ० ६३

३ वही पृ० १६६

नारायणप्रसाद 'बेताब' भी एक से विवाह के पक्ष में हैं। वे अपने नाटक 'रामायण' में एक विवाह का पक्ष लेते हैं। इस नाटक में दशरथ अपनी रानी कैकेयी से कहते हैं— धर्मशास्त्र में एक ही स्त्री से विवाह करने की आज्ञा है मैंने तीन विवाह करके बल्कि धर्म की मर्यादा को तोड़ा है अब मुझ पर जितना संकट पड़े थोड़ा है।[1] इस प्रकार इस उद्धरण से प्रकट है कि नाटककार एक विवाह को ही मान्यता देते हैं। बहु विवाह प्रथा में पुरुष के निहित स्वार्थ की भावना पायी जाती है।

(ग) साधुओं का ढोंग

प्राचीन युग में साधु लोग सच्चे अर्थों में साधु होते थे। वे ५० वर्ष की आयु के पश्चात् साधु-वृत्ति धारण करके मोक्ष की कामना करते थे। परन्तु समय की परिवर्तनशीलता के साथ-साथ इन साधुओं ने भी अपना व्यवसाय ढोंग किया और पाखण्डवाद आरम्भ कर दिया। आजकल के साधु मन्दिरों में व्यभिचार करते हैं दूसरे की स्त्रियों को विभिन्न प्रकार के लालच देकर बहकाते एवं उनका हरण करते हैं। अशिक्षित स्त्रियाँ इन साधुओं के बहकावे में आकर अपना घर छोड़ देती हैं। कभी-कभी तो इन साधुओं के साथ भाग जाती हैं। राधेश्याम कथावाचक ने इन साधुओं के ढोंग की पोल अपने नाटकों में खोली है।

राधेश्याम कथावाचक के नाटक 'श्रवणकुमार' में चन्दनदास का एक मन्दिर है जो पवित्रता एवं शुद्धि का प्रतीक माना जाता है। चन्दनदास इस मन्दिर का दुरुपयोग करता है और विभिन्न प्रकार के व्यभिचार करता है। वह एक विवाहिता स्त्री चमेली को बहकाकर उसके पति से विमुख कर देता है और उसके साथ उसी मन्दिर में सोता रहता है। उसको इतने में ही सन्तोष नहीं होता। वह उसको भगा ले जाने का भी कार्यक्रम तैयार करता है। वह चमेली से कहता है— 'चमेली तेरे बिना मुझे सारा मन्दिर सूना लगता था—सारा संसार ऊजड़ दीखता था।' चमेली भी उसको इसी रूप में उत्तर देती है— 'मुझे भी आपके बिना अपना जीवन बड़ा बुरा मालूम होता था। अब मैं एक घड़ी भी आपको नहीं छोड़ूँगी। एक पल भी आपकी सेवा से मैं न हटूँगी। मैंने आपके खातिर आज अपने स्वामी अपने सम्बन्धियों को अपने ग्राम को अपने स्थान को सबको छोड़ दिया।'[2] इतना ही नहीं चन्दनदास चमेली से कहता है कि दूसरे नगर में चलकर तुम्हारा नाम सच्ची बाई जी रक्खेंगे और तुम्हें शृंगार बनाकर ऐसा आडम्बर रचेंगे कि बड़े-बड़े महापुरुष भी तुम्हारे चरणों में लोटने लगें। इस प्रकार चन्दनदास चमेली को बहकाता है। चमेली भी इस कार्यक्रम में सम्मत है। वह ढोंगी चन्दनदास से कहती है— 'सच्चा

---

१ नारायणप्रसाद बेताब : रामायण, पृ० १ ८

२ राधेश्याम कथावाचक : श्रवणकुमार, पृ० ११८

३ वही, पृ० ११९

ाई जी उन्ह इस प्रकार ग्रन्धा बनाएँ और अपने सच्चे देवता बाबा पर (चेतनदास
े गले म हाथ डाल कर) बलिहारी जाये।" अन्त म वे दोनों मृत्यु को प्राप्त होकर
रक यातना भोगते दिखाये जाते हैं। इस प्रकार का चित्रण करके राधेश्याम कथा
ाचक ने इन ढोंगी साधुग्रों की पोल अच्छी प्रकार खोली है तथा इनसे बचने के
लिए समाज को सावधान भी किया है।

नाटको मे अभिव्यक्त सांस्कृतिक चेतना का स्वरूप

१६वीं शताब्दी म मध्ययुगीन रूढ़िवादी विचारों का खण्डन किया गया और नवीन चेतना का विकास हुआ। यह प्रक्रिया बीसवी शताब्दी म भी चली परन्तु समाज का झुकाव प्राचीनता की ओर ही अधिक रहा। भारतीय समाज म पाश्चात्य सभ्यता तो आयी परन्तु एकदम जनता का पश्चिमीकरण नहीं हो सका। धम की स्थिति म कोई विशेष अन्तर नहीं आया। इस युग के नाटककार ईश्वर म पूरी आस्था रखते थे और धार्मिक भावना म विश्वास रखते थ। इसका कारण यह था कि इस युग म स्वामी दयानन्द का प्रभाव कम नहीं हुआ, आयसमाज अपने सिद्धान्तों का प्रचार बराबर पूरी शक्ति के साथ कर रहा था। युगीन नाटककार आत्मा परमात्मा, पुनजन्म एव कम के सिद्धान्त म विश्वास रखते थे और इनसे सम्बन्धित आस्थाओं का चित्रण नाटकों म भी हुआ। इस युग के नाटककारों ने पौराणिक नाटकों के माध्यम स आत्मा, परमात्मा, देवी और देवताओं म जनता के विश्वास की पुष्टि की है।

(क) ईश्वर मे विश्वास

इस युग के सभी नाटककारों का ईश्वर मे विश्वास पाया जाता है। राधेश्याम कथावाचक पर धम का अधिक प्रभाव था इसलिए उनके नाटकों म धम की भावनाओं का अधिक चित्रण मिलता है। उन्होंने नाटक परमभक्त प्रह्लाद मे ईश्वर म पूर्णरूपेण आस्था प्रकट की है। इस नाटक म हिरण्यकशिपु प्रजा स कहता है कि मैं ही ईश्वर हूँ—मेरा ही नाम लिया जाय। प्रह्लाद अपने पिता को परमात्मा न मान कर सच्चे परमात्मा का ध्यान करता है। वह लाभोलाल स कहता है— सच्चा परमात्मा वह है जिसके प्रकाश स नेत्र देखते है जिसकी सत्ता से कान सुनते है जिसकी प्रेरणा से वाणी बोलती है जिसकी सत्ता से जीव मात्र सोते जागते खाते पीते चलते फिरते और मरते जीते हैं वही परमात्मा है।"[2] हिरण्यकशिपु अपने पुत्र प्रह्लाद को अनेक प्रकार की यातनाएँ देता है परन्तु प्रह्लाद का सच्चे परमात्मा म विश्वास था। वह सब प्रकार के कष्टों को हँसते हँसते सहन कर लेता है। ईश्वर

---

१ राधेश्याम कथावाचक श्रवणकुमार पृ० १२१

२ राधेश्याम कथावाचक परमभक्त प्रह्लाद पृ० ७७

उसकी सहायता करता है और रक्षा भी। इस प्रकार गोविन्ददास श्रीवास्तव ने इस नाटक के द्वारा जनता में ईश्वर के प्रति विश्वास की भावना को प्रदर्शित किया है।

नारायणप्रसाद 'बेताब' ने भी अपने नाटक कृष्ण-सुदामा में ईश्वर के प्रति विश्वास प्रकट किया है। इस नाटक में गुरु के आश्रम के पास कृष्ण सुदामा और उधरू (एक विद्यार्थी का नाम) पढ़ते हैं परन्तु उधरू अपने गुरुजी से पूछता है कि ईश्वर कौन है? उसके हाथ-पाँव हैं? वह नजर नहीं आता। इस प्रश्न का उत्तर गुरुजी इस प्रकार देते हैं कि गुणी के गुण नजर आया करते हैं उनका आकार नहीं। गुरुजी के कथन इस प्रकार हैं— "ईश्वर की सत्ता सब जगह मौजूद है। वह नजर नहीं आया करता परन्तु उसके गुण नजर आते हैं।"[1] इस प्रकार गुरुजी अपने विद्यार्थियों को ईश्वर की सत्ता का आभास कराते हैं और उनमें ईश्वर के प्रति आस्था रखने की शिक्षा देते हैं। नारायणप्रसाद 'बेताब' स्वयं भी ईश्वर के प्रति आस्था रखते थे और यही भावना इस नाटक में परिलक्षित होती है।

(ख) आत्मा का स्वरूप

हमारे शास्त्र में आत्मा के विषय में कहा गया है कि आत्मा का नाश कभी नहीं होता, केवल शरीर का ही नाश होता है। जिस प्रकार मनुष्य पुराने कपड़ों को उतार फेंकता है और नवीन वस्त्र धारण कर लेता है ठीक उसी प्रकार आत्मा भी इस जर्जर पुराने रोगयुक्त शरीर का त्याग कर नया शरीर धारण कर लेता है। गीता में भी आत्मा को अमर बताया गया है। अतः इस युग के नाटककारों पर गीता का प्रभाव परिलक्षित होता है।

आगा हश्र ने भीष्म प्रतिज्ञा नाटक में आत्मा के विषय में लिखा है कि वह कभी नहीं मरती, केवल शरीर का नाश होता है। इस नाटक में अम्बा आत्महत्या करने को तैयार होती है परन्तु भीष्म उसको ऐसा करने से रोकता है। इस पर अम्बा भीष्म से कहती है— "शरीर का नाश होता है आत्मा का नाश नहीं होता।"[2] इस प्रकार आगा हश्र ने भी आत्मा की सत्ता को सिद्ध करने का प्रयास किया है।

नारायणप्रसाद 'बेताब' ने महाभारत नाटक में आत्मा के स्वरूप को और भी अच्छे प्रकार से चित्रित किया है। महाभारत में युद्ध क्षेत्र में अर्जुन भीष्म पितामह पर बाण चलाने को तैयार नहीं होता और कहता है कि मैं इनकी मृत्यु नहीं चाहता। इस पर भगवान् कृष्ण कहते हैं—तुम अज्ञानी हो। जिस पंचभूत का नाम भीष्म पितामह है वह क्या है? जड़ और प्रकृति का मेल है और वे दोनों अमर हैं। इनको मार सकना क्या तेरे बच्चों का खेल है? क्या तुमने जीव के सम्बन्ध में नहीं सुना?

---

१ नारायणप्रसाद बेताब कृष्णसुदामा पृ १३

२ आगा हश्र भीष्म प्रतिज्ञा पृ ८२

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावक ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुत ।।[1] (गीता)

अर्थात् इस आत्मा को शस्त्रादि नहीं काट सकते और इसको आग नहीं जला सकती है तथा इसको जल गीला नहीं कर सकता है और वायु सुखा नहीं सकती है। अतः आत्मा अमर है। इस प्रकार नारायणप्रसाद बेताब ने आत्मा की सत्ता का स्वीकार किया है। उन्होंने अपने नाटक के द्वारा भारतीय जनता में आस्तिक भावना का प्रचार किया है।

राधेश्याम कथावाचक ने भी अपने नाटक 'वीर अभिमन्यु' में आत्मा की सत्ता का स्वीकार किया है। इस नाटक में अभिमन्यु की मृत्यु हो जाती है और सुभद्रा उसके शरीर को देखकर विलाप करती है। भगवान् श्रीकृष्ण सुभद्रा को समझाते हैं और कहते हैं कि इस प्रकार विलाप करना व्यर्थ है। जिसने संसार में जन्म लिया है वह एक दिन अवश्य मरता है। सभी की यही दशा है फिर अभिमन्यु की मृत्यु को तो मृत्यु नहीं कहना चाहिए उसने तो नवजीवन का संचार किया है। आगे चल कर श्रीकृष्ण सुभद्रा को आत्मा का रहस्य बताते हैं—"सुभद्रा तू ज्ञानवती है। दश इंद्रिय पंचतत्त्व से बने हुए जिस मनुष्य शरीर को तूने अभिमन्यु समझा है वह तो यह पृथ्वी पर पड़ा है। फिर बता तेरा लाल तुझसे कहाँ पृथक हुआ है? और जो शरीर में काम करने वाली चैतन्य सत्ता थी, उस 'जीवात्मा' को तूने अभिमन्यु समझा है तो वह अजन्मा है। उसको किसी ने नहीं देखा है।[2]" इस प्रकार श्रीकृष्ण कहते हैं कि आत्मा निःसन्देह नित्य, सर्वव्यापक स्थिर रहने वाली और सनातन है। राधेश्याम वैसे भी धार्मिक व्यक्ति होने के कारण आस्तिक थे। अतः वे ईश्वर भक्ति भावना में विश्वास रखते थे। इसलिए उन्होंने भी आत्मा का चित्रण सुन्दर ढंग से किया है।

(ग) धर्म का स्वरूप

प्राचीन काल से ही धर्म आदमी को अनुशासित करने वाली शक्ति रही है। परन्तु आधुनिक समय में मनुष्य बुद्धिवादी धारणा को लेकर धर्म की सत्ता को मानने से इन्कार करता है। डा० राधाकृष्णन् के मतानुसार धार्मिक विश्वास की कठिनाई ही विश्व की वर्तमान दुर्व्यवस्था के लिए उत्तरदायी है। यद्यपि आज भी अनेक धर्म हैं परन्तु उन सब में अनेक प्रकार की त्रुटियां पाई जाती हैं और धर्म का स्वस्थ रूप देखने को नहीं मिलता। डॉ० राधाकृष्णन् का मत है कि "हम एक ऐसी धार्मिक आस्था की आवश्यकता है जो विवेकहीन हो एक ऐसी आस्था जिसे हम बौद्धिक व्यक्ति निष्ठा और सौन्दर्यशास्त्रीय विश्वास के साथ अपना सकें तक बड़ी, लचीली

---

१ नारायणप्रसाद बेताब महाभारत पृ० ८६

२ राधेश्याम कथावाचक वीर अभिमन्यु पृ० १४२

आस्था समूची मानव जाति के लिए जिसमें प्रत्येक व्यक्ति धर्म अपना उल्लेखनीय योगदान कर सकता हो। हमें एक ऐसी आस्था की आवश्यकता है जो समूची मानव जाति में निष्ठा रखे।[1] आज एक धर्म दूसरे धर्म पर व्यंग्य का चाबुक लगाता है। इस युग में एक ऐसे धर्म की आवश्यकता है जो समस्त मानव जाति का कल्याण कर सके और वह धर्म हो सकता है मानव धर्म।

राधेश्याम कथावाचक ने अपने नाटक 'भारतमाता' में मानव धर्म की प्रतिष्ठा की है। उनका मत है कि मानव धर्म में मनुष्य-मनुष्य में भेदभाव नहीं होना चाहिए। धर्म के सम्बन्ध में उनका कथन इस प्रकार है— मेरी समझ में नहीं आता कि लोग भारत में धर्म के नाम पर क्यों लड़ते हैं? हिन्दू धर्म, मुस्लिम धर्म, सिख धर्म, ईसाई धर्म। क्या नहीं लोग जानते कि सब धर्मों का एक ही धर्म है— और वह है मानव धर्म। जब यह धर्म अंगीकार किया जाता है तब मनुष्य-मनुष्य में भेद नहीं माना जाता। इसके बाद छोटे-बड़े स्त्री-पुरुष सभी के भेदभाव को भुलाकर एक महान् यज्ञ का आयोजन किया जाता है—जो एक नई चेतना और नया प्राण प्रदान करता है। तब महान् आत्माओं का धर्म एक हो जाता है और वह सर्वमान्य तथा सर्वकालीन होता है।[2] राधेश्याम कथावाचक एक ऐसे धर्म की स्थापना चाहते थे जो मानव का कल्याण करे और जिसमें ऊँच-नीच का भेदभाव न हो। इस प्रयास में वे पूर्ण सफल रहे हैं और इसीलिए 'भारतमाता' एक सफल नाटक माना जाता है। डॉ० राधाकृष्णन् धर्म की आवश्यकता का अनुभव करते हुए कहते हैं कि सत्य के अनुशासन के रूप में इस (धर्म) में इस युगरोग का मुकाबला करने की कुंजी और सारभूत साधन विद्यमान हैं जो सभ्य समाज के अस्तित्व के लिए खतरा बना हुआ है। इसमें हमारे विचार और आचरण को आत्मा के धर्मों का अनुवर्ती बनाने की बात निहित है।[3]

(घ) धार्मिक अन्धविश्वास

इस युग में धार्मिक अन्धविश्वास बहुत फैला था। स्त्रियाँ तो अपने पतियों के नाम भी नहीं लेती थीं। उनका ऐसा विचार था कि यदि वे अपने पतियों का नाम लेंगी तो कहीं उनकी आयु कम न हो जाए और परिवार की कोई हानि न हो जाए। एक ओर जनता का कुछ भाग ईश्वर में विश्वास रखता था और दूसरी ओर लोग नास्तिक बनते जा रहे थे। फिर भी किसी न किसी रूप में धर्म की मान्यता थी परन्तु धर्म के स्वरूप के अभाव में धार्मिक अन्धविश्वास फैल चुका था।

राधेश्याम कथावाचक के नाटक 'श्रवणकुमार' में इस प्रकार के धार्मिक अन्धविश्वास का उदाहरण प्राप्त होता है। ननिका अपनी सखी विजया से आग्रह

---

1 डॉ० राधाकृष्णन, आधुनिक युग में धर्म, भूमिका पृ० क
2 राधेश्याम कथावाचक, भारतमाता, पृ० ८३-८४
3 डॉ० राधाकृष्णन, धर्म और समाज, पृ० ४६

करती है कि वह अपने पति का नाम बताए परन्तु बिजली नाम न बताकर उसमे कहती है— रहने दो सखी ऐसी छेड रहने दो। अपने अपने मुख से स्वामी का नाम नही लिया जाता। [1] इस प्रकार बिजली अपने पति का नाम नहा बतलाती। आजकल भी गाँव म स्त्रियाँ अपने पति के नाम बताने में सकोच करती हैं और यह है केवल शिक्षा के अभाव का कारण। ऐसी आशा की जाती है कि जब समाज पूर्ण रूप से शिक्षित हो जाएगा तो यह अन्ध विश्वास मिट जाएगा।

कुछ स्वार्थी लोग देवी को प्रसन्न करने के लिए मनुष्यो की बलि चढाते है ताकि देवी खुश होकर उनके बिगडे हुए काम सिद्ध कर दे। नारायण प्रसाद बेताब ने अपने नाटक कृष्ण सुदामा म इसका वर्णन किया है। इस नाटक म अघासुर और उसके मित्र राजा यायपाल को पकडकर देवी की बलि चढाना चाहते है। इस पर राजा यायपाल उनको जगदम्बा का सही अर्थ समझाते हैं और कहते हैं— अरे नास्तिको! जगदम्बा का अर्थ है जगत् की माता, जो जगत् की माता है वह हमारी भी माता है परन्तु तुम अन्धे होकर उसी के सामने हलाल करते हो। माता कैसे प्रसन्न हो सकती है। माता पुत्ररक्षक होती है या पुत्र भक्षक?"[2] इस नाटक के द्वारा नारायण प्रसाद बेताब ने अन्ध विश्वास को समाप्त करने का प्रयास किया है ताकि समाज म इस प्रकार की हत्याए न हो।

वीर अभिमन्यु नाटक म एक और अन्ध विश्वास का रूप प्रस्तुत किया गया है। आजकल के साधु गेरुए रंग के कपडे पहनकर भोली भाली जनता को ठगते फिरते हैं और जनता उनको पहुँचे हुए साधु मानती है। इस प्रकार साधु लोग जनता को ठगते फिरते हैं। राधेश्याम कथावाचक ने इस नाटक म इस का अच्छा चित्रण किया है। चम्पा सुन्दरी से कहती है— धर्म की इस समय ऐसी अच्छी ओट है कि चाहे कितना ही खोटे करने वाला हो बस खेल के गेरू म कपडे रँगे और बन गए स्वामी जी महाराज। भोली हिन्दू जाति कहने लगी—बाबाजी दण्डवत् महाराज नमो नारायण।[3] आगे चलकर चम्पा कहती है कि ये साधु देश पर एक बोझ बन हुए हैं। यदि मेरा बस चले तो इन सबको युद्ध भूमि भिजवा देती। इस प्रकार पता चलता है कि इन साधुओ के विषय म समाज की क्या भावना है। जो अशिक्षित समाज है वह तो इन साधुओं को पूजता है और शिक्षित समाज म इनकी कदर नहा करती। नाटककार ने चम्पा के शब्दो द्वारा इन साधुओ की पोल खोली है।

इसी नाटक म भूतो का प्रभाव दिखाया गया है। रायबहादुर भूतो के प्रभाव को नष्ट करने के लिए चिता पर मृतक बनकर लेट जाता है। जब उसकी पत्नी सुन्दरी चिता म आग लगाने के लिए तैयार होती है तो वह उठकर भागने लगता

१ राधेश्याम कथावाचक श्रवणकुमार पृ० ५७
२ नारायणप्रसाद बेताब कृष्ण सुदामा पृ० ८६
३ राधेश्याम कथावाचक वीर अभिमन्यु पृ० १६७ १६८

नारद गंगा नदी की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं—"यह पुण्य क्षेत्र कितना प्यारा है। गंगा तट पर जाते ही मन प्रसन्न हो उठता है। देखो न भगवती जाह्नवी कैसी लहरों से खेल रही हैं। मानो संसार के पाप को निर्वासित करने का इतना प्रयत्न कर रही हैं। शीतल जल कैसा अच्छा है जो संसार के हर संतप्त जीव को शीतल करने की शक्ति रखता है।"[1] इस प्रकार गंगा को एक पावनस्थल माना जाता है। वर्तमान समय में भी गंगा की महिमा कम नहीं हुई है। आज भी लोग गंगास्नान इस भावना से करते हैं कि उनके पाप धुल जाएँगे और उनको पुण्य मिलेगा। इस युग के प्रायः सभी नाटककारों ने अन्ध विश्वास का अंकन नाटकों में स्थान दिया है और यह बताने का प्रयास किया है कि अन्ध विश्वास में कोई लाभ नहीं होता है बल्कि अज्ञानता का ही परिचय मिलता है।

(ङ) अंग्रेजी शिक्षा के प्रति असन्तोष

इस युग में भारत में अनिवार्य शिक्षा नहीं थी। आवश्यकता इस बात की थी कि सर्वप्रथम भारत में अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा प्रदान की जाए किन्तु इसके स्थान पर अंग्रेजी शिक्षा लागू की गई और वह भी विश्वविद्यालय के स्तर पर काफी महँगी। भारतीय नेताओं को इसके प्रति असन्तोष हुआ और उन्होंने इसके विरुद्ध आवाज उठाई। राधेश्याम कथावाचक ने भारत माता नाटक में इसके विरुद्ध लिखा है। इस नाटक में गोपालकृष्ण गोखले कहते हैं— सारे संसार में मनुष्य का पहले अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा अर्थात् लाजमी और मुफ्ती तालीम दी जाती है, परन्तु भारत में अभी ऐसा नहीं है। यदि हम आन्दोलन करें तो भारत में ऐसी शिक्षा का प्रबन्ध अवश्य हो सकता है।'[2] भारतीय नेता जनता को शिक्षित करने के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की आवश्यकता को समझते थे। इसलिए उन्होंने अनिवार्य शिक्षा के लिए प्रचार किया।

भारतीय नवयुवक नौकरी प्राप्त करने के लिए अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे परन्तु यह अंग्रेजी शिक्षा भारतीय संस्कृति से दूर ले जा रही थी। शिक्षित व्यक्ति ईसाई धर्म के प्रति आकृष्ट होता जा रहा था। लार्ड मैकाले की यही योजना थी कि भारतीय अंग्रेजी शिक्षा के प्रति आकृष्ट हों अतः उन्होंने शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही रखा। इस शिक्षा के प्रति भारतीय नेताओं ने असन्तोष व्यक्त किया। राधेश्याम कथावाचक अपने नाटक 'भारत माता' में अंग्रेजी शिक्षा के प्रति कहते हैं— 'उसे उठाने के लिए तालीमगाहें बड़ी-बड़ी यूनिवर्सिटी आदि का निर्माण कर रहे हैं। पर वास्तव में ये हैं क्या? अंग्रेजी पढ़ा लिखा क्लर्क उगलने वाली संस्थाएँ। वहाँ स्वतन्त्र रूप से विचारना-सोचना और भाव व्यक्त करना सिखाया ही नहीं जाता। शारीरिक

---

1 पं० माखनलाल चतुर्वेदी कृष्णार्जुन युद्ध पृ० ५८-५९
2 राधेश्याम कथावाचक भारत माता पृ० ५

मानसिक उन्नति किसी की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। अपनी भारतीय संस्कृति से विहीन उथली पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगे हिन्दुस्तानी युवक वर्ग से निवेदन है जो ब्रिटिश नौकरशाही के विशाल भवन का निर्माण करने के लिए असभ्य पत्थर के टुकड़ों की तरह अपने को नींव में भर रहे हैं ताकि उस कूटनीति के उन्हीं की छाती पर वह भव्य इमारत खड़ी हो सके। इस प्रकार भारतीय नेताओं ने अंग्रेजी शिक्षा का विरोध तो किया था और नाटककार राधेश्याम कथावाचक ने भी अपने नाटक में बड़े शब्दों में असन्तोष व्यक्त किया है परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि एक ओर तो पाश्चात्य शिक्षा का विरोध हो रहा था और दूसरी ओर बड़े बड़े नेता और धनी व्यक्ति अपने बच्चों को विदेशों में शिक्षा ग्रहण करने के लिए भेज रहे थे। इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि वे स्वयं ही भारतीय शिक्षा के प्रति रुचि नहीं रखते थे। अतः कुछ भी हो राष्ट्रीय नेताओं की योजना सफल हुई तथा शिक्षा का माध्यम बनी अंग्रेजी और भारत में पाश्चात्य शिक्षा का बोलबाला रहा।

नाटकों में अभिव्यक्त आर्थिक चेतना का स्वरूप

इस युग में सामाजिक सुधारों की भाँति आर्थिक क्षेत्र में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। १९वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों तक भारत में कई अकाल पड़े थे जिनका प्रभाव इस युग के किसानों पर देखा जा सकता है। किसानों की आर्थिक दशा खराब हो चुकी थी। किसानों की कमाई का एक बहुत बड़ा भाग जमींदारों और साहूकारों के पास जाता था। सरकारी कर तथा लगान चुकाने के पश्चात् किसान के पास खाने के लिए बहुत ही कम अन्न शेष रहता था। परिणाम यह हुआ कि किसानों की आर्थिक स्थिति खराब होती गई और जमींदार वर्ग धनी बनता गया।

(क) अकाल

पिछले युग में जनता अकालों से पीड़ित थी परन्तु अकाल का वास्तविक कारण क्या है—इस पर किसी ने कोई ध्यान नहीं दिया। पं० माखनलाल चतुर्वेदी ने अपने नाटक कृष्णार्जुन युद्ध में इसका कारण बताने की चेष्टा की है। इस नाटक में यमराज वरुण से पूछते हैं कि पृथ्वी पर अकाल क्यों पड़ते हैं? इस पर वरुण कहते हैं— अकाल की बात सच है पर उसका कारण वर्षा नहीं है। आवश्यकतानुसार पर्याप्त जल पृथ्वी को दिया करता हूँ। लेकिन अकर्मण्य लोग उसका उपयोग नहीं करते। यहाँ नाटककार का अभिप्राय है कि नदियों पर आवश्यक बाँध नहीं बाँधे जाते अधिक मात्रा में नहरें नहीं खोदी जातीं और पानी का सदुपयोग नहीं किया जाता। उस युग में कृषि के लिए वैज्ञानिक साधनों की कमी थी इसलिए खेती बाड़ी की उपज कम ही होती थी। कृषि में प्राचीन उपकरण ही प्रयोग में लाये जाते

---

१ राधेश्याम कथावाचक : भारत माता पृ० ८४

२ माखनलाल चतुर्वेदी : कृष्णार्जुन युद्ध पृ० ८०

थ। परिणाम यह हुआ कि किसानों को भूमि से कुछ विशेष लाभ नहीं हुआ और किसान विवश होकर मजदूरी करने के लिए नगरों में जाने लगे।

(ख) निधनता

भारतवर्ष में कुछ प्रदेशों की स्थिति बहुत ही खराब थी। वहां न तो खेती की अवस्था अच्छी थी और न औद्योगिक विकास था। लोग जीवन निर्वाह बहुत ही कठिनता से करते थे। नारायणप्रसाद बेताब का ध्यान इस ओर गया और उन्होंने अपने नाटक कृष्ण सुदामा में गरीबी की स्थिति का चित्रण किया है। 'कृष्ण सुदामा' नाटक पौराणिक नाटक की श्रेणी में आता है परन्तु नाटककार ने पौराणिक नाटक के ही माध्यम से अपने युग की झांकी प्रस्तुत की है। सुदामा के घर इतनी गरीबी है कि उनका बच्चा राममरन भूख से पीड़ित है। एक पड़ोसिन लक्ष्मी उसके लिए फल देती है परन्तु एक भिखारी के मांगने पर रामसरन अपने फल उसको दे देता है और स्वयं भूखा रहता है। इतना ही नहीं सुदामा की स्त्री शारदा की ओढ़नी की जा चुकी है वह इतनी फटी हुई है कि वह सुई से भी नहीं सी जा सकती। शारदा अपनी पड़ोसिन लक्ष्मी से इसके विषय में कहती है—

> सुई के वस का नहीं सी डालना इस चीर का।
> चीर का यह चाक क्या है चाक है तकदीर का ॥[1]

सुदामा का लड़का कुएँ में गिर पड़ता है परन्तु निकालने पर उसको ढकने के लिए शारदा के पास कोई कपड़ा नहीं है। शारदा सुदामा से कहती है कि दरिद्रता की दो मूर्तियाँ तो प्रत्यक्ष खड़ी हैं फिर भी पूछते हो कि दरिद्रता किसे कहते हैं। बच्चा कुए में गिर गया उसे सर्दी सताती रही और कुछ उढ़ा न सकी, इस फटी पुरानी साड़ी में बच्चे को सँभालती या चलती फिरती लाज पर डालती।[2] इस प्रकार नारायणप्रसाद बेताब ने समाज की गरीबी का एक चित्र हमारे सामने प्रस्तुत किया है और इस चित्र से अनुमान लगाया जा सकता है कि समाज में गरीबी किस अवस्था तक पहुँच गई थी।

(ग) दौलत की पूजा

एक ओर तो समाज में गरीबी का भीषण अभिशाप था और दूसरी ओर दौलत की पूजा हो रही थी। दौलत की यह पूजा परम्परा प्राप्त थी। प्राचीन काल के संस्कृत साहित्य में दौलत की महिमा का वर्णन किया गया है।[3] जमींदार और

---

१ नारायणप्रसाद बेताब कृष्ण सुदामा पृ० ७०
२ वही पृ ६४–६५
३ यस्यास्ति वित्त स नर कुलीन ।
स पंडित स श्रुतिवान गुणज्ञ ।
स एव वक्ता स च दर्शनीय ।
सर्वे गुणा काचनमाश्रयन्ति ॥ ६ ॥ श्री सुभाषितरत्नभाण्डागारम् पृ ६६–६७

३

प्रसाद-युगीन हिन्दी नाटक
(१९२१-१९३८ ई०)

हिन्दी नाटक साहित्य में भारतेन्दु के पश्चात् और प्रसाद के आगमन तक कोई विशेष प्रगति न हो सकी। इस युग को हम संधि काल कह सकते हैं। इस संधि-काल में पौराणिक गाथाओं को लेकर व्यवसायी कम्पनियों के लिए नाटक लिखे गए। परन्तु इन नाटकों को साहित्य की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं माना जा सकता। इन नाटकों में वर्तमान समाज का चित्रण करने का अधिक प्रयास नहीं किया गया। अतः नाटक साहित्य का विकास एक प्रकार से शिथिल रहा। इसी समय जब नाटक ह्रास की ओर जा रहा था, प्रसाद का आगमन हुआ। प्रसाद युग हिन्दी नाटक साहित्य के इतिहास में उत्थान का स्वर्ण युग माना जाता है। इस युग में विविध भाषाओं के नाटकों का अनुवाद करके हिन्दी नाटक साहित्य को समृद्ध किया गया। द्विजेन्द्रलाल राय ने अपने नाटकों के द्वारा शेक्सपियर का प्रभाव इस युग के नाटककारों पर डाला। भावुकता और कल्पना को नाटकों में प्रमुख स्थान दिया गया। प्रसाद के आगमन पर एक ओर तो प्राचीनता का आग्रह था और दूसरी ओर पश्चिमी नाटकों का अनुकरण करने की नीति थी। इस वातावरण में प्रसाद जी ने साहित्य सृजन का कार्य आरम्भ किया। उन्होंने भारतीय रस विधान और पाश्चात्य नाट्य शिल्प के समन्वित रूप को लेकर एक नई शैली का आरम्भ किया।

प्रसाद जी ने नाटक को स्वतन्त्र साहित्यिक कलापूर्ण मौलिक और स्वाधीन रूप प्रदान किया। इसी युग में हिन्दी नाटक कला, शैली और टेकनीक आदि की दृष्टि से पूर्ण विकास की स्थिति में पहुँचा। यद्यपि इस युग में पौराणिक नाटक भी रचे गये परन्तु धार्मिक और पौराणिक कथानकों का स्थान ऐतिहासिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय कथानकों ने ले लिया। इस युग में देश के नेताओं और युवकों ने तन मन धन से गांधी जी का साथ दिया और जन्म भूमि की पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग को ध्येय बनाया। इस युग के नाटककारों ने इन्हीं सामाजिक तथा राष्ट्रीय समस्याओं की ओर विशेष ध्यान दिया तथा अपने नाटकों में उनको चित्रित किया। इस काल के नाटक साहित्य में वर्तमान समाज का पूर्ण चित्रण प्राप्त होता है।

नाटकों मे अभिव्यक्त राजनीतिक चेतना का स्वरूप

(क) स्वाधीनता की भावना

इस समय तक राष्ट्रीय कांग्रेस जनता की संस्था बन चुकी थी और स्वाधीनता संग्राम की बागडोर गांधी जी के हाथों में आ गई थी। इस बार स्वाधीनता आन्दोलन की विशेषता यह थी कि नारी तथा मजदूर वर्ग ने भी सक्रिय भाग लिया था। प्रथम बार पूर्ण स्वराज्य स्वतन्त्रता का ध्येय स्वीकार किया गया। इस स्वतन्त्रता संग्राम का प्रभाव इस युग के नाटककारों पर भी पड़ा और उन्होंने इस भावना को अपने नाटकों में चित्रित किया।

प्रसाद जी ने विदेशी राजनीतिक प्रभुत्व में आतंकित भारतीय जनता को शक्ति और सुरक्षा का अवलम्ब देकर आश्वस्त किया, आत्मबल का विश्वास दिलाया। प्रसाद की राष्ट्रीयता में गौरवशाली विजय का उल्लास है। उसमें भारतीय शक्ति शौर्य, सेवा, क्षमा, बलिदान—सभी के चित्र प्रस्तुत हैं। प्रसाद ने विदेशी विजेताओं के दम्भ का चुनौतीपूर्ण उत्तर दिया। स्कन्दगुप्त नाटक में बन्धुवर्मा कहता है कि तुम्हारे शस्त्र ने बर्बर हूणों को बता दिया है कि रणविद्या केवल नृशंसता नहीं है। जिनके आतंक से आज विश्व विख्यात रूम साम्राज्य पादाक्रान्त है उन्हें तुम्हारा लोहा मानना होगा। और तुम्हारे पदों के नीचे दबे कण्ठ से उन्हें स्वीकार करना होगा कि भारतीय दुर्जय वीर हैं। इस प्रकार प्रसाद जी ने भारतीय वीरता का गुणगान किया है। इसी नाटक में देश सेवा के लिए विजया मुद्गल से कहती है—"स्वार्थ में ठोकर लगते ही मैं परमार्थ की ओर दौड़ पड़ी परन्तु क्या यह सच्चा परिवर्तन है? क्या मैं अपने को भूलकर देश सेवा कर सकूँगी?"[1] इसी नाटक में कमला स्कन्दगुप्त को स्वतन्त्रता का सन्देश सुनाती है और कहती है—"उठो स्कन्द! आसुरी वृत्तियों का नाश करो, सोने वालों को जगाओ, रोने वालों को हँसाओ। आर्यावर्त तुम्हारे साथ होगा और उस आर्य पताका के नीचे समग्र विश्व होगा।"[2] प्रसाद जी 'अजातशत्रु' नाटक में राष्ट्र कल्याण के लिए अधिक प्रयत्नशील हैं। सारे सदस्य अजातशत्रु से कहते हैं—'राष्ट्र के कल्याण के लिए प्राण तक विसर्जन किया जा सकता है, और हम सब ऐसी प्रतिज्ञा करते हैं।'[3]

प्रसाद जी चन्द्रगुप्त नाटक में स्वतन्त्रता के लिए कर्म क्षेत्र में उतरने के लिए कहते हैं। चन्द्रगुप्त कहता है—"यह जागरण का अवसर है। जागरण का अर्थ है कर्म क्षेत्र में अवतीर्ण होना। और कर्म क्षेत्र क्या है? जीवन संग्राम। इस जीवन

---

१ जयशंकर प्रसाद स्कन्दगुप्त पृ० १२६
२ वही, पृ० १२४
३ जयशंकर प्रसाद अजातशत्रु पृ० ६३

के संग्राम में भी भारतीय स्वतन्त्रता की झलक दिखाई दी है। अलका इस देश के नागरिकों को स्वतन्त्रता के लिए पुकारती है और गाती है—

हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती।

× × ×

प्रवीर हो जयी बनो बढ़े चलो बढ़े चलो।[1]

इस गीत को सुनकर भारत के हजारों युवक-युवतियाँ स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़े। इस प्रकार प्रसाद जी ने अपने नाटकों में राष्ट्र को संघटित, सुरक्षित, सशक्त और महान् बनाने का सफल प्रयास किया है।

जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द अपने नाटक 'प्रताप प्रतिज्ञा' में महाराणा प्रताप के चरित्र के द्वारा स्वाधीनता के लिए युवकों को संदेश देते हैं। इसमें महाराणा प्रताप भवानी के सामने प्रतिज्ञा करते हैं— 'मैं आज तुम्हें साक्षी कर प्रतिज्ञा करता हूँ कि जन्म भर मातृभूमि मेवाड़ के हित में तन मन धन सर्वस्व अर्पण करने से मुँह न मोड़ूँगा। क्या हम अब भी सुख की नींद सो सकेंगे?'[2] प्रताप ने आजीवन स्वतन्त्रता के लिए युद्ध किया और यही भावना वे भारतवासियों में भरना चाहते हैं। इस देश के स्वाधीनता-संग्राम में केवल बहादुरों ने ही बलिदान नहीं दिया अपितु धनी व्यक्तियों ने भी अपने धन की आहुतियाँ दी हैं। जब महाराणा प्रताप आर्थिक दशा से विचलित होकर वन में चले जाते हैं तो सेठ भामाशाह उनके पास जाकर अपनी सारी सम्पत्ति अर्पित कर देता है। तब वीर प्रताप उससे कहते हैं— 'तुमसे बढ़कर वीर कौन होगा भामाशाह। इस बुढ़ापे में भी तुम्हारा यह उत्साह देखकर—स्वाधीनता की इतनी प्रबल प्यास देखकर—हजारों युवकों के मस्तक झुक जायेंगे। स्वागत है वीर, मातृभूमि के स्वाधीनता-यज्ञ में तुम्हारी सर्वस्वाहुति का हृदय से स्वागत है।'[3] इस प्रकार इस पुकार को सुनकर हजारों धनवानों ने देश की रक्षा के लिए अपने धन की परवाह नहीं की।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अपने नाटक 'राजसिंह' में स्वाधीनता की भावना को और भी बलवती भावना से चित्रित किया है। इस नाटक में दुर्गादास उदयपुर के राणा राजसिंह से कहते हैं कि जब तक हमारा जोधपुर स्वाधीन नहीं हो जायगा हम चैन से नहीं बैठेंगे। वे महाराणा से कहते हैं— 'अब इस आशा होना हो तो देश प्रेम और देश भक्ति के जोश साधन को हम घर घर अलख जगावें और ऐसा सरंजाम करें कि मुगल तख्त एक दिन में उलटकर राख हो जाय।'[4] इस नाटक के द्वारा आचार्य चतुरसेन शास्त्री यह सन्देश देना चाहते हैं कि स्वाधीनता के लिए घर घर सन्देश पहुँचाना होगा और भारत को विदेशियों की सत्ता से मुक्त करना होगा।

---

१ जयशंकर प्रसाद, चन्द्रगुप्त, पृ० १३६

२ जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द, प्रताप प्रतिज्ञा, पृ० १८

३ वही, पृ० ६

४ आचार्य चतुरसेन शास्त्री, राजसिंह, पृ० ४६

पाण्डेय बचन शर्मा 'उग्र' ने 'महात्मा ईसा' नाटक में स्वतन्त्रता के लिए और देश के उद्धार करने के लिए विवेकाचार्य से ईसा को कर्मयोगी बनने का सन्देश दिलवाया है। कर्मयोग द्वारा भी देशोद्धार हो सकता है। इस नाटक में विवेकाचार्य ईसा से कहते हैं— स्वदेश का उद्धार करने के लिए तुम्हें कर्मयोग का अभ्यास करना पडेगा—कर्मयोगी बनना पडेगा।[1] इसके अतिरिक्त इसमें देश भक्ति और राष्ट्रीय चेतना की भावना भी प्राप्त होती है। जोसफ आगर के ये वचन राष्ट्रीय चेतना के ही प्रतीक हैं। मेरा पुत्र स्वदेश पर बलिदान होने के लिए तैयार हो रहा है। कैसा गौरवमय संवाद है मरियम माचा ता। स्वाधीन हमारी माता है। है प्राणप्यारा सुदेश हमारा। जय उदार, सृष्टि सार स्वर्ग द्वार देश। पुण्यमय स्वदेश।' इन गीतों में हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन का उत्साह और उल्लास भरा प्रकट होता है।

प्रेम की माला हो ससार देखो प्रेममय ससार।

इस गीत में स्वाधीनता हेतु हिन्दू मुस्लिम एकता का परिचय तो मिलता ही है गांधी जी का विश्व प्रेम भी झलकता है।

मिश्र बन्धु के 'ईशान वर्मन' नाटक में देश प्रेम और राष्ट्रीयता की बात कही है। उनका सजग अधिक अपनी मातृभूमि प्रिय है। बालादित्य वीरसेन से कहता है कि मालवा पर शीघ्र ही शत्रु का अधिकार होगा। इस पर वीरसेन कहता है— प्राण रहते मालव भूमि पर सूची अग्र भी हूणो का अधिकार न होगा।[2] इसी भावना को ईशान वर्मन धर्मपाल से कहता है—'वास्तविक बात यह है कि जीते जी भारत पर हूणो का अधिकार नहीं देख सकता।'[3] इस प्रकार विदेशियों के शासन से मुक्त होने के लिए यहाँ भी स्वाधीनता का सन्देश दिया गया है।

इस युग में देश को स्वाधीन कराने वाले युवकों को जेलों में भेज दिया जाता था क्योंकि ब्रिटिश सरकार के पास यही सबसे प्रमुख हथियार था। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् विदेशी शासकों ने इस देश को धोखे में रखा था। रौलट ऐक्ट, पंजाब हत्याकाण्ड और गांधीजी के असहयोग आन्दोलन ने देश में उथल पुथल पैदा की और देश सेवकों का जीवन संकट में पड गया। नेताओं और युवकों को जेलों मे भेजा गया और कुछ व्यक्तियों की तो जेल में ही मृत्यु हो गई। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने इसी चित्र को अपने नाटक 'सन्यासी' में स्थान दिया। इस नाटक में एक देश सेवक मुरलीधर राष्ट्र की सेवा के लिए तैयार होता है परन्तु उसको जेल भेज दिया जाता है और वह आजीवन अविवाहित देश सेवा का व्रत लेता है। देश सेवा के लिए ही वह जेल में प्राण त्याग देता है। इस प्रकार इस नाटक के द्वारा मिश्रजी ने देश सेवा की भावना को प्रस्तुत किया है।

---

१ पाण्डेय बचन शर्मा उग्र महात्मा ईसा

२ मिश्रबन्धु ईशान वर्मन पृ ४

३ वही पृ ११

नवजागरण की भावना पनपती जा रही थी। चर्खा त्याग और तपस्या संयम एवं परिश्रम का महत्त्व प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता था। सब के हृदय में यही कामना थी कि स्वतन्त्र होकर रहें और विदेशी बन्धन से सर्वथा मुक्त होकर प्रकृत जीवन-यापन करें। सब व्यक्ति एकता के बन्धन में रहें। 'कामना' नाटक में विलास कहता है— "अब से तुम लोग एक राष्ट्र में परिणत हो रहे हो। राष्ट्र के शरीर की आत्मा राजसत्ता है। उसकी सदैव आज्ञा पालन करना सम्मान करना।"[1] इस प्रकार इस प्रतीकात्मक पात्र के द्वारा एकता और एक राष्ट्र की भावना की ओर इंगित किया गया है। प्रसादजी ने अपने 'चन्द्रगुप्त' नाटक में भी राष्ट्रीय एकता की बात को दुहराया है। इसमें आपस की फूट की ओर इंगित किया गया है। चाणक्य सिंहरण से कहते हैं— "आत्म सम्मान की रक्षा के पहले उसे पहचानना होगा। व्यक्तिगत मान के लिए तो तुम प्रस्तुत हो क्योंकि तुम मालव हो और यह मागध यही तुम्हारे मान का अवसान है न? परन्तु आत्म सम्मान इतने से ही सन्तुष्ट नहीं होगा। मालव और मागध को भूलकर जब तुम आर्यावर्त का नाम लोगे तभी वह मिलेगा।"[2] अर्थात् जब तुम सभी मिलकर कार्य करोगे तभी विदेशी सत्ता का सामना हो सकेगा। उद्धरण से स्पष्ट है कि प्रसादजी एकता पर अधिक बल दे रहे हैं। अन्त में सब राज्यों को मिलाकर एक गणराज्य की स्थापना करके चन्द्रगुप्त को सेनापति बनाया जाना इस बात का द्योतक है कि सब रियासतों को मिलाकर एक अखण्ड भारत की स्थापना की जायेगी। स्वतन्त्रता के पश्चात् सरदार पटेल ने अपनी बुद्धिमत्ता से इस कार्य को सम्पन्न किया और लगभग ५६२ रियासतों को मिलाकर एक संघ राज्य की स्थापना की। प्रसादजी महान् स्वप्न द्रष्टा थे और अन्त में उनकी कामना पूरी हुई।

जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द ने 'प्रताप प्रतिज्ञा' नाटक में भारतवासियों को एक सूत्र में बँधने का सन्देश दिया है। प्रताप मृत्यु के समय अपने सामन्त से कहते हैं— "मैं चाहता हूँ कि इस पीडित भारत वसुन्धरा पर कोई ऐसा माई का लाल पैदा हो, जिसके हृदय रक्त की अन्तिम बूँद इसके स्वाधीनता यज्ञ में पूर्णाहुति दें इस सत्ता के लिए स्वाधीन कर दें, जिसके इंगित पर बरसों के बिछुड़े हुए कोटि कोटि भारतीय एक सूत्र में बँध कर सर्वस्व बलिदान करने मातृमन्दिर की ओर दौड़ पड़ें।"[3] प्रताप ने अन्तिम समय तक भारतीय योद्धाओं को एकत्रित करने का प्रयास किया था और स्वाधीनता के लिए युद्ध किया था। मिलिन्दजी इस नाटक में एकता की भावना पर बल देना चाहते हैं।

सेठ गोविन्ददास द्वारा लिखित 'हर्ष' नाटक में सम्राट हर्ष और उनकी बहिन राज्यश्री आर्यावर्त की एकता के लिए चिन्तित हैं। यद्यपि उद्दान शान्ति और

१ जयशंकर प्रसाद कामना पृ० ५१
२ जयशंकर प्रसाद चन्द्रगुप्त पृ० ६
३ जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द प्रताप प्रतिज्ञा पृ० १०

अहिंसा के मार्ग से समस्त कार्य सम्पन्न कर लिए हैं परन्तु राजनीतिक एकता बाकी है। सारथी रूप से कहती है कि मैं टूटी हूँ। इस उसके दुःख का कारण पूछने पर सारथी कहता है— कोई पुराना राष्ट्र की स्थापनावाला प्रश्न व्यथित कर रहा है।[1] इस प्रकार इस नाटक के माध्यम से सेठजी राष्ट्रीय एकता चाहते हैं और बिखरे हुए सूत्रों को एकता में पिरोना अपना लक्ष्य समझते हैं।

राधेश्याम कथावाचक ने अपने नाटक 'ऊषा अनिरुद्ध' में प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर दिया है कि वे साम्प्रदायिक झगड़ों को समाप्त करके एकता में विश्वास रखते हैं। प्रारम्भ में ही नटी नट से कहती है— एक ओर प्रेमसागर में अपने देवताओं की महत्ता और दूसरी ओर सम्प्रदाय के झगड़ों की बुराइयाँ बताकर ऐक्य और संगठन के झण्डे के नीचे अपने देश और अपनी जाति को लाइए।[2] नट कहता है कि शैव और वैष्णव सम्प्रदाय के झगड़ों की चर्चा को मिटाना है। धर्म की आड़ में परस्पर लड़नेवाले धर्माचार्यों को प्रेम और एकता के मार्ग पर लाना है। इस नाटक में कृष्णदास शैव और वैष्णवों के झगड़ों को समाप्त करने के लिए प्रयास करता है। हमारे विचार में ये झगड़े शैव और वैष्णव के रूप में हिन्दू और मुस्लिम जाति के झगड़े हैं। नाटककार ने हिन्दू और मुस्लिम नाम न लेकर शैव और वैष्णव नाम रख दिया है। जिस समय यह नाटक लिखा गया उस समय हिन्दू और मुस्लिम जाति के झगड़े साम्प्रदायिकता का रूप ले रहे थे और आपस में [illegible] रहे थे। राधेश्याम कथावाचक ने शैव और वैष्णव का नाम लेकर हिन्दू और मुसलमानों के झगड़ों को समाप्त कर एकता का नारा दिया है और दोनों जातियों को परस्पर संगठित रूप में रहने की प्रेरणा दी है जिससे स्वतन्त्रता शीघ्र ही प्राप्त हो सके।

हरिकृष्ण प्रेमी ने अपने नाटक 'रक्षाबन्धन' में देश की एकता के लिए इतिहास के पृष्ठों को खोला और ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से पुराने समाज में एकता की भावना भरने का प्रयास किया है। राष्ट्रीय एकता के लिए कर्मवती बाघसिंह से कहती है— जब तक हम अपने व्यक्तित्व को भूल न सकें और मानापमान को देश के मानापमान में निमग्न न कर देंगे तब तक हम मनुष्य कहलाने योग्य नहीं हो सकते। जिस समय देश पर विपत्ति के बादल घिरे हुए हैं, विजेता बढ़ते आ रहे हैं, शत्रु प्रजा पर अत्याचार कर रहे हैं उस समय पृथक्-पृथक् व्यक्तियों, जातियों और वंशों के मानापमान और अधिकारों की चर्चा कैसी? यह घोर पाप है बाघसिंह जी। इस समय वीरों को केवल एक अधिकार याद रखना चाहिए और वह है देश पर जान न्यौछावर कर देना। शेष सभी पर परदा डाल दो, शेष सभी को पाताल में गाड़ दो।[3] प्रेमीजी व्यक्ति, जाति और वंशों की विभिन्नता को भुलाकर एकता को महत्त्व देते हैं और वह एकता केवल देश प्रेम के लिए होनी चाहिए। बादशाह बहादुरशाह के

१ सेठ गोविन्ददास : हर्ष, पृ० ७२

२ राधेश्याम कथावाचक : ऊषा अनिरुद्ध, पृ० ५

३ हरिकृष्ण प्रेमी : रक्षाबन्धन, पृ० ११

चांद खाँ को निकालने पर विक्रमादित्य उसे आश्रय देता है परन्तु बहादुर उसे वापिस बुलाना चाहता है। विक्रमादित्य के मना करने पर चांद खाँ कहता है कि एक मुसलमान के लिए इतना बखेडा मत कीजिए, इस पर विक्रमादित्य उत्तर देता है—"क्या कहा ? मुसलमान के लिए ? क्या मुसलमान इन्सान नही है ? जाति और धर्म के नाम पर मनुष्यता के टुकडे मत कीजिए।"[1] इसी प्रकार हुमायूं विक्रमादित्य से कहता है कि यो ता हिन्दुओ के कदमो मे बठकर मुहब्बत सीखना चाहता हूँ। इस पर विक्रमादित्य कहता है—'हिन्दू और मुसलमान, ये दोना ही नाम धोखा हैं हमे अलग करनेवाली दीवारें हैं। हम सब हिन्दुस्तानी हैं।'[2] प्रेमीजी पर गाधीजी का प्रभाव पड़ा था। गाधीजी उस समय हिन्दू मुस्लिम एकता पर बल दे रहे थे। जिस देश भक्ति ने हिन्दुत्व का रूप धारण करके भारतेन्दु को प्रेरित किया, जो आर्य संस्कृति चेतना के रूप मे प्रसाद की राष्ट्रीय प्रेरणा बनी, उसी राष्ट्रीय उत्थान की भावना ने प्रेमीजी को हिन्दू मुस्लिम एकता का चोला पहना कर प्रकाश दिखाया। इस प्रकार हिन्दू-मुस्लिम एकता ही इस नाटक का उद्देश्य कहा जाये तो विद्वानो को आपत्ति न होगी। प्रेमीजी ने इस नाटक के द्वारा हिन्दू मुस्लिम जाति को एकता के मार्ग पर लाने का प्रयास किया है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने तत्कालीन समाज की ओर सकेत करके अपने नाटक राजसिंह में बताया है कि भारत में अनेक रियासतो के राजा महाराजा सगठित नही थे। इसी को लक्ष्य करके उन्होंने अपने इस नाटक का सृजन किया। औरगजेब रूपनगर के राजा रूपसिंह की कन्या चारुमती से बलपूर्वक विवाह करना चाहता है परन्तु राजा ऐसा मानने को तयार नहीं है इस पर उनके दीवान कहते हैं कि आपको ऐसा अवश्य करना चाहिए क्योकि इसमें लाभ है और गद्दी भी सुरक्षित रहेगी। दीवान इसका एक विशेष कारण बतलाते हैं— राजपूतो मे सगठन नही एकता नही। स्वार्थ और घमण्ड ने राजपूतो की वीरता और तलवार की धार को उन्ही के लिए शाप बना दिया है।"[1] इस नाटक में राजपूतो की असगठन की भावना को दिखाकर शास्त्रीजी यह बताना चाहते हैं कि अग्रेज फूट का पूरा लाभ उठा रहे हैं और हमारा ह्रास हो रहा है। देश की सभी जातियो और धर्मों के व्यक्तियो को मिलकर स्वतन्त्रता प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

(ग) राजनीति मे नारी का पदार्पण

स्वाधीनता सग्राम मे पुरुष के साथ साथ नारी ने भी भाग लिया। १९१९ ई० में कलकत्ता काग्रेस की सभापति ऐनी बीसेन्ट ने होमरूल आन्दोलन की शक्ति का मुख्य कारण स्त्रियो की वीरता बतलाते हुए कहा था कि स्त्रियो के उसमे एक बहुत

---

१ हरिकृष्ण प्रेमी रक्षा-बन्धन पृ० ३१

२ वही पृ० ११०

१ आचार्य चतुरसेन शास्त्री राजसिंह, पृ० ६१–६२

बड़ी संख्या में भाग लेने, उसके प्रचार में सहायता करने, स्त्रियोचित अद्भुत वीरता दिखाने, कष्ट सहने और त्याग करने के कारण उनकी शक्ति दस गुनी अधिक बढ़ गई थी। हमारी रीति से सबसे अच्छे रंगरूट और सबसे अच्छे रंगरूट बनानेवाली स्त्रियाँ ही थीं। गांधीजी के असहयोग और अवज्ञा आन्दोलन की महत्वपूर्ण शक्ति स्त्रियाँ रही हैं। गांधीजी के नेतृत्व में पहली बार स्त्रियाँ विशाल समूह में घर की सीमाएँ तोड़ कर स्वाधीनता संग्राम में भाग ले सकीं। स्वर्गीय पं० जवाहरलाल नेहरू के कथनानुसार लड़कियों और स्त्रियों ने स्वतन्त्रता के युद्ध में क्रियात्मक भाग अपने पिताओं और भाइयों या पतियों की इच्छा के विरुद्ध ले लिया। राजनीति में नारी को अधिक सक्रिय करने के लिए इस युग के नाटककारों ने भी अपने नाटकों के माध्यम से उसको प्रोत्साहन दिया है।

जयशंकर प्रसाद के नाटक 'राज्यश्री' में राज्यश्री को तलवार पकड़ना आता है। जब स्कन्दगुप्त अपनी विजया मालिनी के साथ आता है तो राज्यश्री मन्त्री का खड्ग लेकर स्कन्दगुप्त पर चलाती है। स्कन्दगुप्त उसे पकड़ता है और राज्यश्री मूर्च्छित हो जाती है। इसका अभिप्राय है कि नारी ने घर की सीमा लाँघ कर तलवार पकड़ने का कार्य भी आरम्भ कर दिया था। नारी युगों के शोषण के पश्चात् सार्वजनिक स्थान में आ पहुँची थी। मातृगुप्त नारी के विषय में कहता है कि जिस देश में ऐसी तपस्विनी बालाएँ हों जो देश की सेवा के लिए भीख तक माँग सकती हैं अपनी कामनाओं को कुचल कर आर्यावर्त के उद्धार के लिए अपने को भस्म कर सकती हैं वह देश सदा स्वाधीन रहेगा। इतना ही नहीं, प्रसाद के नाटक 'चन्द्रगुप्त' में अलका के गीत में राष्ट्र धारा उमड़ी— हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती। अलका के समान गांधीजी के नेतृत्व में अनेक स्त्रियाँ स्वतन्त्रता के नारे लगा रही थीं और पुरुष के साथ कदम से कदम मिला कर चल रही थीं।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री के नाटक 'राजसिंह' में नारी के बलिदान की कहानी कही गई है। राजसिंह मुगलों के विरुद्ध लड़ने के लिए सेना सहित तैयार है परन्तु उनको बार-बार अपनी रानी की याद सताती है और इसीलिए वे विचलित हैं। गुलाब आकर रानी से राजा के दिल की बात कहता है। इस पर रानी सौभाग्य सुन्दरी कहती है कि युद्धकाल में उनको मेरी याद सता रही है और वे तलवार से अपना सिर काट कर गुलाब को दे देती है कि उनको जाकर दे देना। इस पर राजसिंह का मोह दूर हो जाता है। इससे प्रकट हो जाता है कि स्वाधीनता के युद्ध में किस प्रकार भारतीय नारी योगदान देती थी। यदि सौभाग्यसुन्दरी अपना सिर काट कर न देती तो राजसिंह शायद युद्ध में न जाता।

इस युग में नारी घर से बाहर निकलकर सार्वजनिक सभाओं में भाग लेने लगी थी। सेठ गोविन्ददास के नाटक 'प्रकाश' में तारा ने सार्वजनिक सभा में भाग लिया है। प्रकाशचन्द्र ने एक सत्-समाज बनाया है, मनोरमा और सुशीला उसकी सदस्या हैं। [illegible] ने एक नहर की योजना (इरिगेशन-स्कीम) सरकार के

सामने पत्र की है और उसकी स्वीकृति के लिए एक सार्वजनिक सभा बुलाई। उसमें सभी दलों के सदस्य प्रकाशचन्द्र मनोरमा और सुशीला भी उपस्थित हैं। प्रस्ताव के पश्चात प्रकाशचन्द्र ने उसके विरोध में भाषण दिया था दूसरी तरफ से प्रकाशचन्द्र की पार्टी पर लाठी पड़ी। मनोरमा ने प्रकाशचन्द्र को बचाने के लिए स्वयं लाठी खाई। इसके पश्चात उन्होंने जुलूस निकाला। धनपाल इसकी सूचना श्यामसुन्दरदास को देता हुआ कहता है कि अभी तीन बजे, जब मैं आ रहा था कचहरी में उसका जुलूस जा रहा था। जुलूस में भाई, अपार भीड़ थी। सारा नगर का नगर उमड़ पड़ा था। स्त्रियाँ भी बहुत थी, मनोरमा भी थी।[1] इस नाटक में मनोरमा और सुशीला ने सार्वजनिक सभाओं में भाग लिया और मनोरमा ने तो जुलूस में भी साथ दिया। इससे प्रकट है कि गाँधीजी के जुलूसों में भी स्त्रियाँ ने भाग लिया था।

(घ) शोषण

रियासतों में जमींदार लोग प्रजा पर मनमाने ढंग से अत्याचार करते थे। किसानों से बेगार लेते थे और उनकी बहू-बेटियों की इज्जत लूटते थे। इसका चित्रण राधेश्याम कथावाचक ने अपने नाटक 'मशरिकी हूर' में किया है। दिलेरजंग (सिपहसालार) सलामत बेग से कहता है कि तुम्हें पता नहीं कि गजनीखाँ (सुलतान) ने प्रजा में क्या-क्या गुल खिला रखे हैं। दिलेरजंग प्रजा की स्थिति को स्पष्ट करता हुआ कहता है कि शहर की बहू-बेटियाँ को जबरदस्ती पकड़ पकड़ कर बुलाया जाता है और उनको बेइज्जत बेअस्मत बनाया जाता है। गरीबों को बेगार से, दौलतमन्दों को नजराने की मार से, फरियादियों को दुत्कार से और रिआया के रहनुमाओं को हथकड़ी और बेड़ियों के बार से दबाया जाता है। जब इतना अन्धेर है तो रिआया क्या न बगावत फैलायगी? क्या न सुलतान के मुकाबिले के लिए तैयार हो जायगी?[2] इतना ही नहीं, सुलतान फसल के न होने पर भी गरीब किसानों से अधिक लगान लेता है। गरीब मजदूरों से अधिकारपूर्वक बेगार लेता है और गरीब दुकानदारों से रसद लेता है तथा अपनी रिहाइश का प्रबन्ध कराता है। अपने घोड़ों के लिए बेचारे घसियारों की तमाम दिन की मशक्कत से जमा किए हुए हरी हरी घास के गट्ठे को जबरदस्ती उनके सर पर से उतरवा लिया जाता है। इसके अतिरिक्त गरीब और भोली भाली दोशीज़ा (अविवाहित) लड़कियों को उनकी अस्मत बरबाद करने के लिए चालाक औरतों के द्वारा सुलतान के हरमसरा में बुलाया जाता है। यह सब गरीब जनता पर अत्याचार है।

आगा हश्र कश्मीरी ने अपने नाटक 'अछूता दामन' में पुलिस के शोषण का चित्र प्रस्तुत किया है। अनवरी अफजल की पत्नी है और उसके पास बहुत रुपया पैसा है। असद एक अस्थायी पुलिस अधिकारी है। असद अफजल का मित्र बनता है

१ सेठ गोविन्ददास प्रकाश पृ० १६५
२ राधेश्याम कथावाचक मशरिकी हूर पृ० २६

और अनवरी के प्रेम पर अधिकार जमाना चाहता है। पहले तो वह इस प्यार मुहब्बत की बातें बना कर हथियाना चाहता है परन्तु जब वह नहीं मानता तो अपने साथियों से मिलकर जबरदस्ती उसे उठवाना चाहता है परन्तु अनवरी का पति अफजल भेष बदल कर सब बातों का पता लगा लेता है और उन सबको पकड़वा देता है। इस प्रकार असद की सारी योजना असफल हो जाती है। इस नाटक से पता चलता है कि पुलिस किस प्रकार प्रजा पर अत्याचार करती थी और रुपया लूटती थी।

इस युग में यात्रियों को मार्ग में चोर डाकू आदि लूट लेते थे और उनकी कोई सुरक्षा नहीं थी। इसका वर्णन हम मिश्रबन्धु के नाटक 'ईशानवर्मन्' में प्राप्त होता है। इस नाटक में डाकुओं का अत्याचार दिखाया गया है। एक मार्ग में चार डाकू छिपे हुए हैं। इन चारों डाकुओं का काम ही रास्ते के यात्रियों को लूटना है। इसी मार्ग में एक बनिया अपनी बरात लेकर आता है। बरात के आते ही इधर से चारों सिपाही उस पर टूट पड़ते हैं और बुरी भली कहते हैं। अचानक उस रास्ते में ईशानवर्मन् आ जाते हैं और उन सब को छुड़वाते हैं। तभी बराती व धनमुक्त हो पाते हैं। इस नाटक के द्वारा मिश्रबन्धु अपने युग की स्थिति को स्पष्ट करते हैं और चोरी डाके की घटनाओं का वर्णन करते हैं। इस प्रकार इस युग के शोषण का वर्णन इन नाटकों में पाया जाता है।

(ट) रिश्वत की समस्या

रिश्वत की समस्या का आभास शासन में प्राचीन काल से प्राप्त होता है। अंग्रेजी शासन के भारत में स्थापित हो जाने पर इसका रूप और भी गुरुतर सामने आया। अंग्रेजी शासनकाल में सरकारी मुलाजिम बगैर किसी रिश्वत इत्यादि के काम नहीं करते थे और विशेष रूप से उसके एवज में ही इस कार्य को सम्पन्न करते थे। इस समस्या को इस युग के नाटकों में उठाया गया है। प्रसाद जी ने अपने नाटक 'अजातशत्रु' में रिश्वत की समस्या को चित्रित किया है। इस नाटक में दण्डनायक ने एक बन्दी छोड़ने के लिए हजार मोहरें माँगी हैं। यदि उसके पास हजार मोहरें पहुँच जाएँगी तो वह बन्दी को मुक्त कर देगा। इस सम्बन्ध में श्यामा समुद्रगुप्त से कहती है—'मेरा एक सम्बन्धी किसी अपराध में बन्दी हुआ है, दण्डनायक ने कहा है कि रात भर में मेरे पास हजार मोहरें पहुँच जावें तो मैं इसे छोड़ दूँगा, नहीं तो नहीं।'[1] इसका अभिप्राय यह है कि इस युग में जेलों के अधिकारी रिश्वत लेकर किसी भी अपराधी को छोड़ देते थे और किसी को भी बगैर किसी जुर्म के फँसा सकते थे। इस नाटक से इस समय की पुलिस के व्यवहार का पता चलता है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अपने नाटक 'सिन्दूर की होली' में रिश्वत की

१ जयशंकर प्रसाद अजातशत्रु, पृ० ७६

समस्या को विशेष रूप से स्थान दिया है। मुरारीलाल डिप्टी कलेक्टर के सामने मनोज का विलायत भेजने के लिए पैसे की आवश्यकता है और भगवन्तसिंह अपने भतीजे रजनीकान्त की जमीन हड़पने के लिए लालायित है। भगवन्तसिंह रजनीकान्त को मरवाने के लिए जंगल में आदमियों को तैनात कर आया है और इस हत्या के दोष से बचने के लिए वह मुरारीलाल को १० हजार देने को तैयार है। मुरारीलाल मुंशी माहिर अली को हिदायत देता है कि भगवन्तसिंह से वह रुपये जरूर वसूल ले इसी में उसकी चालाकी है। इस पर दस हजार तो उसके पास आ जाते हैं परन्तु वह आवश्यकता की दशा में ४० हजार की माँग और करता है, इस पर रायसाहब उसे भी पूरी करता है। इस प्रकार इतनी रिश्वत देने पर रजनीकान्त की हत्या कर दी जाती है और भगवन्तसिंह पर कोई आँच नहीं आती तथा वह रजनीकान्त की सारी सम्पत्ति हड़प लेता है।

मुरारीलाल इन रुपयों को लेते समय सोचता है कि रायसाहब भगवन्तसिंह जैसे मनुष्यों के हाथ में न्याय एक खिलौना मात्र है। न्याय की कुर्सियों पर जो अधिकारी प्रतिष्ठित हैं, उनका दायित्व मनुष्य और उसके अधिकार की रक्षा करना नहीं है उनका काम है केवल कानून की रक्षा करना। कानून की दशा यह है कि न्यायाधिकरण में सजा उसको नहीं दी जाती, जो अपराध करता है सजा तो केवल उसको होती है जो अपराध छिपाना नहीं जानता। बस यही कानून है।[1] इसका अभिप्राय यह है कि इस युग में कानून भी न्यायपरक नहीं होता था और न्याय रिश्वत आदि पर आधारित था। इस नाटक के द्वारा हमारी न्याय व्यवस्था पर प्रकाश डाला गया है।

सेठ गोविन्ददास ने 'प्रकाश' नाटक में रिश्वत की समस्या को उठाया है। कार्यालयों में बिना रिश्वत के कोई काम नहीं होता। इसी समस्या की ओर इस नाटक में संकेत किया गया है। इसमें बताया गया है कि कौंसिल के मेम्बर तथा वैतनिक कर्मचारी आपस में मिले रहते हैं और खूब रिश्वत लेते हैं। इस नाटक में श्री विश्वनाथ म्यूनिसिपलिटी के सभापति तथा शहीदबख्श उप सभापति हैं। इनके विषय में दामोदर अपनी पत्नी रुक्मिणी से कहता है कि इन मेम्बरों की कमाई के धंधे हैं रिश्वत लेना तथा ऐश उड़ाना और मान के भी बहुत से अवसर हैं। आगे चलकर दामोदरदास कहता है—'अवसर? एक नहीं हजार। किसी ने मकान बनाने की स्वीकृति माँगी, गुट तो पहले से ही बना रहता है इतना दो तो इतने वोट पक्ष में मिलते हैं नहीं तो मकान ही न बन पाएगा। किसी काम का ठेका देना हुआ कह दिया, जो इतना देगा उसको ठेका दिलाया जाएगा, नहीं तो हर काम में आपत्ति निकाल दी जाएगी।'[2] इस प्रकार कार्यालयों में बिना रिश्वत के कोई काम होता ही नहीं। इसी नाटक में रिश्वत का एक और रूप सामने आता है। डाक्टर नेस्टफील्ड बार एसोसियेशन का प्रेसीडेण्ट तथा

१ लक्ष्मीनारायण मिश्र सिन्दूर की होली पृ० २६
२ सेठ गोविन्ददास प्रकाश पृ० ३३

झूठे वायदे करता है ताकि स्त्रियाँ बहकाव म आकर उसको वाट दे द ।

चुनाव क दिनो म कुछ सरकारी कमचारी भी अपन व्यक्तिगत लाभ के लिए अपने अपने प्रत्याशी के लिए कनवसिंग करत है । लक्ष्मीनारायण मिश्र न 'मुक्ति का रहस्य' नामक नाटक म इसी समस्या को उठाया है । उमाशकर चुनाव लड रह हैं । मुरारीसिंह अध्यापक स्कूल बन्द करके उनकी कनवसिंग करत है । देवकीनन्दन उमाशकर से कहते हैं कि ये आपके चुनाव मे परिश्रम कर रहे हैं । व कहते हैं कि पाच दिनो से स्कूल बन्द और मास्टरो के साथ देहात म घूम घूम कर इन्होने लोगो को समझाया है कि शर्मा जी के चुन जान से यह लाभ होगा कि कच्ची सडक पक्की हो जाएगी । नाले पर पुल बन जाएगा । नए विद्यालय खुलेंगे । मास्टरो के वेतन बढ़ेंगे ।[1] इस प्रकार प्रलोभन दे दे कर प्रत्याशी जनता म वोट ले जात हैं और जीतने पर उसक लिए कुछ भी नहा करन ।

(छ) एशियाई भावना का जन्म

प्राचीनकाल म भारत का एशियाई देशा म घनिष्ठ सम्बन्ध था, परन्तु एशियाई जाति एक है इस भावना का जन्म अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितिया म वतमान काल म हुआ । यूरोप का साम्राज्यवादी शोषण एशिया के लगभग सभी देशा म चल रहा था और शासक शासित सम्बन्ध के कारण जातीय उच्चता तथा हीनता का भाव भी उत्पन्न हुआ । १८९४ ई० मे एशियाई एबीसीनिया की इटली पर जीत तथा १९०४ ई० म जापान द्वारा रूस की हार स सम्पूर्ण एशिया आत्म विश्वास म उठ जागा और यूराप से मुक्ति पाने के लिए सघर्ष करने लगा । इसका प्रभाव इस युग के महान् नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र पर पडा और उन्होंने इसका चित्रण अपने नाटक सन्यासी म किया । विश्वकान्त मालती का सहपाठी है, उसके साथ साथ कॉलिज म पढता है । वह मालती के प्रेम म रँगा हुआ है इसलिए उसको कॉलिज स निकाल दिया जाता है । कॉलिज से निर्वासित होन पर और मालती के प्रेम म असफल हाने पर वह राजनीति म भाग लेना प्रारम्भ कर देता है । वह समस्त एशिया की मुक्ति के लिए एशियाई सघ की स्थापना करता है । कुछ अफगानी आपस म बातचीत करते हैं और उनम स एक कहता है—'विश्वकान्त न कल कहा था एशिया के नौजवानो जागो उठ खडे हो दुश्मन तुम्हारे घर मे आ गए हैं । उन्हे बाहर करो ।'[2] इस प्रकार सारे एशिया म यूरोप के विरुद्ध आवाज उठाई जा रही थी । सयोग की बात है कि इस नाटक रचना के बीस वर्ष उपरान्त दिल्ली म एशियाई राष्ट्रो का सम्मेलन हुआ ।

(ज) गाधी जी का प्रभाव

इस युग की राजनीति म गाधी जी का महत्त्वपूर्ण स्थान है । उन्होंने कई

---

१ लक्ष्मीनारायण मिश्र मुक्ति का रहस्य पृ० ८८
२ लक्ष्मीनारायण मिश्र सन्यासी पृ० १३६

मे गुण-कर्म का स्थान जन्म ने ले लिया और ये चार वर्ण अनेक उपजातियों में बँट गए। खान-पान शादी विवाह पर्व आदि अपनी ही जाति मे होने लगे और समाज मे ऊँच-नीच की भावना फैलने लगी। आधुनिक शिक्षा तथा आर्थिक विकास ने जाति व्यवस्था को ठेस पहुँचाई और जाति-व्यवस्था का आधारस्तम्भ लडखडा गया। आधुनिक शिक्षित समाज मे अधिकाश लोग जाति पाँति को नहीं मानने और अन्तर्जातीय विवाह, खान पान होने लगे हैं। इस विचारधारा का प्रभाव युगीन नाटककारो पर भी पडा और परिणामस्वरूप यह चित्रण नाटको मे उभर कर आने लगा।

जयशकर प्रसाद के नाटक 'जनमजय का नागयज्ञ' मे शूद्र से ब्राह्मण तक की समता का वर्णन किया गया है। भगवान् श्रीकृष्ण की दृष्टि मे सब समान हैं। इस विषय मे सरमा मनसा से कहती है— शूद्र गोप से लेकर ब्राह्मण तक समता और प्राणीमात्र के प्रतिसमदर्शी होने की अमोघ वाणी उनके मुख से कई बार सुनी थी।[1] इस नाटक मे सबको समान माना गया है। जिस समय प्रसाद जी इस नाटक की रचना कर रहे थे उस समय हिन्दू और मुसलमान साम्प्रदायिक भावना से प्रेरित होकर अपने अपने अधिकारो के लिए प्रयत्नशील थे। प्रसाद जी नागजाति और आर्य जाति के माध्यम से हिन्दू और मुस्लिम जातियो की आपसी वैर भावना को समाप्त करने का प्रयत्न करते हैं। मनसा मणिमाला से कहती है कि तेरे पिता का आग मे जलाने के लिए वे ढूढते फिरते है और इस नाग जाति को धूल मे मिला देना चाहते हैं। इस पर आस्तीक कहता है— क्या आप अपने को मानव जाति से भिन्न मानती हैं? यह क्या आप लोगो के कल्पित गौरव का दम्भ नही है।[2] इन शब्दो मे लगता है जैसे कि गाधीजी बोल रहे हैं। यह प्रभाव स्पष्ट रूप से गाधीजी का ही है।

मिश्रबन्धु ने अपने नाटक 'ईशानवर्मन्' मे जाति भावना को समाप्त करने का प्रयास किया है। उनकी दृष्टि मे सभी भारतवासी समान हैं। विष्णुवर्द्धन हृदयवर्द्धन को समता का सन्देश देता हुआ कहता है— तुम इतने दीर्घ-सूत्री क्यों हो? प्रत्येक भारतवासी बराबर है क्या क्षत्रिय और क्या वैश्य। राज्य के लिए केवल प्रबध-पटुता चाहिए। वैश्य अपने को क्षत्रियो से हीन क्या माने?[3] इसी नाटक मे एक पुरुष दण्ड से कहता है आप एक वैश्य को सम्राट बना रहे हैं। तब दण्ड कहता है— आप छोटी छोटी बातो पर क्या जाते हैं? मै पहले ही कह चुका हूँ कि व्यर्थ के जाति भेद बढाने से हानि ही सभव है। सभी भारतवासी एक और समान हैं।[4] आगे चलकर नाटककार यह मानता है कि यदि जाति माननी ही है तो

---

१ जयशकर प्रसाद जनमेजय का नागयज्ञ पृ० ६
२ वही पृ० ७६
३ मिश्रबन्धु ईशानवर्मन् पृ० २६
४ वही पृ० ४४

वह गुण और कर्मानुसार होना चाहिए। जब ईशानवर्मन् हूणों को जीत लेते हैं, तब जीते हुए हूण हिन्दुओं में मिलना चाहते हैं तो ईशानवर्मन् उनसे कहते हैं—"हमारे चातुर्वर्ण में आप लोग भी गुण-कर्मानुसार मिल जायें तो जो जिस योग्य हो, वह उस जाति में रोटी-बेटी दोनों प्रकार से मिले। आज से कोई यह न जानेगा कि कौन हूण है और कौन नए हिन्दू। आप लोग अब हमसे अभिन्न हुए।"[1] इस प्रकार इस नाटक में जातीय ऊँच-नीच की भावना को समाप्त करने का प्रयास किया गया है।

उदयशंकर भट्ट ने दाहर अथवा सिंध-पतन नामक नाटक में जातीय भावना को प्रोत्साहन नहीं दिया है। इस नाटक में अलोर के लोहान जाट और गूजर जाति के लोगों को नीच जाति का बताया गया है। उन पर अनेक प्रकार के नीच जातियों वाले बन्धन थे। जयशाह अपने पिता दाहर से कहता है कि इन लोगों के ऊपर से भी बन्धन हटा लिए जायें जिनमें आज तक ये लोग जकड़े जा रहे हैं।[2] इस पर ब्राह्मण कहता है—कर्म और जन्म के विचार से एक पशु कभी तप करने पर ब्राह्मण नहीं बन सकता। तब इसके विषय में दाहर कहता है— कर्म की श्रेष्ठता प्रत्येक व्यक्ति के अपने दैनिक व्यवहार पर निर्भर है। लोहान जाट और गूजरों में वैसा ही क्षत्रियत्व है जैसा कि वीरता का काम करनेवाले क्षत्रियों में।[3] दाहर के इस विचार की पुष्टि करता हुआ मन्त्री क्षपाकर कहता है— समाज में कोई ऊँच-नीच नहीं है। यह भेद भावना मनुष्यकृत है। भगवान् का बनाया हुआ सूर्य सबको एक-सा प्रकाश देता है। वायु सबको एक-सा जीवन देता है तुम्हें अधिक और उनको, जिन्हें तुम नीच कहते हो न्यून जीवन नहीं प्रदान करता।' भट्ट जी का मत है कि सब जातियाँ समान हैं और कोई जाति ऊँची या छोटी नहीं है।

प्राचीन काल में छोटी जाति के लोग ऊँची जाति के लोगों से दूर रहा करते थे क्योंकि उनका विचार था कि यदि छोटी जाति के लोग उन्हें छू देंगे तो उनका धर्म भ्रष्ट हो जायगा। डा० दशरथ ओझा ने प्रियदर्शी सम्राट अशोक नाटक में इसी समस्या को उठाया है। इस नाटक में एक बुढ़िया औरत है, वह परिया जाति की है और अस्पृश्य है। इस वृद्धा का लड़का सवर्ण हिन्दुओं के कुएँ में पानी लेने गया था। जब वह पानी ले रहा था तो हिन्दुओं ने उसे कुएँ में धकेल दिया और कहा कि यह कुआँ दूषित हो गया। तत्पश्चात् यह वृद्धा गाँव से बाहर आकर रहने लगी। एक बार महेन्द्र और संघमित्रा उसके पास आते हैं तो वह उनसे कहती है— अरे, मैं परिया हूँ परिया अस्पृश्य हूँ बताओ तुम ब्राह्मण तो नहीं हो? भैया क्या अपना धर्म भ्रष्ट करते हो।[4] परन्तु महेन्द्र और संघमित्रा इस

१ मिश्रबन्धु ईशानवर्मन् पृ० १९१-१९२
२ उदयशंकर भट्ट दाहर अथवा सिंध-पतन, पृ० ४५-४६
३ वही पृ० ४६
४ डॉ० दशरथ ओझा प्रियदर्शी सम्राट अशोक पृ० ८६

जाति भावना और अस्पृश्यता को नहीं मानते। इस प्रकार नाटककार ने स्पृश्यास्पृश्य की भावना को महत्त्व नहीं दिया और लगता है कि जाति-व्यवस्था को मिटाने का प्रयत्न किया है।

प्राचीन वर्ण व्यवस्था में शूद्र को तपस्या का अधिकार नहीं था और यह माना जाता था कि उन्हें तो सेवा का ही अधिकार प्राप्त है। सेठ गोविन्ददास ने 'कर्तव्य' नाटक में इस मत का खण्डन किया है और शूद्र को तपस्या करने का अधिकार प्रदान किया है। इस विषय में शम्बूक कहता है—"ब्राह्मण यह मानते हैं कि हम शूद्रों को तप का अधिकार नहीं। मैंने यह तप इसी मत के खण्डन के लिए किया है। यदि मेरे तप में कोई शूद्र का बालक मरता तो मेरे तप का कुफल हो सकता था पर ब्राह्मण बालक मरा इससे यह स्पष्ट हो गया कि वे ही भूल में हैं। भगवान् उनको जता देना चाहते हैं कि उनके द्वारा उत्पन्न किए हुए किसी भी व्यक्ति पर अत्याचार नहीं हो सकता। यदि ब्राह्मण एक जन-समुदाय को सदा नीच बनाये रखने का उद्योग करेंगे तो हम इसी प्रकार सिर उठावेंगे। इसमें उन्हीं का संहार होगा।"[1] इस प्रकार प्राचीन व्यवस्था में जो अधिकार शूद्रों को नहीं दिए गये थे वे अधिकार आधुनिक युग में उनको मिल रहे हैं।

राधेश्याम कथावाचक ने 'उषा अनिरुद्ध' नाटक में यह दिखाया है कि विवाह के लिए जाति-बन्धन नहीं होता। यदि एक स्त्री छोटी जाति की हो तो वह ऊँची जाति में विवाह कर सकती है। वाणासुर ने अपनी पुत्री उषा की जन्मपत्री नारद को दिखाई तो नारद ने कहा कि इस कन्या का विवाह किसी वैष्णव के साथ होगा, तो इसको वाणासुर मानने को तैयार नहीं। वह कहता है कि युद्ध होने की चिन्ता नहीं, रक्तपात होने का दुःख नहीं परन्तु वैष्णव को कन्या विवाही जाय यह किसी प्रकार सहन नहीं।[2] परन्तु आगे चलकर उषा और अनिरुद्ध का मिलन इस बात का द्योतक है कि जातीय भावना की अवहेलना करके भी विवाह आरम्भ हो चुके हैं और अब जातीय विचारधारा को महत्त्व प्रदान नहीं किया जाता।

इस युग में गांधी जी अस्पृश्यता का उन्मूलन करने में लगे हुए थे और हरिजनों की विशेष रूप से सहायता करते थे। इसका प्रभाव सियारामशरण गुप्त पर पड़ा। गुप्त जी ने अपने नाटक 'पुण्य पर्व' में इस अस्पृश्यता को मिटाने का प्रयास किया है। सुनसाम इन्द्रप्रस्थ के राजा हैं और उनको एक हीन जाति का वेण छू देता है परन्तु राजा इसको महत्त्व नहीं देते। ब्रह्मदत्त (वाराणसी का निर्वासित राजा) उनसे कहता है कि हीनजाति वेण के छूने पर स्नान करना चाहिए। इस पर सुनसाम कहता है— वेण या चाण्डाल छू ले तो स्नान करने की बात मेरे मन

---

१ सेठ गोविन्ददास कर्तव्य पृ० ६३

२ राधेश्याम कथावाचक उषा अनिरुद्ध पृ० ३४

में कमी नहीं आती।[1] इस तरह इस नाटक में भी प्राचीन मान्यता का खण्डन किया गया है।

हरिकृष्ण प्रेमी के नाटक 'रक्षा-बन्धन' में विजयसिंह एक भीलनी का पुत्र है परन्तु उसकी माता श्यामा का विवाह एक राजपूत के साथ हुआ था। इस पर विजयसिंह और श्यामा को नीच जाति कहकर पुकारा जाता है। इस गन्दी भावना को दूर करने के लिए भीलराज विनय से कहता है—'यदि वे नीच हैं तो कोई उनके दरवाजे पर पुण्य की भीख माँगने क्यों आता है? धूल क्यों झाड़ कर सड़क पर फेंक देने के लिए हैं? तो बेटा मैं इस सामाजिक विषमता को उच्च जातियों के अत्याचार को सहन नहीं कर सकता।[2] भीलराज के शब्दों में यह प्रकट है कि प्रेमी जी जातीय दम्भ को प्रश्रय नहीं देते और सबको समान मानते हैं तथा उनमें विवाह कराने के पक्ष में भी हैं। इस प्रकार इस युग के नाटककारों ने जातीय ऊँच-नीच की भावना को समाप्त करने का प्रयास किया है और अपने समसामयिक समाज में व्याप्त इस विषमता पर एक करारी चोट की है।

(ख) ब्राह्मण की महत्ता

प्रसाद के प्रायः सभी नाटक सांस्कृतिक हैं और वे आर्य और बौद्ध संस्कृति के आधार को लिए हुए हैं। प्रसाद जी ने अपने समाज में देखा कि ब्राह्मणवर्ग अब लालुप एवं स्वार्थी हो गया है और अपनी प्राचीन परम्परा से बहुत दूर निकल गया है। प्रसाद जी ने सोचा कि यदि ब्राह्मण ही पतन के कगार पर खड़ा है तो बाकी वर्ग-व्यवस्था का क्या होगा? इसी समस्या ने प्रसाद जी को प्राचीन इतिहास की ओर ध्यान देने को बाध्य किया और वर्तमानयुगीन ब्राह्मण की प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने के लिए उन्होंने प्राचीन ब्राह्मण का आदर्श प्रस्तुत किया।

प्राचीन काल के ब्राह्मण में आत्म-बल और ब्रह्मबल का तेज था। 'जनमेजय का नागयज्ञ' में तक्षक उत्तंक को एकाकी पाकर वध करने को तैयार होता है तो उत्तंक निर्भीकतापूर्वक ललकार कर कहता है— यदि ब्राह्मण हैं यदि मेरा ब्रह्मचर्य और स्वाध्याय सत्य होगा तो तेरा कुत्सित हाथ चल ही न सकेगा। हत्याकारी दस्यु को यह अधिकार नहीं कि वह सत्यशील तपस्वी पर हाथ चला सके। पातकी तेरा पतन समीप है।[3] तक्षक की यह कोरी धमकी ही नहीं थी। प्रतिष्ठा पर अटल रहनेवाला वह ब्राह्मण नागयज्ञ के द्वारा यह सिद्ध कर दिखाता है। शौनक उदार और सहिष्णु पुरोहित था। उसका मत है कि सहनशील होना ही तो तपोधन और उत्तम ब्राह्मण का लक्षण है। ब्राह्मण तो सबके कल्याण की बात सोचता है। च्यवन

---

1. सियारामशरण गुप्त पुण्य-पर्व पृ० ६३
2. हरिकृष्ण प्रेमी रक्षा-बन्धन पृ० ५१
3. जयशंकर प्रसाद जनमेजय का नागयज्ञ पृ० ५
4. वही पृ० ६६

सोमश्रव से कहता है—"वत्स ! ऐसा काम करना जिससे दुरात्मा काश्यप ने ब्राह्मणों की जो विडम्बना की है वह सब धुल जाये और सब पर ब्राह्मणों की सच्ची महत्ता प्रकट हो जाय। आध्यात्मिक गुरु जब तक अपना सच्चा स्वरूप नहीं दिखलावेंगे, तब तक दूसरे भला कैसे धर्माचरण करेंगे। त्याग का महत्त्व, जो ब्राह्मणों का गौरव है, सदैव स्मरण रहे। धर्म कभी धन के लिए न आचरित हो वह श्रेय के लिए हो, प्रकृति के कल्याण के लिए हो और धर्म के लिए हो। यही धर्म हम तपोधनों का परमधन है। उसकी पवित्रता शरत्कालीन जलस्रोत के सदृश उसकी उज्ज्वलता शारदीय गगन के नक्षत्रलोक से भी कुछ बढ़कर और शीतल हो।'[1] इस उद्धरण से प्रकट है कि प्रसाद जी ब्राह्मण को सबका कल्याणकारी मानते हैं।

प्रसाद जी 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में कहते हैं कि ब्राह्मण केवल धर्म से भय खाता है अन्य किसी वस्तु से नहीं। पुरोहित रामगुप्त से कहता है—'ब्राह्मण केवल धर्म से भयभीत है अन्य किसी भी शक्ति को वह तुच्छ समझता है। तुम्हारे बधिक मुझे धार्मिक सत्य कहने से रोक नहीं सकते।'[2] इन शब्दों से प्रकट है कि प्रसाद जी ब्राह्मण की सत्ता के साथ-साथ धर्म की स्थापना भी चाहते हैं।

स्कन्दगुप्त नाटक में प्रसाद जी ने ब्राह्मण को त्याग और क्षमा की मूर्ति कहा है। इस नाटक में धातुसेन ब्राह्मण से कहता है—"ब्राह्मण क्यों महान् हैं? इसीलिए कि वे त्याग और क्षमा की मूर्ति हैं। इसी के बल पर बड़े बड़े सम्राट उनके आश्रमों के निकट निरस्त्र होकर जाते थे और वे तपस्वी ऋत और अमृत वृत्ति से जीवन निर्वाह करते हुए सायं प्रातः अग्निशाला में भगवान् से प्रार्थना करते थे—

सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्॥

आप लोग उन्हीं ब्राह्मणों की सन्तान हैं जिन्होंने अनेक यज्ञों को एक ही बार बन्द कर दिया था। उनका धर्म समयानुकूल प्रत्येक परिवर्तन को स्वीकार करता है, क्योंकि मानवबुद्धि ज्ञान का—जो वेदों द्वारा हमें मिलता है—प्रसार करेगी, उसके विकास के साथ बढ़ेगी, और यही धर्म की प्रतिष्ठा है।'[3] इसमें प्रसाद जी ने यह स्वीकार किया है कि कल्याण के लिए ईश्वर से प्रार्थना की आवश्यकता है और धर्म की मान्यता परिवर्तनशील है।

प्रसाद जी की मान्यता है कि ब्राह्मण अपने आप में समर्थ है और सब कुछ कर सकता है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में चाणक्य आम्भीक से कहता है—'ब्राह्मण न किसी के राज्य में रहता है और न किसी के अन्न से पलता है, स्वराज्य में विचरता है और अमृत होकर जीता है। यह तुम्हारा मिथ्या गर्व है। ब्राह्मण सब कुछ

१ जयशंकर प्रसाद जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० ६१-६२
२ जयशंकर प्रसाद ध्रुवस्वामिनी पृ० ६३
३ जयशंकर प्रसाद स्कन्दगुप्त पृ० ११४

सामर्थ्य रखने पर भी स्वेच्छा से इस माया-मृग को ठुकरा देता है। प्रकृति के कल्याण के लिए अपने ज्ञान का दान देता है।[1] इसके आगे चाणक्य राक्षस से कहता है— राष्ट्र का शुभ चिन्तन केवल कमवाले संयमी ब्राह्मण ही कर सकते हैं।[2] प्रसाद जी ने ब्राह्मण को केवल त्याग और क्षमा की मूर्ति ही नहीं माना है अपितु ब्राह्मण विपत्ति के समय दण्डनीति को भी अपना सकता है। इसी की सार्थकता को सिद्ध करने हेतु चाणक्य वररुचि से कहता है कि त्याग और क्षमा, तप और विद्या, तेज और सम्मान के लिए हैं—लोभ और मान के सामने सिर झुकाने के लिए हम लोग ब्राह्मण नहीं बने हैं। हमारी दी हुई विभूति से हमीं को अपमानित किया जाए ऐसा नहीं हो सकता। कात्यायन[3] अब केवल पाणिनि से काम न चलेगा। अर्थशास्त्र और दण्डनीति की आवश्यकता है।[4] यहाँ प्रसाद जी का संकेत है कि आवश्यकतानुसार ब्राह्मण को भी स्वाधीनता के संग्राम में भाग लेना चाहिए। ब्राह्मण को धर्म का नियन्ता माना गया है। चाणक्य पर्वतेश्वर को समझाता है कि धर्म के नियामक ब्राह्मण हैं मुझे पात्र देखकर उसका संस्कार करने का अधिकार है। ब्राह्मणत्व एक सार्वभौम शाश्वत बुद्धि-वैभव है। वह अपनी रक्षा के लिए पुष्टि के लिए और सेवा के लिए इतर वर्णों का संघटन कर लेगा। शक्ति को धारण करने पर भी ब्राह्मण सबके कल्याण की बात सोचता है। चाणक्य का सिल्यूकस से कथन है— सुखी रहो सिल्यूकस इस भारतीय ब्राह्मण के पास सबकी कल्याण-कामना के अतिरिक्त और क्या है, जिससे अभ्यर्थना करूँ।[5] प्रसाद जी ने अपने नाटकों के द्वारा आधुनिक समय के ब्राह्मण के साथ ही प्राचीन आदर्श को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए ब्राह्मणों की वास्तविक व्याख्या प्रस्तुत की है जिससे प्रेरणा लेकर आज का पथभ्रष्ट ब्राह्मण अपने स्वरूप को पहचान सके और आधुनिक समाज के विकास में उचित सहयोग दे सके। आधुनिक वर्ण-व्यवस्था में प्रसाद जी का यह एक सर्वथा नवीन और क्रान्तिकारी विचार है।

(ग) सामाजिक भेदभाव

इस युग में भारतवर्ष पर अंग्रेज राज्य कर रहे थे और कुछ रियासतों के मालिक उनके कृपापात्र ही थे। अंग्रेजी शासन का लाभ उठाकर वे समाज में भेदभाव का व्यवहार करते थे। प्रतिष्ठित व्यक्तियों और अधिकारियों को विशेष सम्मान देते थे और गरीब व्यक्तियों को अनादर की दृष्टि से देखते थे। सेठ गोविन्ददास ने इसकी

---

१ जयशंकर प्रसाद : चन्द्रगुप्त पृ०
२ वही पृ० ८५
३ वही पृ० २६
४ वही पृ० ४८, ६५
५ वही पृ० २१७

वास्तविकता को अपने नाटक प्रकाश म व्यक्त किया है। राजा आर्यसिंह गवनर को एक भोज देते हैं। उसम नगर के प्रतिष्ठित और गरीब व्यक्ति भी सम्मिलित होते हैं परन्तु उनके लिए अलग स्थान की व्यवस्था है। इस भेदभाव को देखकर प्रकाशचन्द्र एक भाषण देता है— बहनो और भाइयो! इस नगर की अनेक बातो म परिवतन की आवश्यकता है उनम से एक है धनियो और निधनो पठितो और अपठितो समाज म किसी भी कारण म उच्च स्थान रखने वालो और पतित व्यक्तियो का परस्पर भेद भाव।[1] इस उद्धरण से प्रकट है कि किस प्रकार इस युग मे गरीब अमीर के बीच मे सामाजिक भेदभाव था।

लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक 'राक्षस का मन्दिर' म अश्करी एक मुसलमान कन्या है और वह परिस्थितियो से हार मान कर वेश्या बन जाती है, परन्तु समय के अनुकूल होने पर उसने अपने चरित्र का सुधार लिया है। इस रहस्य का जब ललिता को पता चलता है तो उसे उस घर को छोडने के लिए विवश करती है। इस पर अश्करी उस घर को छोड कर चली जाती है और चलते समय ललिता से कहती है— मैंने जान बूझकर धोखा नही दिया। मैं समझती थी तुम्हारी शिक्षा इतनी ऊँची हो चुकी है तुम मनुष्य के कर्मों पर विचार करोगी। पर कोई बात नहीं।[2] रघुनाथ ललिता को समझाता है कि मनुष्य के हृदय को देखना चाहिए। इस प्रकार मिश्र जी ने सामाजिक भेदभाव को अश्करी के शब्दो के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

प्रसाद जी के अजातशत्रु नाटक मे सिंहासन पर किस को बैठाया जाए यह समस्या है। प्रथा यह रही है कि राजपुत्र को ही सिंहासन पर बठाया जाता था। इसी सन्दभ म गौतम यह दिखाना चाहते हैं कि सिंहासन पर केवल राजकुमारो का ही अधिकार नहीं है। वह प्रसनजित से कहता है—यह दम्भ तुम्हारा प्राचीन सस्कार है। क्या राजन्! क्या दास दासी मनुष्य नहीं है? क्या कई पीढी ऊपर तक तुम प्रमाण दे सकते हो कि सभी राजकुमारियो की सन्तान ही इस सिंहासन पर बैठी हैं या प्रतिज्ञा करोगे कि कई पीढी आनेवाली तक दासी पुत्र इस पर न बैठने पावगे? यह छोटे बडे का भेद क्या अभी इस सकीर्ण हृदय म इस तरह घुसा है कि निकल नहीं सकता। क्या जीवन की वतमान स्थिति देखकर प्राचीन अधविश्वासों को जो न जाने किस कारण होते आए हैं तुम बदलने के लिए प्रस्तुत नही हो?[3] गौतम के इन शब्दो मे वतमान समाज की भेद भावना को व्यक्त किया गया है। प्रसाद जी ने अपने समाज को बहुत निकट से देखा था और उसम व्याप्त भेद भावना को समाप्त करने के लिए उन्होने प्राचीन कथाओ का आश्रय लिया और सामाजिक विषमता को समाप्त करने का भरसक प्रयत्न किया।

---

१ सेठ गोविन्ददास प्रकाश प १८
२ लक्ष्मीनारायण मिश्र राक्षस का मन्दिर पृ० ११३ ११४
३ जयशंकर प्रसाद अजातशत्रु प १२४

कहकर अपमानित किया था। इसलिए वह पुरुष जाति से विद्रोह की भावना से प्रतिकार चाहती है। सेनापति कारायण से शक्तिमती कहती है—तुम इतने कायर हो यदि मैं पहले जानती।

कारायण—तब क्या करती? अपने स्वामी की हत्या करके अपना गौरव अपनी विजय घोषणा स्वयं सुनाती?

शक्तिमती—यदि पुरुष इन कामों को कर सकता है, तो स्त्रियाँ क्या न करें? क्या उन्हें अन्तःकरण नहीं है? क्या स्त्रियाँ कुछ अपना अस्तित्व नहीं रखतीं? क्या उनका जन्म सिद्ध कोई अधिकार नहीं है। स्त्रियों का सब कुछ पुरुषों की कृपा से मिली हुई भिक्षा मात्र है?[1] क्या हम पुरुषों के समान नहीं रह सकतीं? क्या चेष्टा करके हमारी स्वतन्त्रता नहीं पदलित की गई? देखो जब गौतम ने स्त्रियों को भी प्रव्रज्या लेने की आज्ञा दी तब क्या वे ही सुकुमार स्त्रियाँ परिव्राजिका के कठोर व्रत को अपनी सुकुमार देह पर नहीं उठाने का प्रयास करतीं?[2]

इस नाटक में प्रसाद जी ने नारी को पति से भी अपमानित होने पर प्रतिशोध लेने की स्वतन्त्रता दी है। इतना ही नहीं, वह पुरुषों के समान अधिकार माँगती है और वह पुरुष की कृपा पर जीवित रहना नहीं चाहती है। वह पूर्णरूपेण स्वतन्त्र होना चाहती है।

प्रसाद जी के 'ध्रुवस्वामिनी नाटक' में नारी ने पुरुष से पूछा है कि उन्होंने नारी को पशु-समान क्या मान रखा है? इस नाटक में अधिकार की समस्या को लेकर ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त से पूछती है— मैं केवल यह कहना चाहती हूँ कि पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु सम्पत्ति समझ कर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है वह मेरे साथ नहीं चल सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते अपने कुल की मर्यादा, नारी का गौरव नहीं बचा सकते तो मुझे बेच भी नहीं सकते।[3] मैं अपनी रक्षा स्वयं करूँगी। मैं उपहार में देने की वस्तु शीतलमणि नहीं हूँ।[4] इसी नाटक में मन्दाकिनी पुरोहित से प्रश्न करती है कि हम से विवाह के समय आप पूछते भी नहीं और धर्म के नाम पर सब अधिकार छीन लेते हैं। मन्दाकिनी ध्रुवस्वामिनी से पुरुष के तिरस्कार की चर्चा करती है— कितनी असहाय दशा है। अपने निर्बल और अवलम्ब खोजने वाले हाथों से यह पुरुषों के चरणों को पकड़ती है और वह सदैव ही इनको तिरस्कार घृणा और दुर्दशा की भिक्षा से उपकृत करता है।[5] इस पर ध्रुवस्वामिनी कहती है कि पराधीनता तो परम्परा से ही नारी

१ जयशंकर प्रसाद अजातशत्रु पृ० ११७
२ वही पृ ११८
३ जयशंकर प्रसाद ध्रुवस्वामिनी पृ० २६ २७
४ वही पृ २८
५ वही पृ० ७५

की नस-नस में घुस गये थे। इस प्रकार इन नाटकों में प्रकट है कि नारी की स्वतन्त्रता दिलाने का कितना प्रयास किया जा रहा था और उनकी दशा का इस युग में ध्यान रखा जा रहा था। प्रसाद जी नारी स्वतन्त्रता के प्रति विशेष रूप से सजग थे।

राधेश्याम कथावाचक ने अपने नाटक 'उषा अनिरुद्ध' में नारी की हीन-दशा का वर्णन करते हुए कहा है कि एक बार स्त्री की शादी होने पर वह दूसरे पुरुष पर दृष्टिपात भी नहीं कर सकती। उषा चित्रलेखा से अपनी बात कहती है—'नारी एक बार भी जिसको अपना पति बना लेती उसी को पति समझती रहती। फिर दूसरे पुरुष की ओर दृष्टि डालना भी उसके लिए घोर पाप है। संसार में नारी जाति के लिए इससे बढ़कर दूसरा पाप नहीं हो सकता।'[1] इन शब्दों में नारी की कितनी करुणाजनक स्थिति है और पुरुष फिर भी नारी को सन्देह की दृष्टि से देखता है।

सेठ गोविन्ददास ने अपने नाटक 'प्रकाश' में स्त्रियों की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया है। इस नाटक में दामोदरदास धनदास से कह रहे हैं कि इस देश में सबसे विकट समस्या आर्थिक संकट की है परन्तु उनकी पत्नी रुक्मिणी इस समस्या को विकट न मान कर स्त्रियों की समस्या को अधिक गम्भीर मानती है। वह उनका ध्यान स्त्रियों की ओर आकर्षित करती है—'उनमें शिक्षा नहीं, सामाजिक जीवन नहीं, कुछ भी नहीं है। वे जन्म भर पर्दे में रखी जाती हैं। पुरुष जिस रास्ते से उन्हें ले जाय वही उनका मार्ग है। क्या उन्हें कोई स्वतन्त्रता है? माँ-बाप जिस उम्र में जिसके साथ चाहें, विवाह कर दें। यदि दुर्भाग्य से बाल्यावस्था में वैधव्य आ गया तो जन्म भर दुःख ही दुःख। अगर कोई विधवा न हुई और कहीं उसको बुरा पति मिल गया तो भी कष्ट ही कष्ट। तलाक तक नहीं ले सकती।'[2] इस नाटक से प्रकट है कि नारी की कितनी हीन दशा है। अतः सच्चे अर्थों में वह अपने अधिकारों की माँग करती है।

सेठ गोविन्ददास जी ने अपने नाटक 'हर्ष' में नारी की यातना को देख कर उसको समान अधिकार प्रदान किए हैं। हर्ष अपनी बहन राज्यश्री से अधिकारों के विषय में अपना मत प्रकट करता है कि अब तक स्त्रियों को पुरुषों की अनुगामिनी माना गया है परन्तु महात्मा बुद्ध ने उन्हें धार्मिक कार्यों में पुरुषों के समान ही अधिकार दे दिए हैं। मैं राजकाज में भी स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार देने की परिपाटी चलाना चाहता हूँ। यदि पुरुष सिंहासनासीन हो सकते हैं, तो स्त्रियाँ भी विधवाएँ भी।'[3]

इस युग में स्त्रियों को राजनीतिक क्षेत्र में अधिकार दिए जा रहे थे जिनका चित्रण लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'आधी रात' नाटक में मिलता है। इस नाटक में

१ राधेश्याम कथावाचक : उषा-अनिरुद्ध पृ० १४
२ सेठ गोविन्ददास : प्रकाश पृ० ११
३ सेठ गोविन्ददास : हर्ष ४८

राघवचरण मायावती को उनके अधिकारों के विषय में उसका ध्यान आकर्षित करता हुआ कहता है—"सरकार स्त्रियों को पृथक् अधिकार दे रही है। व्यवस्थापिका सभाओं में पुरुषों के साथ साथ विधान और व्यवस्था का काम उन्हें दिया जा रहा है। इस युग के मनोवैज्ञानिक स्त्रियों को पुरुषों की तुलना में अधिक बुद्धिमती और क्रियाशील कह रहे हैं।'[1] मिश्र जी ने वास्तविक रूप से इस समस्या की ओर ध्यान दिया है और युग की सामाजिक स्थिति को चित्रित करने का पूर्ण प्रयत्न किया है।

उदयशंकर भट्ट के नाटक 'विद्रोहिणी अम्बा' में नारी पुरुष से अपमानित होने पर भयंकर रूप से विद्रोह कर देती है। इस नाटक में इसी विद्रोह का चित्रण पाया जाता है। भीष्म काशिराज की तीनों कन्याओं को स्वयंवर से अपने भाई विचित्रवीर्य के लिए बलपूर्वक उठा लाता है परन्तु उनमें से अम्बा राजा शल्व से प्रेम करती थी और उसी को वर चुकी थी। पता चलने पर भीष्म अम्बा को राजा शल्व के पास आदरपूर्वक भेज देता है परन्तु राजा शल्व उसको ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं, क्योंकि वह भीष्म द्वारा हरी गई स्त्री है। अम्बा दुःखी होकर प्रार्थना करती है कि मेरा अपमान मत कीजिए। इस पर विदूषक कहता है कि स्त्रियों का मानापमान ही क्या? इसका उत्तर अम्बा विद्रोह के स्वर में देती है और कहती है—'स्त्रियों का मानापमान क्या? पुरुष समाज की इतनी धृष्टता। स्त्रियों के सौंदर्य की काई पर फिसलने वाली पुरुष जाति ने आज से नहीं सदा से स्त्रियों का अपमान किया है।'[2] अन्त में जाकर अम्बा भीष्म से पूर्णरूपेण अपने तिरस्कार का बदला लेती है और पुरुष को दिखा देती है कि नारी में कितनी शक्ति होती है। इस प्रकार इस युग के नाटककारों ने नारी उन्नति की ओर संकेत किया है। इन नाटकों के चित्रण से स्पष्ट है कि इस युग में स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा की गई थी और सामाजिक रूप से उनमें जागृति उत्पन्न हो चुकी थी तथा समाज में उन्हें उचित स्थान प्राप्त होने लगा था।

(ङ) विवाह का स्वरूप

प्राचीन काल में एक जाति दूसरी जाति से विवाह नहीं करती थी खान-पान के सम्बन्ध भी कठोर थे। कन्या का विवाह माता पिता की इच्छा पर निर्भर करता था—चाहे वे जिस किसी के साथ कर दें। विवाह में कन्या को स्वतन्त्रता नहीं थी। इस परम्परा का निर्वाह एक लम्बे समय तक चलता रहा। परन्तु समय के परिवर्तन के साथ-साथ युग की मान्यताएं भी परिवर्तित होती हैं और नई-नई मान्यताएँ अपनाई जाती हैं। प्रसाद-युग में पुरानी मान्यताओं का खण्डन हो चुका था और नई मान्यताओं का आविर्भाव हो रहा था। इन नई मान्यताओं ने साहित्यकारों को भी प्रभावित किया। इस युग के नाटककारों ने पुरानी धारणाओं को न लेकर नवीन

१ लक्ष्मीनारायण मिश्र आधी रात पृ० ३६
२ उदयशंकर भट्ट विद्रोहिणी अम्बा पृ ७६-७७

की समस्याओं का चित्रण किया।

इस युग में अन्तर्जातीय विवाह भी होने लगे थे। कभी-कभी दो जातियों को परस्पर सम्बद्ध करने के लिए भी अन्तर्जातीय विवाह करा दिए जाते थे। राधेश्याम कथावाचक ने 'उषा अनिरुद्ध' नाटक में वैष्णव और शैव के झगड़े को समाप्त करने के लिए उषा और अनिरुद्ध का विवाह कराया है। नारद चित्रलेखा से कहते हैं— "वैष्णव और शैव का झगड़ा मिटाने का यही एक उपाय है कि जिस प्रकार भी हो अनिरुद्ध और उषा का विवाह करा दिया जाय।"[1] उषा बाणासुर शैव की पुत्री है और अनिरुद्ध वैष्णव है। इन दोनों का विवाह विधिपूर्वक सम्पन्न होता है और दोनों सम्प्रदाय एकता के सूत्र में बँध जाते हैं।

इस युग में स्त्री और पुरुष को विवाह की स्वतन्त्रता प्रदान की गई थी जिसका चित्रण प्रसाद के 'कामना' नाटक में प्राप्त होता है। कामना विवाह की स्वतन्त्रता के विषय में विलास से कहती है कि इसमें [illegible] का कोई बन्धन नहीं है। यह तो इस द्वीप का नियम है कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष को स्वतन्त्रता से जीवन भर के लिए अपना साथी चुन ले।[2] इन शब्दों में प्रसाद जी ने विवाह में वर और कन्या को स्वतन्त्रता प्रदान की है।

प्रसाद जी ने 'जनमेजय का नागयज्ञ' नाटक में नागबाला मणिमाला का विवाह जनमेजय से कराया है। सरमा जनमेजय से कहती है— "इस नागबाला मणिमाला को आप अपनी वधू बनाइए।"[3] जनमेजय के न चाहने पर भी व्यास जी उनको इस विवाह के लिए राजी कर लेते हैं और विवाह सम्पन्न होता है। इस विवाह के द्वारा दोनों बड़ी जातियाँ प्रेम-सूत्र में बँध जाती हैं। इस नाटक की रचना के समय हमारे देश में हिन्दू मुसलमान का पारस्परिक वैमनस्य चल रहा था। इसे शान्त करने के लिए समन्वय भावना की आहुतियाँ दी गईं परन्तु कलह शान्त नहीं हो सका। डा० दशरथ ओझा का मत है कि इस विषम समस्या को देखकर सहृदय प्रसाद जी का कोमल हृदय विक्षुब्ध और विकम्पित हो उठा और उन्होंने नाट्य-रचना के द्वारा इस संघर्ष की समस्या को सुलझाने का प्रयास किया।[4] इस नाटक के द्वारा प्रसाद जी ने हिन्दू मुस्लिम संघर्ष की समस्या को सुलझाने का एक स्तुत्य प्रयास किया है।

'चन्द्रगुप्त' नाटक में प्रसाद ने चन्द्रगुप्त और कार्नेलिया का विवाह सम्पन्न कराकर दो विरोधी जातियों में एकता की भावना का प्रचार किया है। इस नाटक में चाणक्य सिल्यूकस से कहता है— "सन्धि पत्र स्वार्थों से प्रेरित नहीं होते, हस्ताक्षर तलवारों को रोकने में असमर्थ प्रमाणित होंगे। तुम दोनों ही सम्राट हो, शस्त्र-व्यव

१ राधेश्याम कथावाचक : उषा अनिरुद्ध, पृ० ६१
२ जयशंकर प्रसाद : कामना, पृ० १५
जयशंकर प्रसाद : जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० ६४
४ डा० दशरथ ओझा : हिन्दी नाटक—उद्भव और विकास, पृ० २२५

सायी हो, फिर भी सघष हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी। अतएव दा जालुआ पूए कगारा के बीच म एक निमन स्त्रानस्विनी का रहना आवश्यक है।[1] कार्नेलिया एक यवन कन्या है और चन्द्रगुप्त भारतीय सम्राट है परन्तु प्रसाद जी न दोना का विवाह कराकर यहाँ भी हिंदू मुस्लिम साम्प्रदायिकता को समाप्त कराने की चेष्टा की है। इस नाटक से प्रकट है कि इस युग म भी हिंदू मुस्लिम जातिया के आपस मे विवाह हो सकते थे।

सेठ गोविन्ददास के 'कर्तव्य' नाटक मे विवाह के सम्बन्ध मे समाज की अनुचित मर्यादा को भग किया गया है। रुक्मिणी का विवाह उसके माता पिता उसकी इच्छा के विरुद्ध चेदि देश के राजा शिशुपाल स करना चाहते हैं परन्तु रुक्मिणी श्रीकृष्ण से विवाह करना चाहती हैं। कृष्णजी कहते हैं कि मैं रुक्मिणी का हरण करूँगा। उद्धव जी कहते हैं कि कन्या के विवाह का अधिकार तो माता पिता को ही है। परन्तु ब्राह्मण का कथन है—"यह अनुचित अधिकार है उद्धव। वर-कन्या को जन्म भर परस्पर सग रहना पडता है उनके भाग्य का इस प्रकार निर्णय करने का बाँधवा को अधिकार नहीं।[2] उद्धव का कहना है कि इस प्रकार समाज की मर्यादा भग हो जाएगी परन्तु श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि समाज की अनुचित मर्यादा को तोडना ही धर्म है। इस नाटक के द्वारा सेठ गोविन्ददास न भी वर-कन्या के लिए विवाह म पूर्ण स्वतन्त्रता का समर्थन किया है।

इस युग म विवाह के सम्बन्ध म नारी पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग करती है। राधेश्याम कथावाचक ने अपने रुक्मिणी कृष्ण' नाटक म रुक्मिणी को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की है। रुक्मिणी शिशुपाल से विवाह न करके श्रीकृष्ण के साथ करना चाहती है परन्तु उसका भाई युवराज रुक्मी शिशुपाल से ही कराना चाहता है। इस विवाह का विरोध करने के लिए रुक्मिणी के पास बहुत शक्ति है और वह अपने भाई रुक्मी स अपना विरोध प्रकट करती हुई कहती है— भैया, अब मैं स्पष्ट शब्दो म कहती हूँ लज्जा का छोडकर कहती हूँ, भय को त्याग कर कहती हूँ कि गला घोट लूगी विष खा लूगी कूप मे डूब मरूँगी जलती ज्वाला म कूद पडूगी, परन्तु शिशुपाल के साथ विवाह नहीं करूँगी नहीं करूँगी नहीं करूँगी।[3] इस नाटक स यह प्रमाणित होता है कि युग की नारी विवाह के सम्बन्ध मे विद्रोह की भावना भी प्रकट कर सकती है। यदि उसका विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध होता है तो वह आत्महत्या करने को भी तैयार रहती है। अत नारी न अपनी खोई हुई सत्ता को पुन प्राप्त कर लिया—ऐसा इन नाटको म परिलक्षित होता है।

इस दिशा म गोविन्दवल्लभ पत ने भी वरमाला नाटक लिखकर योगदान दिया है। विदिशा की राजकुमारी वैशालिनी को राजकुमार अवीक्षित स्वयवर से

1 जयशकर प्रसाद चन्द्रगुप्त पृ० २१७–२१८
2 सेठ गोविन्ददास कर्तव्य पृ० १२०
3 राधेश्याम कथावाचक रुक्मिणी-कृष्ण पृ १ ८

है। किरणमयी और मुरलीधर बहुत दिनों से आपस में प्रेम करते हैं परन्तु सामाजिक बन्धन के कारण उनका विवाह नहीं हो पाता। किरणमयी का विवाह एक पचास वर्ष से भी अधिक वय प्राप्त प्रोफेसर दीनानाथ से हो जाता है। दीनानाथ का सारा जीवन साहित्य की सेवा में व्यतीत हुआ है परन्तु किरणमयी अभी युवती ही है। वह दीनानाथ से सन्तुष्ट नहीं है। परिणाम यह होता है कि कई बार मुरलीधर और किरणमयी को आपस में मिलते हुए दीनानाथ देख लेता है। इस घटना से किरणमयी और दीनानाथ कभी भी सुखी नहीं रहे। इस प्रकार किरणमयी का जीवन जटिल तथा विषमय बन जाता है और दोनों जीवन में भटकते रहते हैं। इस नाटक के द्वारा मिश्रजी ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि अनमेल विवाह से गृहस्थ जीवन किस प्रकार बिगड़ जाता है और नारी का जीवन तबाह हो जाता है। इस नाटक से अनमेल विवाह न करने की शिक्षा प्राप्त होती है।

वास्तव में यह परतन्त्रता का युग था और भारत में बहुत से राजा महाराजा और नवाबों का बोलबाला था। वे अपनी काम वासना को शान्त करने के लिए वृद्धावस्था में भी युवा-कन्याओं से विवाह कर लेते थे। गरीब माता पिता परिस्थितिजन्य अभावों के कारण अपनी कन्याओं के विवाह इन वृद्धों के साथ कर देने के लिए विवश हो जाते थे। अतः इन युवा कन्याओं का जीवन कष्टमय हो जाता है और वे अपनी काम वासना को शान्त व तृप्त करने के लिए परपुरुष की ओर देखने लगती हैं। इन अनमेल विवाहों के कारण नारी वेश्या बनने के लिए बाध्य होती है जिसका उत्तरदायित्व नारी पर कम है और समाज पर अधिक है। वेश्या समस्या का एक कारण निर्धनता भी हो सकता है।

(छ) वेश्या-समस्या

भारतीय समाज में विधवा प्रथा, दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा, बहुपत्नी विवाह तथा अनमेल विवाह आदि अनेक सामाजिक कुप्रथाओं से त्रस्त निरीह नारी के लिए जीवित रहने का एक ही आर्थिक स्वावलम्बन शेष था कि वह वेश्या बन कर शरीर बेचे। उचित संरक्षण के अभाव में तथा उचित वैवाहिक चुनाव न होने के कारण अनेक मनोवैज्ञानिक असंगतियाँ भी इसके अन्य कारण हैं। जो आर्थिक सुरक्षा अबला नारी को मिलती थी वह भी आधुनिक युग में संयुक्त-परिवार के विघटन से समाप्त हो गई। सांस्कृतिक पतन की ऐसी स्थिति आई कि वेश्या प्रथा के संगठन में धर्म का उपयोग किया गया। दक्षिण में देवदासी प्रथा में धर्म का सहारा लिया गया। हिमालय की तराई में नायक समुदाय में कन्या का विवाह न करके वेश्या पेशे के लिए बेचने की प्रथा इसी का परिणाम है। इस प्रकार नारी का शोषण चलता रहा और वैयक्तिक चारित्रिक हीनता का सारा दोष समाज ने वेश्या के सिर पर मढ़ दिया। हमारे विचार से आक्रोश वेश्या पर नहीं वरन् समाज पर होना चाहिए।

हमारा समाज वेश्याओं को वेश्यावृत्ति छोड़ने का अवसर प्रदान करे तो वे इसके लिए तैयार हो सकती हैं। इस नाटक में चन्दा के वेश्यावृत्ति छोड़ने पर वियोगी शम्भु से उसकी पवित्रात्मा के विषय में कहता है— अधम वेश्या ? अब नहीं है। अब वह उत्तम से भी उत्तम है। शम्भु तुमने जंजीरों में जकड़े हुए उस अधम शरीर के परिवर्तन में आई हुई अवस्था नहीं देखी है। वेश्या की राख के भीतर पश्चात्ताप की चमकती हुई चिंगारी पर तुम्हारी नजर नहीं पड़ी है। आह ! पवित्र आत्मा की वह कलेजा खींचने वाली सदा अभी तक इस आकाश के नीचे गूंज रही है।"[1] इस प्रकार चन्दा ने वेश्यावृत्ति को छोड़कर समाज में एक उचित आदरणीय स्थान प्राप्त कर लिया है। अन्त में वह अपना साज सिंगार और सारी सम्पत्ति दान कर देती है और अपने में एक परिवर्तन लाती है। वह वियोगी से अपना कार्यक्रम बतलाती है— इस पेशे की प्रथा को जड़ से खोद कर फेंक देने की व्यवस्था करूँगी। स्त्री शिक्षा और कन्याओं के सुधार के वास्ते अपने जीवन की आहुति दूंगी। अपने देश और अपने देश की स्त्री जाति के लिए संन्यासिनी हो जाऊँगी।

यही है एक प्रायश्चित जिससे जन्म उजला हो।

कि इन हाथों से अब तो देश की बहनों की सेवा हो ॥[2]

इस प्रकार चन्दा समाज सेवा के काम में अपनी सारी शक्ति लगा देती है और जीवन में सफलता प्राप्त करती है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'राक्षस का मन्दिर' नाटक में वेश्या-सुधार की समस्या को प्रमुख स्थान दिया है। वृद्ध वकील रामलाल की मुसलमान वेश्या से उसका पुत्र रघुनाथ प्रेम करने लगता है। रघुनाथ का मित्र मनोहर एक क्रांतिकारी युवक है वह रघुनाथ पर दबाव डालकर रामलाल की सारी सम्पत्ति वेश्या-सुधार के लिए खोले गए मातृमन्दिर के नाम लिखा लेता है। कुछ समय पश्चात् इस मातृमन्दिर की भी पोल खुल जाती है और अश्करी मनोहर के मन्दिर अर्थात् राक्षस के मन्दिर में रहने लगती है। वास्तविक रूप से देखा जाय तो यह भी प्रेमचन्द के 'सेवासदन' का ही दूसरा नमूना है। रघुनाथ मनोहर से इस मन्दिर की पोल खोलता हुआ कहता है— सेवा नहीं मुनीश्वर लालसा और उपभोग वासना और विकार मुनीश्वर ! आज की दुनियाँ में तुम्हारे जैसे सेवक बहुत हैं इसीलिए इसकी यह दशा है। यह गिरती चली जा रही है रोज तुम लोग अपनी लम्बी चौड़ी रिपोर्ट निकालते हो स्कीम बनाते हो आन्दोलन करते हो यह सब दुनियाँ की भलाई के लिए नहीं, बुराई के लिए हो रहा है। तुम वेश्या-सुधार आश्रम के व्यवस्थापक हो। वह भी वर्ष दो वर्ष के लिए नहीं दस पांच वर्ष के लिए नहीं जीवन भर के लिए। मेरी दस लाख की सम्पत्ति उसमें लग गई और रजिस्ट्री हुई तुम्हारे नाम से। मैं आज एक एक पैसे के

---

१ राधेश्याम कथावाचक परिवर्तन पृ० ६५ ६६

२ वही पृ० १०१

लिए भिखारी हैं। इस नाटक में उन सुधारकों की खिल्ली उड़ाई गई है जो सुधार के नाम पर पाप कमाते हैं और समाज में गन्दगी फैलाते हैं।

(ज) विधवा-समस्या

हिन्दी साहित्य में विधवा-समस्या को पर्याप्त महत्त्व दिया गया है क्योंकि नारी का जितना शोषण विधवा प्रथा के द्वारा हुआ है सम्भवतया समाज के किसी अन्य विधान द्वारा नहीं हुआ होगा। विधवा प्रथा समाज में कई अन्य समस्याओं को जन्म देती है जिनसे समाज में विकार उत्पन्न होने लगता है। इस युग में प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास साहित्य में विधवा-समस्या की ओर अधिक ध्यान दिया है और सुधार-वादी दृष्टिकोण अपनाने की चेष्टा की है। इस समय के हिन्दी नाटककारों ने भी विधवा-समस्या की ओर समाज का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अपने नाटक 'सिन्दूर की होली' में विधवा-समस्या को प्रस्तुत किया है। मनोरमा ८ वर्ष की आयु में विधवा हो जाती है और वह मुरारीलाल की पुत्री चन्द्रकला को शिक्षित करने के लिए उनके पास रहती है। परन्तु उसकी स्थिति बड़ी ही नाजुक है। पति के न रहने पर भी उसके नाम की डोर में वह बराबर बँधी रहती है और जब किसी पुरुष ने उसके प्रति कोई सहानुभूति प्रकट की तो वह उससे ऐसे भाग निकली जैसे कसाई के सामने गाय भाग निकलती है। वह मुरारीलाल से कहती है कि पुरुष तो वैधव्य का अनुभव कभी नहीं करते।

मुरारीलाल—लेकिन तुमने तो अपने प्रेमी का मुख भी नहीं देखा? तुम्हें उसका कोई ज्ञान नहीं।

मनोरमा—इन आँखों से तो कभी नहीं देखा ... लेकिन कल्पना की आँखों से नित्य देखती हूँ ... नित्य। बीस वर्ष का सुन्दर स्वस्थ सम्मोहक शरीर चन्द्रमा-सा मुख, कमल-सी आँखें, कमान सी भौंहें, घने काले नीलम से चमकीले बाल (आँखें मूँदकर) वह स्वरूप इस समय मेरे सामने आ गया है। देखिए तो शायद आपको भी दीख पड़ जाए।[2]

इन शब्दों में मनोरमा के आत्म विश्वास की झलक नजर आती है। मनोजशंकर और उसके सम्बन्ध में मुरारीलाल को कुछ सन्देह हो जाता है तो मनोज शंकर भभक उठता है और कहता है—(उद्वेग में) यह विधवा ... यह विधवा आप नहीं जानते या शायद जानते भी हैं ... अग्नि है, हुताशन है, कोई भी पुरुष इसे छूकर या पीकर जी नहीं सकता।[3] मनोरमा के प्रति मुरारीलाल और मनोज शंकर दोनों का आकर्षण है परन्तु दोनों प्रेम में असफल होते हैं। मनोरमा यह स्वीकार करती है कि वह डिप्टी साहब से घृणा करती है और मनोज से प्रेम।

---

१ लक्ष्मीनारायण मिश्र राक्षस का मन्दिर पृ० ३८

२ लक्ष्मीनारायण मिश्र सिन्दूर की होली पृ० ४०

३ वही पृ० ८८

लेकिन मनोरमा का प्रेम एक विशिष्ट कोटि का है। मनोज उसके वशिष्ट्य का समझने की चेष्टा नहीं करता। वह मनोज को अपना प्रेमी बना सकती है परन्तु दूल्हा नहीं।

मनोरमा यदि ८ वर्ष की आयु में विधवा हुई है तो चन्द्रकला २५ वर्ष की आयु में। दोनों ही अपने अपने वैधव्य को सार्थक सिद्ध करने की चेष्टा करती हैं। चन्द्रकला मनोरमा से कहती है— तुम्हारा विधवापन तो रूढ़ियों का विधवापन है वेद मन्त्रों का और अग्नि भाज का जिस पुरुष को तुमने देखा ही नहीं जिसकी कोई धारणा तुम्हें नहीं है जिसकी कोई स्मृति तुम्हारी आत्मा को हिला नहीं सकी उसका वैधव्य कैसा है? तुम स्वयं सोच लो। मेरा वैधव्य वह निर्विकार मुस्कराहट, यौवन और पुस्त्व के विकास की वह स्वर्गीय आशा मैं कल्पना करती हूँ पच्चीस वर्ष की अवस्था में वह शरीर और वह हृदय कैसा होता (कुछ सोचकर) इसलिए कहती हूँ कि मेरा वैधव्य सार्थक है।'[१] परन्तु इन दोनों के वैधव्य में महान् अन्तर है। मनोरमा तो प्रकृत विधवा है और चन्द्रकला स्वयं विधवा बनती है।

इस नाटक में मनोजशंकर मनोरमा से कहता है कि आजकल विधवाओं के विवाह हो रहे हैं, अब विधवायें न रहेंगी। इस पर मनोरमा उत्तर देती है कि विधवा विवाह हो रहा है—लेकिन वैधव्य कहाँ मिट रहा है? समाज इस आग को बुझा नहीं सकता इसलिए उसे अपने छज्जे में उठाकर अपनी नींव में रख रहा है। तुम्हारे सुधारक राजनीतिज्ञ कवि लेखक उपन्यासकार नाटककार—सभी विधवा के आँसुओं में बहते हुए देख पड़ रहे हैं। अपनी विशेषता मिटाकर संसार के साथ चलना चाहते हैं। वैधव्य तो मिटेगा नहीं—तलाक का आगमन होगा। अभी तक तो केवल वैधव्य की समस्या थी—अब तलाक की समस्या भी आ रही है। तुम्हारे कहानी लेखक इस समस्या को कला का आधार बना रहे हैं और इस प्रकार संयम और शासन को निकालकर प्रवृत्तियों की बागडोर ढीली कर रहे हैं। उनका उद्देश्य अधिक से अधिक उपभोग है और इसी को वे अधिक से अधिक सुख समझ रहे हैं। लेकिन उपभोग सुख है? इसका उत्तर मनोजशंकर के पास नहीं मिलता।

इस नाटक में इन दोनों स्त्री पात्रों ने—मनोरमा और चन्द्रकला—एक बड़ी समस्या का समाधान समान रूप से प्रस्तुत किया है। रोटी और कपड़े की मजबूरी स्त्री को पुरुष पर निर्भर रहने के लिए बाध्य करती है। मनोरमा और चन्द्रकला के सामने यह मजबूरी नहीं है। उनकी शिक्षा उन्हें अपने पैरों पर खड़ी होने के योग्य बनाती है।

हमारे समाज में एक सामाजिक कुरीति है कि विधवा को किसी मंगल कार्य में हाथ डालने का अधिकार नहीं है। विधवा-नारी विवाह के अवसर पर वर अथवा

१ लक्ष्मीनारायण मिश्र सिन्दूर की होली पृ० १०७-१०८

संकेत किया है। इस नाटक में दामिनी उत्तंक के प्रति आकृष्ट है। उत्तंक दामिनी के लिए मणिकुण्डल लाया है और दामिनी उससे कहती है कि मुझे अपने हाथों से पहना दो।

उत्तंक—देवि, क्षमा हो, मुझे पहनाना नहीं आता।
दामिनी—उत्तंक! तुम मुझसे इतना क्यों हिचकते क्यों हो?
उत्तंक—नहीं देवी, मुझे गुरु ऋण से मुक्त करें, मैं जाऊँ!
दामिनी—तो चले ही जाओगे? मैं स्पष्ट कहना चाहती हूँ कि ।[1] इन शब्दों में खुलकर तो नहीं परन्तु अवैध प्रेम की भावना अवश्य झलकती है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'आधीरात' नाटक में हल्के हाथों से इस समस्या को उठाया है। मायावती पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगी जाने पर चार पुरुषों से प्रेम करती है और तीन के साथ तो वह विवाह भी कर लेती है। अन्त में वह अपने जीवन से संतुष्ट न होकर नदी में कूदकर आत्म हत्या कर लेती है। राधाचरण रायचरण और प्रकाशचन्द्र से मायावती के अवैध प्रेम तथा विवाह के सम्बन्ध में कहना है—'जिस स्त्री के जीवन में एक दो तीन चार इतने प्रेमी हो उठें—सिवा आत्महत्या के वह और कर ही क्या सकेगी? मनुष्यता की यह विडम्बना मिटेगी कब?'[2] इस प्रकार इस अवैध प्रेम ने ही मायावती को आत्म हत्या करने पर बाध्य किया क्योंकि वह अब अपने आपसे सन्तुष्ट नहीं थी। आजकल इस अवैध प्रेम के कारण ही बहुत सी आत्म हत्याएँ हो रही हैं। इसी से अवैध सन्तान की समस्या उत्पन्न होती है।

मिश्र जी ने 'मुक्ति का रहस्य' नाटक में भी इस समस्या को समाज के सामने रखा है। आशादेवी उमाशंकर से प्रेम करती है और उसे प्राप्त करने के लिए वह उसकी पत्नी को विष देकर मार देती है। इस मृत्यु के रहस्य को छिपाने के लिए वह डाक्टर त्रिभुवननाथ से प्रेम करना आरम्भ करती है। बात यहाँ तक पहुँच जाती है कि वह डाक्टर को अपना शरीर अर्पित कर अपवित्र हो जाती है। अन्त में वह उमाशंकर को सब कुछ बतला देती है। वह डाक्टर के साथ विवाह करने का प्रस्ताव उमाशंकर के सामने रखती है और वह उसको क्षमा कर देता है। इस प्रकार इस समस्या में उमाशंकर का घर नष्ट हो जाता है और उन दोनों की बदनामी होती है। अन्त में नाटककार सबको मुक्ति दिला देता है।

(ञ) अनाथ बच्चों के संरक्षण की समस्या

अनाथ बच्चों के संरक्षण की समस्या आज के युग की एक ज्वलन्त समस्या बन गई है। प्रश्न यह उठता है कि ये अनाथ बच्चे कहाँ से आए? इसका उत्तर यही है कि समाज की दुष्प्रवृत्तियों के कारण ही इनका जन्म होता है। यह हम पहले ही कह चुके हैं कि अवैध प्रेम से अवैध सन्तान होती है और उनका उत्तरदायी कोई

१ जयशंकर प्रसाद 'जनमेजय का नागयज्ञ' पृ० ३८
२ लक्ष्मीनारायण मिश्र 'आधी रात' पृ० १३०-१३१

मना बनता चाहता। इसके साथ-साथ कुछ गरीब माता पिता भी बच्चों के जन्म के बाद उनको इधर उधर फेंक देते हैं और समाज ने इन बच्चों के लिए अनाथालय स्थापित किए हैं। इन अनाथालयों का चलाने का सारा व्यय सरकार वहन करता है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने संन्यासी नाटक में अवैध-सन्तान का प्रश्न उठाया है। इस नाटक में मालती का पिता उमाकान्त एक चरित्र भ्रष्ट व्यक्ति है। उसने अपनी युवावस्था में एक लड़की का धर्म भ्रष्ट किया है, जिससे मालती पैदा हुई है। माता अपने जन्म की कल्पना का विवरण देते हुए मालती से कहती है कि किस तरह अपनी जवानी में उन्होंने एक मूर्ख का धर्म बिगाड़ा। किस तरह और कहाँ मेरा जन्म हुआ। किस तरह मेरा लालन-पालन हुआ। किस तरह जब मैं पाँच बरस की थी अभागिनी स्वर्ग से मरी। किस तरह मुझे यहाँ लाए और किस तरह मैं यहाँ रही। मनुष्य देखने में इतना सज्जन और उदार मालूम होता है वह इतना नीच भी सकता है। मैं मालती को माता होकर भी उसके बाप की पत्नी होकर ।[१] इस प्रकार इस नाटक में यह स्पष्ट किया गया है कि उमाकान्त एक ऊँचे परिवार का व्यक्ति था और मालती उसकी अवैध सन्तान है परन्तु सामाजिक भय के कारण उसने उस अपनी पुत्री घोषित नहीं किया। इसीलिए उसका लालन-पालन ठीक प्रकार से नहीं हुआ और वह मास्टर की चाकर हो बन गयी।

मिश्र जी के नाटक मुक्ति का रहस्य में आशादेवी ने मनोहर की माँ को विष देकर मार डाला और मनोहर को कहती है कि मुझे माँ कहा करो। एक डाक्टर से आशादेवी का अवैध सम्बन्ध है। वह मनोहर को कहती है कि अगर तुम इनको माँ नहीं कहोगे तो तुम्हें खाना नहीं मिलेगा। इस पर मनोहर डाक्टर से कहता है—"डा० साहब सड़क के उस पार जो अनाथालय है उसमें जो लड़के रहते हैं उन सबकी माँ मर गई। मैंने कल लड़कों से पूछा है सब कहते हैं कि उनकी माँ मर गयी है। उनको लड़कों को खाना मिलता है—मक्खन दूध भी मिलता है। दिन भर मजे में रहते हैं कोई माता नहीं है। मैं भी उसी में चला जाऊँगा।"[२] इस नाटक में नाटककार ने मनोहर को अनाथ माना है और उसके सम्मान की समस्या को उठाया है। यदि ये अनाथालय न हों तो इन बच्चों की कोई समुचित व्यवस्था न हो और ये बच्चे आगे चलकर चोर डाकू व्यभिचारी आदि बनते हैं और समाज में गन्दगी फैलाते हैं।

(ट) दहेज-समस्या

आज के समाज में दहेज की समस्या ने भीषण रूप धारण कर लिया है। आजकल माता पिता अपने पुत्रों को ऊँची शिक्षा देते हैं और उस शिक्षा का व्यय लड़की के माता पिता से दहेज के रूप में प्राप्त करते हैं। यह आज के युग की एक

१ लक्ष्मीनारायण मिश्र संन्यासी पृ० १४६

२ लक्ष्मीनारायण मिश्र मुक्ति का रहस्य पृ० २१

सामान्य सिद्धान्त बन गया है। इस भीषण समस्या का कई बार यह परिणाम निकलता है कि आधुनिक लड़कियाँ दहेज न दे सकने के कारण आत्महत्या तक कर लेती हैं। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने संन्यासी नाटक में दहेज की समस्या को प्रस्तुत किया है। मातादीन प्रसाद अपने पुत्र विश्वकान्त को इसलिए इतनी ऊँची शिक्षा दिलवा रहा है कि वह उसके दहेज में एक बहुत बड़ी धनराशि प्राप्त करेगा। मालती का पिता उमाकान्त विश्वकान्त के विवाह के लिए मातादीन प्रसाद के पास जाता है तो मातादीन प्रसाद उससे दहेज के लिए एक बहुत बड़ी धन राशि माँगता है और कहता है—'यह आप समझिए कि दो सौ रुपये महीने का खर्च है। आप समझते हैं कि मैंने पाँच हजार ज्यादा माँगा है। जिसके लड़के के पढ़ने का खर्च दो सौ रुपये महीने होगा वह इससे तो कम दहेज नहीं लेगा।'[1] इस प्रकार यह दहेज की समस्या आज भी विद्यमान है जो समाज को विकृत कर रही है।

(ठ) सौतिया-डाह

भारतीय समाज में बहुपत्नी की समस्या बहुत पुरानी है। प्राचीन काल से राजा महाराजा लोग कई-कई विवाह करते थे परन्तु उनमें आपस में द्वेष की भावना का आ जाना एक स्वाभाविक बात है। उदयशंकर भट्ट ने इसी भावना का चित्रण अपने नाटक सगर विजय में किया है। राजा बाहु की दो रानियाँ हैं, बड़ी का नाम विशालाक्षी है और छोटी का नाम वल्लि है। बड़ी का स्वभाव बहुत ही शान्त और सरल है परन्तु वल्लि का स्वभाव कुटिल और द्वेषपूर्ण है। राजा बाहु हैहयवंशीय राजा दुर्दम से हारने पर रानियों समेत जंगल में भाग जाता है। वहाँ सगर को भी जाकर छोटी रानी वल्लि बड़ी रानी विशालाक्षी को विष दे देती है और उसके पुत्र मारने के लिए दो बार ऋषियों के आश्रम से उठा लाती है क्योंकि वह विशालाक्षी सौत का पुत्र है। वल्लि राजा दुर्दम से कहती है—'एक बार मेरी आर देख, मैं उसका नाश चाहती हूँ। मैं उसे प्रलय में पीसकर मार डालना चाहती हूँ। वह मेरे सौभाग्य-पथ का विषम शैला नभ चुम्बी भूधर है। मैं उसे स्वयं मारूँगी।'[2] भट्ट जी ने इस नाटक में वल्लि के चरित्र द्वारा सौतिया डाह का अच्छा चित्रण किया है।

नाटकों में अभिव्यक्त सांस्कृतिक चेतना का स्वरूप

(क) भारतीय संस्कृति

(१) आस्तिक भावना—प्राचीन काल से ही भारतीय आस्तिक रहे हैं और इस देश पर अनेक विदेशियों के आक्रमण होने पर भी वे परमात्मा को नहीं भूले हैं। इस देश में विभिन्न संस्कृतियों के व्यक्ति आए और भारतीय संस्कृति को कुछ प्रभावित

१ लक्ष्मीनारायण मिश्र संन्यासी पृ० ३

२ उदयशंकर भट्ट सगर विजय पृ० ४

है— समस्त आलोक, चेतना और प्राणशक्ति, प्रभु की दी हुई है। मृत्यु के द्वारा वही इसको लौटा लेता है। जिस वस्तु को मनुष्य दे नहीं सकता उसे ले लेने की स्पर्धा से बढ़कर दूसरा दम्भ नहीं। मैं फल मूल खाकर अंजलि से जलपान कर, तृण शय्या पर आँख बन्द किए सो रहता हूँ। न मुझसे किसी को डर है और न मुझको डरने का कारण है। तुम भी यदि हठात् मुझे ले जाना चाहो तो केवल मेरे शरीर को ले जा सकते हो, मेरी स्वतन्त्र आत्मा पर तुम्हारे देवपुत्र का भी अधिकार नहीं हो सकता।"[1] इन शब्दों में प्रसाद ने अपनी आस्तिक भावना का सर्वत्र परिचय दिया है। उन्होंने अपने महाकाव्य 'कामायनी' में भी ईश्वर में अटूट विश्वास प्रकट किया है।

सेठ गोविन्ददास ने 'प्रकाश' नाटक में ईश्वर की सत्ता में विश्वास करते हुए कहा है कि ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं हो सकता। जमींदार अजयसिंह प्रकाशचन्द्र पर स्टेज में बगावत फैलाने का झूठा आरोप लगाकर उसके विरुद्ध प्रार्थना पत्र भेज कर देते है। कन्हैयालाल प्रकाशचन्द्र से कहता है कि इस मामले में उसे जेल जाना पड़ेगा तो प्रकाशचन्द्र उसको उत्तर देता है—मुझे क्या चिन्ता है। जब चाहें तब पकड़ ले जायें। मुझे तो ईश्वर पर विश्वास है। मैं तो मानता हूँ कि सत्य को किसी प्रकार की रक्षा की आवश्यकता नहीं वह हर परिस्थिति में स्वयं अपना रक्षक है।[2] इस प्रकार प्रकाशचन्द्र ईश्वर की सत्ता में विश्वास करता हुआ जेल खाने से भी नहीं डरता।

लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक 'राक्षस का मन्दिर' में एक नागरिक रघुनाथ से कहता है कि तुम अंग्रेजी पढ़कर नास्तिक हो गये हो। तुम परमात्मा को नहीं मानते परन्तु परमात्मा को मानने से सारे काय सिद्ध हो जाते है। वह कहता है कि मेरा लड़का बीमार था परन्तु इलाज कराने पर भी ठीक नहीं हुआ। तब आर में मैं भगवान का नाम लेकर रोज सत्यनारायण की कथा कहलाने लगा। रोज ब्राह्मणों को खिलाया लड़का भला चंगा हो गया।[3] इस चित्रण के द्वारा नाटककार ने बताया है कि परमात्मा में विश्वास रखकर काम किया जाये तो अवश्य सिद्ध होता है।

(२) कर्म सिद्धान्त—इस युग के नाटकों में कर्म करने का सन्देश दिया गया है। नाटकों के अध्ययन से ऐसा लगता है कि इन नाटककारों पर गीता का प्रभाव पड़ा है। गीता में मनुष्य को केवल कर्म करने का अधिकार दिया गया है। इस युग में मनुष्य को कर्मशील बनाने के लिए ही इन नाटककारों ने कर्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। जयशंकर प्रसाद ने अपने 'अजातशत्रु' और 'जनमेजय का नागयज्ञ' नाटकों में कर्म करने का सन्देश दिया है। अजातशत्रु नाटक में जीवक महाराज बिम्बसार से कर्मशील बनने के लिए कहता है— अदृष्ट ही मेरा महाराज

1 जयशंकर प्रसाद चन्द्रगुप्त पृ ५२
2 गोविन्ददास प्रकाश पृ १८६
3 लक्ष्मीनारायण मिश्र राक्षस का मन्दिर पृ ११८

है। नियति का द्वारा पवदत्तर म निमय वस्मत्र्प म वृ^ मरता हूँ क्योंकि मुभ विश्वास है कि जो होना है वह ता हागा ही, फिर कायर क्या वर्ने—रम म क्या विरक्त रहूँ—म इस उच्च सत्य गमीन राजशक्ति का विरोधा द्वारा श्राप्त। मवा वग्न श्राया हूँ। [१] इन शब्दा म निमय होकर वम करने की प्रेरणा दी गई है। इसी भाव का व्यक्त करते हुए गौतम श्रानन्द म कहते हैं— 'यह मेरा काम नहीं— वरना ग्रौर सभाम्रा का दु स अनुभव करना मेरा सामर्थ्य के बाहर है। हम अपना कर्तव्य करना चाहिए दूसरा के मलिन कर्मों का विचारन म भी चित्त पर मलिन छाया पड़ती है।[२] शुद्ध बुद्धि की प्रेरणा से सत्कर्म करत रहना चाहिए। दूसरा की ओर उदासीन हो जाना ही नम्रता की पराकाष्ठा है।[३] इस चित्रण म प्रकट होता है कि प्रसाद जी कर्म के सिद्धान्त पर बल देते हैं।

जनमजय का नागयज्ञ म भी प्रसाद जी ने ग्रालस्य का त्याग कर कम की ओर ध्यान की प्रेरणा दी है। जनमजय वपुष्टमा म कहते हैं— ग्रब एक बार इस समुद्र म कूद पड़ना चाहे जो कुछ हो। ग्रालस्य ग्रब मुझ ग्रकमण्य न्हीं बना सकेगा। इसके भी वपुष्टमा से ड्बकना का त्यागने के लिए कह रहा है—'ग्राप समझते हैं फिर इसी डूबकना क्या ? नियति का मादा-बाहक नौका ऊँचा होना हुआ अपने स्थान पर पहुँच हो जायगा। चिन्ता क्या है ? केवल कम करते रहना चाहिए।[४] इस प्रकार इन दोनो नाटका म प्रसाद जी ने ग्रालस्य ग्रौर कायरता का त्याग कर कम-क्षेत्र म उतरने की भावना को व्यक्त किया है।

प्रसाद जी ने विशाख नाटक म भी सत्कर्म करने की ओर इंगित किया है। सत्कर्म की महिमा का दिग्दर्शन करते हुए प्रेमानन्द विशाख से कहते हैं— सत्कर्म हृदय को विमल बनाता है ग्रौर हृदय म उच्च वृत्तियाँ स्थान पाने लगती हैं इसलिए सत्कर्म कर्मयोग का ग्राधार बनाना ग्रात्मा की उन्नति का माग स्वच्छ ग्रौर प्रशस्त करता है।[५] इस प्रकार इस नाटक म यह प्रकट होता है कि सत्कर्म करने से ग्रात्मा की उन्नति होती है। हृदय म स्थित वृत्तियाँ ऊँची उठने लगती हैं तथा मनुष्य को शान्ति प्राप्त होता है।

सठ गोविन्ददास न कर्तव्य नाटक के द्वारा भारतवासियो के लिए अपनी कर्तव्य पालन की भावना का प्रचार किया है। इस नाटक में श्रीराम ग्रौर श्रीकृष्ण ने अपना कर्तव्य करते हुए राक्षसा की हत्या करके मातृ भूमि की रक्षा की है। उद्धव श्रीकृष्ण का साथ नहीं छोड़ना चाहते इस पर श्रीकृष्ण उनसे कहते हैं—'यदि इतने

---

१ जयशकर प्रसाद अजातशत्रु, पृ १६
  वही पृ० ६४
३ वही पृ० ६४
४ जयशकर प्रसाद जनमजय का नागयज्ञ पृ ५२
५ वही पृ० ७४
  जयशकर प्रसाद विशाख पृ १२

दीर्घकाल तक मेरे संग रहने पर भी आज तुम्हें यह मोह उत्पन्न हो रहा है, तो मेरे संग रहने से तुम्हें लाभ ही क्या हुआ ? जब तुम्हारा कर्तव्य समाप्त हो चुकेगा, तब तुम चाहोगे तो भी इस भूतल पर इस स्वरूप में न रह सकोगे। जो कर्तव्य आए उसे निष्काम हो करते जाओ।'[1] इस प्रकार इस नाटक में निष्काम कर्म करने का सन्देश प्रसारित हुआ है। इन नाटकों से पता चलता है कि पराधीन भारतवासियों को कर्तव्य के पथ पर चलने की ओर प्रेरित किया गया है ताकि वे अकर्मण्य न बने रहें।

(३) पुनर्जन्म में विश्वास—प्राचीन काल से ही भारतीय पुनर्जन्म में विश्वास करते आए हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि आत्मा कभी नहीं मरती वह इस शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर धारण कर लेती है अर्थात् मनुष्य का पुनर्जन्म होता है। जो कर्म हम अब भोग रहे हैं वह पूर्व जन्म का फल है और जो कर्म इस जन्म में कर रहे हैं उनका फल अगले जन्म में भोगना पड़ेगा। मतलब यह है कि मनुष्य का पुनर्जन्म होता है और उसे कर्मानुसार फल भोगना पड़ता है। इस सिद्धान्त को लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अपने नाटकों में चित्रित किया है क्योंकि उनके अधिकांश नाटक सांस्कृतिक हैं।

मिश्रजी के नाटक 'मुक्ति का रहस्य' में पुनर्जन्म में विश्वास की भावना पाई जाती है। आशादेवी उमाशंकर की पत्नी को जहर देने के पश्चात् डा० त्रिभुवन के साथ अवैध सम्बन्ध स्थापित करती है और अन्त में उसे समर्पण भी कर देती है। इधर उमाशंकर के प्रति वह पहले से ही आकृष्ट थी और उमाशंकर से कहती है कि मैं तुम्हें पुनर्जन्म में पाने के लिए त्याग कर रही हूँ।

आशादेवी—तुम्हें दण्ड मैंने अपने इस जीवन का नाश किया है किसी बड़ी आशा में उसके लिए

उमाशंकर—वह क्या है ?

आशादेवी—दूसरे जन्म में तुम्हें पाना।

उमाशंकर—इस जन्म को छोड़कर ?

आशादेवी—यही तो मेरा त्याग है—मैं अपने देवता को अपवित्र नहीं करूँगी।'[2]

इस प्रकार आशादेवी का पूर्ण विश्वास है कि वह उमाशंकर को अगले जन्म में अवश्य प्राप्त करेगी। यह भारतीय विश्वास है कि जो मनुष्य जिस वस्तु की कामना करता हुआ मृत्यु को प्राप्त होता है, अगले जन्म में उसे वह वस्तु प्राप्त हो जाती है।

मिश्रजी ने अपने नाटक 'आधी रात' में भी इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। मायावती राघवशरण से कहती है कि ईसाइयों के यहाँ पाप करने पर

---

१ सेठ गोविन्ददास कर्तव्य पृ० १५६

२ लक्ष्मीनारायण मिश्र मुक्ति का रहस्य पृ० १४६ ४७

हैं। उनको गांधीजी की चित्त शुद्धि बहुत पसन्द है। 'अजातशत्रु' नाटक में प्रसाद चित्त शुद्धि पर बल देता हुआ मल्लिका से कहता है— आज मुझे विश्वास हुआ कि केवल काषाय धारण कर लेने ही से धर्म पर एकाधिकार नहीं हो जाता—वह तो चित्त शुद्धि से मिलता है।'[1] इस नाटक में प्रसादजी धर्म के वास्तविक रूप को समझाने के लिए चित्त शुद्धि पर अधिक बल देते हैं।

'ईशानवर्मन' नाटक में मिश्रबन्धु ने धर्म का आधार देश प्रेम बतलाया है। ईशानवर्मन देश प्रेम को सर्वोपरि मानते हुए बालादित्य से यह कह रहे हैं—'आपको विश्वास न आवेगा, किन्तु यदि बौद्ध होने में विजय की सम्भावना देखता, तो मैं स्वयं आज ही मत ग्रहण कर लेता। मेरा धर्म न हिन्दू है न बौद्ध है मैं तो स्वदेश-प्रेमी हूँ।'[2] इस नाटक में किसी धर्म विशेष की ओर आग्रह न करके देश प्रेम को ही सबसे बड़ा धर्म माना गया है।

डा० दशरथ ओझा ने अपने नाटक 'प्रियदर्शी सम्राट अशोक' में मानव धर्म की प्रतिष्ठा की है। उनका कहना है कि सब धर्मों का समान आदर करना चाहिए। इस नाटक में सम्राट अशोक वृद्धा परिया से कहते हैं— जो धर्म अन्य धर्मों का आदर करना नहीं सिखाता, अन्य धर्मावलम्बियों के प्रति प्रेम और सहानुभूति नहीं प्रदर्शित करता वह तो अधर्म है वृद्धा माता। एक धर्मावलम्बी अन्य धर्मों से द्वेष करके अपने ही धर्म को क्षति पहुँचाता है। हमारा धर्म मानव धर्म है। हम सब धर्मों का सम्मान करेंगे।'[3] इस चित्रण के द्वारा नाटककार ने मानव धर्म की प्रतिष्ठा को स्थापित करने का प्रयास किया है। इस युग में धर्म के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण की भावना पनपने लगी थी और प्राचीन धार्मिक मान्यताएँ नष्ट होने लगी थी।

(५) धार्मिक व्यभिचार—इस युग में कुछ दुराचारी लोग धर्म के नाम पर सामाजिक व्यभिचार कर रहे थे। कहीं तो ईश्वर के नाम पर व्यभिचार करते थे कहीं यन्त्र यौगिक क्रियाओं के द्वारा भोली भाली स्त्रियों को ठग लेते थे तथा कहीं मन्दिर में पूजा के नाम पर वेश्यावृत्ति कराते थे। इन असामाजिक तत्त्वों को देख कर इस युग के नाटककारों ने इन बुराइयों को अपने अपने नाटकों के द्वारा दूर करने का प्रयास किया।

प्रसाद के 'विशाख' नाटक में एक भिक्षु तरला नाम की एक भोली भाली स्त्री को अपनी विद्या का चमत्कार दिखाने के बहाने बहकाता है। वह कहता है कि मैं कुछ मन्त्र जानता हूँ जिनसे ताम्बे के जेवर चांदी के और चाँदी के जेवर सोने के हो जायेंगे। तरला उस लोभ में आकर अपने सारे गहने उसके सामने लाकर रख देती है और वह उससे कहता है— अच्छा तो ला फिर जा तेरे पास चांदी ताम्बा हो तांबा चाँदी हो जाय चाँदी सोना हो जाय—(ऐंठता हुआ)—चल ना स्वर्णयक्षिणी—

१ जयशंकर प्रसाद अजातशत्रु पृ० ८०
२ मिश्रबन्धु ईशानवर्मन पृ० ७
३ डा० दशरथ ओझा प्रियदर्शी सम्राट अशोक पृ० ९१

को टालने के लिए स्थायी शान्ति के प्रयत्नों में लगी हुई हैं। इस युग में यद्यपि भारत की मूल चेतना राष्ट्रीय थी परन्तु इस युग के चिंतक कभी-कभी राष्ट्रीय सीमाओं का पार करके विश्व-कल्याण की कामना करते थे जिनका प्रभाव इस युग के नाटककारों—विशेष रूप से प्रसाद पर परिलक्षित होता है।

प्रसाद के नाटक 'स्कन्दगुप्त' में जयमाला देवसेना से विश्व कल्याण की चर्चा करती हुई कहती है, समष्टि में भी व्यष्टि रहती है। व्यक्तियों से ही जाति बनती है। विश्व प्रेम सर्वभूत हित कामना परम धर्म है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं हो सकता कि अपने पर प्रेम न हो।[1] इस प्रकार प्रसाद जी स्पष्ट करते हैं कि व्यष्टि के कल्याण के साथ-साथ समष्टि का कल्याण भी होना चाहिए और यही मनुष्य मात्र का लक्ष्य होना चाहिए।

प्रसाद के 'अजातशत्रु' नाटक में विश्व कल्याण की भावना का प्रचार करते हुए गौतम मागन्धी को सन्देश दे रहे हैं और कहते हैं कि क्षणिक विश्व का यह कौतुक है देवि! अब तुम अग्नि से तपे हुए हेम की तरह शुद्ध हो गई हो। अब विश्व के कल्याण में अग्रसर हो। असंख्य दुःखी जीवों को हमारी सेवा की आवश्यकता है। इस दुःख समुद्र में कूद पड़ो। यदि एक भी रोते हुए हृदय को तुमने हँसा दिया तो सहस्रों स्वर्ग तुम्हारे अन्तर में विकसित होंगे। फिर तुमको पर दुःखकातरता में ही आनन्द मिलेगा। विश्व मैत्री हो जायगी—विश्व भर अपना कुटुम्ब दिखाई पड़ेगा।[2] इस चित्रण में प्रसाद जी की दृष्टि समस्त विश्व में मैत्री स्थापित करने की रही है। यदि मनुष्य समस्त विश्व को एक समान समझने का प्रयास करें तो ये दिन प्रतिदिन के युद्ध सदैव के लिए समाप्त हो सकते हैं।

जनमेजय का नागयज्ञ नाटक में प्रसाद जी मनुष्य के लिए कहते हैं कि उसे पशुओं को भी मनुष्य बनाना चाहिए अर्थात् जो पशु के समान भावना रखते हैं, उन को मनुष्य-कल्याण की भावना सिखानी होगी। प्रसाद जी पर गांधीजी का प्रभाव झलक रहा है। श्रीकृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं—'इस पृथ्वी पर कहीं-कहीं अब तक मनुष्यों और पशुओं में भेद नहीं है। मनुष्य इसीलिए हैं कि वे पशु को भी मनुष्य बनावें। तात्पर्य यह कि सारी सृष्टि एक प्रेम की धारा में बहे और अनन्त जीवन लाभ करे।'[3]

इस नाटक में भी प्रसाद जी सारी सृष्टि में एक प्रेम की धारा बहती देखना चाहते हैं। वास्तव में प्रसाद प्राचीन भारतीय संस्कृति के महान् आख्याता थे और उनके मन में आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति के प्रति आक्रोश था अतः वर्तमान भारत में वे प्राचीन भारतीय संस्कृति की पुनः स्थापना करना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने

---

१ जयशंकर प्रसाद स्कन्दगुप्त पृ० ६७०

२ जयशंकर प्रसाद अजातशत्रु पृ० १०३११

३ जयशंकर प्रसाद जनमेजय का नागयज्ञ पृ० ११

अपने साहित्य की मूलभूत प्रेरणा प्राचीन इतिहास से ली। हमारे प्राचीन ऋषि-महात्मा लोग विश्व मैत्री और समस्त मानव के कल्याण की भावना व्यक्त करते थे और इसी भावना को प्रसाद जी ने भी व्यक्त किया।

(ख) पाश्चात्य संस्कृति

महाभारत काल के पश्चात् से ही भारत में विदेशी आक्रमण आरम्भ हो गये थे और उन्होंने भारतीय संस्कृति के बाह्य रूप को कुछ प्रभावित किया। इस काल में ही भारत पर निरन्तर आक्रमण होने लगे परन्तु भारत की मूल संस्कृति को वे परिवर्तित नहीं कर सके फिर भी रहन-सहन के ढंग, शिक्षा, विचारों, दृष्टिकोण, नैतिकता के क्षेत्र में अवश्य परिवर्तन आया है। इस पाश्चात्य प्रभाव को इस युग के नाटककारों ने बहुत रूप में चित्रित किया है।

प्रसाद के 'कामना' नाटक में पाश्चात्य सभ्यता के दर्शन कराए गए हैं। इस नाटक में द्वीप देश के निवासी सुख शान्ति से रहते थे परन्तु विदेशी लोगों के आने से वहाँ का जीवन अस्त-व्यस्त होने लगता है। व्यय की अधिकता से और आय कम होने से धन के अभाव का अनुभव होता है जिसकी पूर्ति के लिए हिंसा आवश्यक है। वन-लक्ष्मी इसका विरोध करती हुई लीला से कहती है—लीला! लीला! सावधान रहो। हमारे द्वीप में लोहे का उपयोग सृष्टि की रक्षा के लिए है। उसे संहार के लिए मत बनाओ। जो वस्तु लता और हिंस्र पशुओं से सरल जीवों की रक्षा का साधन है, उसे नरक के द्वार खोलने की उँगलियाँ न बनाओ।[1] इस हिंसा वृत्ति का हमारे नवयुवकों पर भी प्रभाव पड़ा है और इस प्रभाव को इंगित करते हुए सन्तोष विवेक से कह रहे हैं—वे शिकार और जुआ, मदिरा और विलासिता के दास होकर गर्व से छाती फुलाये घूमते हैं। बहुत-से धीरे-धीरे सभ्य हो रहे हैं।[2] इस देश के बच्चे और स्त्रियों की दशा की ओर इंगित करता हुआ विवेक सन्तोष से कहता है—'इस देश के बच्चे दुबले, चिन्ताग्रस्त और भूखे हुए दिखाई देते हैं। स्त्रियों के नेत्रों में विह्वलता-सहित और भी कुछ कृत्रिम भावों का समावेश हो गया है। व्यभिचार ने लज्जा का प्रचार कर दिया है।'[3] इस प्रकार प्रसाद जी ने आधुनिक सभ्यता का प्रभाव भारतीय जीवन पर दिखाया है।

इस पाश्चात्य सभ्यता में स्वार्थ की भावना व्याप्त है। प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे को खा जाना चाहता है। स्त्रियाँ भी पतियों से प्रेम नहीं करतीं और उन पर अधिकार जमाना चाहती हैं। इसका वर्णन प्रसाद जी ने अपने नाटक 'अजातशत्रु' में किया है। वाजिरा इस सभ्यता से दुःखी है और स्वयं से कह रही है—"क्या विश्व भर में यही है। प्रकृति से विद्रोह करके नये साधनों के लिए कितना प्रयास होता

---

१ जयशंकर प्रसाद : कामना, पृ० २
२ वही, पृ० ६८
३ वही, पृ० ४८

है। अन्धी जनता अन्धेरे मे दौड रही है। इतनी छीना झपटी, इतना स्वार्थ साधन कि सहज प्राप्य अन्तरात्मा की सुख शान्ति को भी लोग खो बैठते हैं। भाई भाई से लड रहा है, पुत्र पिता से विद्रोह कर रहा है स्त्रियाँ पतियो पर प्रेम नहीं किन्तु शासन करना चाहती हैं। मनुष्य मनुष्य के प्राण लेने के लिए शस्त्र कला को प्रधान गुण समझने लगा है और उन गाथाओ को लेकर कवि कविता करते हैं। बर्बर रक्त मे और भी उष्णता उत्पन्न करते हैं।[1] प्रसाद जी ने आजकल की सभ्यता के विषय मे यह चित्रण इसलिए किया है कि भारतीय परिवार मे इस प्रकार की भावनाएं घर करने लगी थी और पारिवारिक सम्बन्ध बिगडने लगे थे। उनको सावधान करने के लिए प्रसाद जी को यह प्रयास करना पडा।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अपने नाटक सन्यासी मे आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता का बडे शब्दों मे विरोध किया है। मिश्र जी के मतानुसार यह शिक्षा भारत के लिए सर्वथा अनुपयोगी है और इसमे चरित्र-बल पर ध्यान नही दिया जाता। इस शिक्षा के प्रति उनके शब्द इस प्रकार हैं— शिक्षा की इस रीति को मैं पसन्द नही करता। यह व्यक्तित्व का नाश कर मनुष्य को मशीन बना देती है। शिक्षा की इस प्रणाली मे अच्छे और बुरे मस्तिष्क वाले सभी एक साथ जोत दिए जाते हैं। फल अच्छा नही होता। संस्कार और चरित्र-बल किसे कहते हैं इसका पता इस शिक्षा मे नही चलता। शेक्सपियर के पढ लेने के बाद मैकबेथ बन जाना आसान हो उठता है। पश्चिमी शिक्षा पश्चिमी आदर्श पश्चिमी जीवन हमारे रक्त मे विषैले कीटाणु की तरह प्रवेश कर हमें अशान्त बना रहे हैं हम समझते हैं कि विकास हो रहा है।'[2] इस प्रकार इस शिक्षा को मिश्र जी पसन्द नही करते क्योंकि इस शिक्षा मे नैतिकता की ओर ध्यान नही दिया जाता।

मिश्र जी ने 'राक्षस का मन्दिर' नाटक मे भौतिक शक्ति की आलोचना की है। वे कहते हैं कि भौतिक शक्ति का तो विकास हो रहा है परन्तु आध्यात्मिक शक्ति का ह्रास हो रहा है। जगदीश इस भौतिक सभ्यता के विषय मे महेश से कह रहा है कि मनुष्य की भौतिक शक्तियों का विकास हो रहा है परन्तु आध्यात्मिक शक्तियां हो नही दया का प्रेम का उदारता और सत्य का नहीं। मनुष्य की भीतरी शक्तियों का विकास नही हो रहा है। तुम हवाई जहाज पर चढते हो देवीत्व का मजा उठाते हो, साथ ही साथ हमला मे—यही तुम्हारा विकास है और यदि समझो तो यही तुम्हारा पतन है। तुम युद्ध करते हो शारीरिक बल या हृदय के साहस से नही—जहरीली गैस से।[3] इस नाटक मे मिश्र जी ने आधुनिक विज्ञान के प्रति क्षोभ प्रकट किया है। उनका विचार है कि यदि हम इन आधुनिक उपकरणो

---

१ जयशंकर प्रसाद अजातशत्रु पृ० १०७
२ लक्ष्मीनारायण मिश्र सन्यासी पृ० १०
३ लक्ष्मीनारायण मिश्र राक्षस का मन्दिर पृ० १३७

के पीछे दौड़ते रहेंगे तो आध्यात्मिक शक्ति का ह्रास होगा और नैतिक पतन भी अवश्य होगा।

मिश्र जी ने 'सिन्दूर की होली' नाटक में पाश्चात्य बुद्धिवाद के प्रति रुचि दिखाई है। वे कहते हैं कि इस बुद्धिवाद ने अनेक समस्याओं को जन्म दिया है परन्तु उनका समाधान भी बुद्धि से ही होगा। इस नाटक में चन्द्रकला रजनीकान्त से प्रेम करती है परन्तु रजनीकान्त की मृत्यु पर वह उसके हाथ से अपनी माँग में सिन्दूर भर लेती है और कहती है कि मेरा विवाह हो चुका और मैं विधवा भी हो गई। मनोरमा मनोजशंकर से चन्द्रकला के वैधव्य के विषय में कहती है कि अब उसका विवाह शारीरिक व्यभिचार न होकर मानसिक व्यभिचार होगा। मनोरमा का कथन है कि शारीरिक व्यभिचार से कहीं भयंकर है मानसिक व्यभिचार। समाज की ऐसी बातें—जिनके लिए आजकल इतना शोर मचा है, तराजू के पलड़े पर नहीं सुलझाई जा सकतीं—वे पैदा हुई हैं बुद्धि से और उनका उत्तर भी बुद्धि से ही मिलेगा और प्रकृति के नाम पर हम निरन्तर पशुवृत्ति की ओर बढ़ें—तब तो न कोई चिन्ता न भय—लेकिन तब कोई समस्या भी नहीं है और समाधान भी नहीं।'[1] इस प्रकार इस चित्रण में मिश्र जी बुद्धिवाद के बहुत समीप चले गए हैं।

सेठ गोविन्ददास ने 'प्रकाश' नाटक में पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव स्त्रियों पर दिखाया है। रुक्मिणी शुद्ध भारतीय परिवेश में पली हुई एक भली औरत है परन्तु अब वह अपने पति के साथ विलायत घूमकर आती है और वहाँ के प्रभाव को अपने साथ लाती है। वह रानी कल्याणी के घर जाती है और वहाँ सिगरेट पीती है। रानी कल्याणी के घर जाकर जमीन पर नहीं बैठती कुर्सी माँगती है, मनमानी वेशभूषा पहनती है। वहाँ इस रंग उतारने में भी संकोच होता है। वह भारतीय महिलाओं की अपेक्षा विलायत की स्त्रियों को अधिक सुशिक्षित, उन्नत तथा सभ्य मानती है।[2] पहले वह शुद्ध भारतीय नारी थी परन्तु विदेश जाने पर एकदम इतना पलट गई कि उसे भारतीय नारियों से भी घृणा होने लगी।

नाटकों में अभिव्यक्त आर्थिक चेतना का स्वरूप

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् भारतीय कृषि की स्थिति कुछ निराशाजनक हो गई। पंजाब और उत्तरप्रदेश में अकाल पड़े तथा बिहार, मध्यप्रदेश में खाद्यान्न के संकट की घोषणा की गई। स्थिति यहाँ तक हुई कि आस्ट्रेलिया से लाखों टन गेहूँ मँगवाना पड़ा। यह उल्लेखनीय तथ्य है कि कृषि प्रधान देश होते हुए भी भारत को विदेशी खाद्यान्न सहायता पर निर्भर रहना पड़ा। अकालों के प्रभाव के कारण कृषि की स्थिति खराब हो गई और इससे गरीबी की समस्या ने जन्म लिया।

---

१ लक्ष्मीनारायण मिश्र, सिन्दूर की होली, पृ० ४०

२ सेठ गोविन्ददास, प्रकाश, पृ० ५८-५९

(क) गरीबी की समस्या

गरीबी की समस्या की ओर इस युग के नाटककारो का ध्यान गया और इस स्थिति का चित्रण उन्होंने अपने नाटको मे किया। जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटक विशाख' मे गरीबी को यहाँ तक दिखाया है कि मनुष्य को समय पर जब रोटी नही मिली तो उसने सेम की फलियो से पेट भर लिया। इरावती चिन्तित स कहती है कि दरिद्रता ने विवश किया है इसी से आज सेम की फलियाँ पेट भरने के लिए अपने बूढ़े बाप की रक्षा करने के लिए तोड़ ली हैं।'[1] इतना ही नहीं वह कभी-कभी खेतो म गिरा हुआ अन्न बटोर लाती है और कहती है— हम लोग तबसे अन्नहीन दीन दशा म, इस कष्टमयी स्थिति मे जीवन व्यतीत कर रही है। इन क्षेत्रो का अन्न यदि गिरा पड़ा भी कभी बटोर ले जाती हूँ तो भी डर कर छिपकर।[2] ऐसी समस्या को कामना नाटक मे भी दिखाया गया है। सन्तोष करुणा से कहता है—'दरिद्रता कैसी विकट समस्या! देवी दरिद्रता सब पापो की जननी है और लाभ उसकी सबसे बड़ी सन्तान है।'[3] देश की गरीबी की अवस्था म भी कुछ धनी लोग अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की ओर अधिक ध्यान देते थे। वे लोग देश द्रोही कह गये। 'कामना म विलास सनिको से कहता है कि देश दरिद्र है भूखा है। क्या तुम लोग इन देश द्रोहियो के पीछे चलोगे?'[4] प्रसाद जी कहना चाहते हैं कि इन धनी लोगो को समान वितरण करना चाहिए और अन्न धन को एक जगह एकत्रित नही करना चाहिए।

स्कन्दगुप्त नाटक मे प्रसाद जी न गरीबी का चित्रण करते हुए देश क अनाथ बच्चो की ओर भी इंगित किया है। व्यक्ति सूखी रोटी का सचय करता था ताकि विपत्ति के समय काम आ सके। पर्णदत्त कहता है— सूखी रोटियाँ बचाकर रखनी पडती हैं, जिन्हें कुत्ता को देते हुए सकोच होता था उन्हीं कुत्सित अन्नो का सचय? अक्षय निधि के समान उन पर पहरा देता हूँ।'[5] इस प्रकार देश मे अन्न का सचय किया जाता था। जो सनिक देश के लिए अपना जीवन न्यौछावर कर देते हैं उनके बच्चे भूखे तडपते रहते हैं परन्तु उनकी कोई सहायता नहीं करता। इस स्थिति की ओर प्रसाद जी ने हमारा ध्यान आकर्षित किया है। पर्णदत्त देवसेना से कहता है—"हमारे ऊपर सकडो अनाथ वीरो के बालको का भार है बेटी। ये युद्ध में मरना जानते हैं परन्तु भूख से तडपते हुए उन्हे देखकर आँखो से रक्त गिर पडता

---

१ जयशंकर प्रसाद विशाख पृ० १३
२ वही पृ १४
३ जयशंकर प्रसाद कामना पृ ५६
४ वही पृ ६१
५ जयशंकर प्रसाद स्कन्दगुप्त १ १

है। 'गणदत्त उन बच्चों के लिए भीख माँगता है— भीख दो बाबा। देश के बच्चे भूखे हैं नंगे हैं, असहाय हैं कुछ दो बाबा।'[1] इस प्रकार प्रसाद जी ने अपने नाटकों में देश की गरीबी का यथावत् चित्रण किया है। कुछ समाज सुधारक गरीब बच्चों के लिए अन्न माँग माँग कर भी लाते थे और उनका पेट भरते थे। ऐसे संकेत इन नाटकों में प्राप्त होते हैं।[2]

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'मुक्ति का रहस्य' नाटक में गरीबी का चित्रण किया है। उमाशंकर अध्यक्ष चुन लिया गया है और वह गरीबों के लिए कुछ सुधार करना चाहता है परन्तु वकील बनीमाधव अमीरों के लिए कुछ रियायत चाहते हैं इस पर उमाशंकर कहता— अमीरों के लिए बहुत कुछ हो चुका—अब कुछ गरीबों के लिए होना चाहिए। मुझे इसकी इच्छा ही क्यों हुई? केवल उन्हीं के लिए। केवल गरीबों के लिए। उनकी हालत जब तक सुधारी नहीं जा सकती—तब तक देश [illegible] वहीं [illegible] है।'[3] इस चित्रण से प्रकट होता है कि मिश्र जी गरीबों के सुधार में विश्वास रखते हैं।

अकाल के दिनों में भी धनी लोग अनाज के कोठे भर लेते थे परन्तु गरीब जनता भूखी मर रही थी। इसका चित्रण राधेश्याम कथावाचक के नाटक 'ईश्वर भक्ति' में मिलता है। एक अकाल पीड़ित स्त्री एक धनी कोठारी से अपनी स्थिति का वर्णन कर रहा है— आँखों में गड्ढे पड़ गए हैं—पेट पीठ से लग गया है—अंतड़ियाँ सूखी जा रही हैं—[illegible] रही है। यह पथराई हुई और यह बाहर निकली हुई आँखें जिन्दगी की आखिरी घड़ी में—तुम्हारे कोठार की तरफ ताक रही हैं। पाव भर नहीं तो आध पाव—नहीं तो मुट्ठी भर ही अन्न दे दो। अकाल ने हमको तबाह कर दिया है।'[4] कथावाचक जी ने इस नाटक में अकाल से पीड़ित व्यक्तियों का चित्रण किया है। इस चित्रण से पता चलता है कि देश में कितनी गरीबी थी और व्यक्ति भूख से तड़प रहे थे। धनी लोग इस पर भी अपने धन को अधिक बढ़ाने में लगे हुए थे।

(ख) कर की समस्या

अंग्रेजों ने भारत में अपना शासन स्थापित करने के पश्चात् यहाँ पर इतने कर लगा दिए कि गरीब जनता को उनका सहन करना कठिन हो गया। इधर सरकार कृषकों को तंग करती थी और दूसरी तरफ राजा लोग नवाब बड़े बड़े जमींदार गरीबों को तंग करते थे। उनसे लगान वसूल करते थे और न देने पर उनकी पिटाई होती थी। कर की समस्या का संकेत प्रसाद जी के कामना नाटक

---

१ जयशंकर प्रसाद स्कन्दगुप्त पृ १

२ वही पृ १४

३ लक्ष्मीनारायण मिश्र मुक्ति का रहस्य पृ ११३

४ राधेश्याम कथावाचक ईश्वर भक्ति पृ ६

मे निर्वाह करता है। वन लक्ष्मी महत्त्वाकांक्षा से कहती है— "मैया तुम्हारी कर लेन की प्रवृत्ति ने ग्रना के सत्य का हनका कर दिया कृषक वकन लग है। खेतो की सींचने की आवश्यकता हो गयी। उवरा पृथ्वी को भी कृत्रिम बनाया जाने लगा है।"[1] इस नाटक म बताया गया है कि अनधिकार चेष्टा म लिए गए करो से भूमि भी रुष्ट हो जाती है और उपज कम होती है।

विदेशी शासन द्वारा लिए गये कर का चित्रण मिश्रबन्धु ने अपने नाटक ईशानवर्मन म किया है। दश एक नेता म इस कर की अनधिकार चेष्टा का वर्णन करता हुआ कहता है— "एक क्रूर विदेशी जाति हम पर शासन कर रही है। अब तक कृषक उपज का षष्ठांश मात्र कर म देते थ, किन्तु अब लगान धान्य के स्थान पर धन के रूप म लेने की प्रथा है और वह भी उपज का चौथाई। यही है हूणो का शासन।"[2] इस नाटक म स्पष्ट हो जाता है कि यह अग्रेजो की कर नीति की ओर संकेत है और व गरीब जनता से कितना अधिक कर लेते थे। यही बताना नाटककार का अभीष्ट है। इस नाटक म तत्कालीन कर नीति स्पष्ट होती है।

(ग) उद्योग धन्धे

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् भारत म उद्योग धन्धो की ओर ध्यान दिया जाने लगा। विदेशी माल के साथ साथ भारत म निर्मित माल की ओर लोगो की रुचि बढ़ने लगी। इधर राजनीति म गाधीजी ने विदेशी माल का बहिष्कार कर दिया और असहयोग आन्दोलन चलाया गया। इन सब कारणो से भारतीय व्यापार म उन्नति हुई। लोहा और इस्पात के कारखाने खुले और कुछ कम्पनियो ने भी उद्योगो को सफल बनाया जिनम टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी सर्वाधिक सफल रही।

सेठ गोविन्ददास ने प्रकाश नाटक म उद्योग धन्धो की ओर संकेत किया है। लाला नन्ददास धनपात्र म कहते हैं कि जब भी कुछ विकास होगा केवल फाइनेन्स म होगा। व समस्त व्यापार को भारतीयो को देना चाहते हैं। उनके शब्द इस प्रकार है—"अग्रेज लोगो से आप आर्थिक कुजी अपने हाथ म ले लीजिए ये आपसे आप इस देश म चले जायेग। इण्डियन ज्वाइन्ट स्टाक कम्पनियो से सारे देश म उद्योग धन्धे फला दीजिए विलायती कम्पनियो के हाथ से व्यापार छीन लीजिए तब समाप्त स्वराज्य मिल जायगा।"[3] इस प्रकार सेठ गोविन्ददास जी अग्रेजी कम्पनियो के व्यापार म असन्तुष्ट हैं और सारा व्यापार भारतीयो के हाथो म देखना चाहते है। उनका विचार है कि जब सारे व्यापार की कुजी अपने हाथ मे आ

---

1 जयशंकर प्रसाद कामना पृ० ७८
2 मिश्रबन्धु ईशानवर्मन पृ ४
3 सेठ गोविन्ददास प्रकाश पृ० १४

जाएगी तो स्वराज्य अपने आप आ जाएगा और इससे भारत का धन भी भारत में ही रहेगा।

(घ) पट्टीदारी की समस्या

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'सिन्दूर की होली' में पट्टीदारी की समस्या को उठाया है। इस नाटक में रायसाहब भगवन्तसिंह अपने निकट के सम्बन्धी रजनीकान्त की जमीन को हड़पना चाहता है। वह इसका सन्तान का प्रबन्ध करता है। इसके पश्चात् वह मुरारीलाल को रिश्वत देकर इस समस्या का समाधान करता है। माहिरअली मुरारीलाल से कहता है कि पट्टीदारी का झगड़ा है। उस दिन जो लड़का आप से मिलने आया था उसकी उम्र सत्रह अठारह साल के करीब थी उसके बाप को मरे अभी साल भर हो रहा है। अब इसे कमजोर और गरीब समझ कर रायसाहब उसका हक भी हड़प लेना चाहते हैं। बेचारा उस दिन रोने लगा था। एक ही खानदान और एक ही खून है। अन्त में रायसाहब रजनीकान्त को मरवा देते हैं और उसकी जमीन हड़प लेते हैं। इस नाटक से प्रकट होता है कि इस युग में पट्टीदारी की समस्या भी उठ खड़ी हुई थी तथा बड़े-बड़े जमींदार गरीब लोगों की जमीन हड़प जाते थे और गरीबों को न्याय भी नहीं मिलता था।

४

प्रसादोत्तर-युग
(१९३९-१९४७ ई०)

प्रसाद युग के पश्चात् हिंदी नाटकों का नवयुग प्रारम्भ होता है जिसको प्रसादोत्तर-काल कहा जाता है। इन नाटकों में उन सभी प्रयोगों का विकसित रूप देखने को मिलता है जो प्रसाद जी ने किए थे। ऐतिहासिक नाटकों की धारा बराबर चलती रहती और मौर्य गुप्त-कालीन इतिहास के आधार को त्याग कर राजपूत और मुगलकालीन इतिहास की ओर विशेष ध्यान दिया गया। इस युग के नाटकों में स्वाधीनता के प्रति सक्रिय प्रयत्न बलिदान भावना, हिंदू मुस्लिम-एकता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस युग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि नाटककारों का ध्यान इतिहास की ओर अधिक न रम कर वर्तमान की ओर गया। उन्होंने वर्तमान जीवन की दैनिक आर्थिक और सामाजिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया। मजदूर किसान अध्यापक नेता वकील और डाक्टर को नाटकों में नायक आदि का स्थान मिला। नाटक काल्पनिक जीवन से हट कर यथार्थ के धरातल पर आ गया और पात्र चरित्र चित्रण भाषा तथा वेशभूषा में सामान्य जीवन का बोध होने लगा।

इस युग के नाटकों में टेक्नीक की ओर भी ध्यान दिया गया। नाटकों में प्रायः तीन अंक रखने की परिपाटी चल पड़ी। नाटकों में गीतों की भरमार को हटाने का प्रयास किया गया। इन नाटकों में संकलन त्रय का भी बहुत ध्यान रखा गया। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने इसका सफलता के साथ प्रयोग किया। नाटकों का आकार छोटा होने लगा। नाटकों का अभिनय ढाई अथवा तीन घण्टे में पूर्ण होने लगा परन्तु हरिकृष्ण प्रेमी जी के नाटक इसके अपवाद हैं।

पिछले युग के नाटककारों ने देश की आर्थिक स्थिति की ओर कम ध्यान दिया था, क्योंकि उनको ऐतिहासिक तथ्यों की रक्षा करनी थी परन्तु इस युग में दैनिक जीवन की समस्याओं का बाहुल्य होने के कारण आर्थिक चित्रण की ओर विशेष ध्यान दिया गया। इसके अतिरिक्त सामाजिक समस्याओं की ओर भी उन्होंने दृष्टिपात किया है और राजनीतिक तथा सांस्कृतिक पक्ष भी अछूते नहीं रहे।

नाटकों में अभिव्यक्त राजनीतिक चेतना का स्वरूप

१९३९ ई० में द्वितीय विश्वयुद्ध आरम्भ होने से भारत के सामने एक नई समस्या उत्पन्न हो गई कि इस युद्ध में अंग्रेजों की सहायता की जाए अथवा नहीं।

प्रथम विश्वयुद्ध में सरकार ने भारत को युद्ध में सम्मिलित कर लिया था और नेताओं ने विरोध के स्थान पर उनकी पूरी सहायता की थी। इस बार भारतीय नेताओं ने अंग्रेजों के सामने माँग रखी कि यदि वे भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा करें तो उनकी सहायता की जाएगी अन्यथा नहीं। सरकार ने इस माँग को ठुकरा दिया और कांग्रेसी प्रान्तीय सरकारों ने त्यागपत्र दे दिए। अब भारत के सामने प्रश्न था कि प्रत्येक सम्भव तरीके से स्वतन्त्रता प्राप्त की जाए और इसके लिए सक्रिय प्रयत्न किया गया।

(क) स्वतन्त्रता के लिए सक्रिय प्रयत्न

पिछले युग की अपेक्षा स्वाधीनता की भावना इस युग में और तीव्र हो उठी और नाटककारों ने भी इस दिशा में सक्रिय रूप से सोचना आरम्भ कर दिया। सेठ गोविन्ददास ने 'कुलीनता' नाटक में देश की आजादी दिलाने के लिए विदेशियों को बाहर निकालने का सफल प्रयत्न किया है। राजा विजयसिंहदेव यदुराय को शूद्र मानकर उसे सेवावृत्ति धारण करने को कहते हैं, इस पर यदुराय उनसे कहता है कि 'मैं एक ही धर्म मानता हूँ एक ही सेवा और वह है इस कलि काल में मातृभूमि की रक्षा।'[1] यदुराय को छोटी जाति का मानकर दूर निकाला दिया गया परन्तु उसने शक्ति को संगठित करके कुतुबुद्दीन एबक की सेना को पराजित कर मातृभूमि को स्वतन्त्र कराया और देशवासियों के सामने राष्ट्रीयता और देश प्रेम का आदर्श प्रस्तुत किया।

'शशिगुप्त' नाटक में सेठ गोविन्ददास जी ने विदेशियों को निकालने के लिए एक और मुख्य साम्राज्य की स्थापना के लिए प्रयास किया है। शशिगुप्त हेलन से प्रेम करता है परन्तु चाणक्य देश की स्वतन्त्रता का ध्यान करके उसको प्रेम करने से रोकता है। चाणक्य कहता है कि तुम्हें यवनों से घृणा करनी है अपनी जन्मभूमि के परतन्त्र भागों को स्वतन्त्र करना है। अपने देश में एक साम्राज्य की स्थापना करनी है। अपनी प्रतिज्ञा अपने संकल्प पर स्थिर रहना यह प्रत्येक आर्य का परम कर्तव्य है प्रधान धर्म है।[2] चाणक्य शशिगुप्त को ही स्वतन्त्रता के लिए प्रोत्साहित नहीं करता अपितु वह सैनिकों को भी अपने कर्तव्य की याद दिलाता है। चाणक्य सैनिक से कहता है— सेना सैनिक तुम भारतीय हो। आर्यावर्त की गौरव रक्षा का उत्तरदायित्व यहीं के नरेशों पर ही नहीं एक एक व्यक्ति पर है। किसी भी साधन द्वारा विदेशियों को देश से बाहर कर देना उनके एक एक चिह्न तक को यहाँ नाश कर देना यह तुम सबका प्रथम कर्तव्य परम धर्म है।[3] इन शब्दों में नाटककार बताना चाहता है कि अंग्रेजों को देश से बाहर निकालने का उत्तरदायित्व प्रत्येक

---

१ सेठ गोविन्ददास कुलीनता पृ० ८६
२ सेठ गोविन्ददास शशिगुप्त पृ० ६१
   वही पृ० ६१६२

भारतीय पर है और स्वतन्त्रता प्राप्त करना हमारा प्रमुख ध्येय है।

हरिकृष्ण प्रेमी जी ने भी अपने नाटकों में इसी भावना को चित्रित किया है। 'प्रतिशोध' नाटक में चम्पतराय अपने देश को स्वाधीन कराने के लिए पहाड़सिंह और भीमसिंह से कहता है 'तो आओ हम लाला हरदौल के चबूतरे पर हाथ रख इस बात की शपथ लें कि हम सब बन्धु एकता के सूत्र में बँधकर बुंदेलखण्ड को पूर्ण स्वाधीन बनावेंगे।'[1] भारतीय स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के लिए नवयुवक प्रतिज्ञा कर रहे थे और अंग्रेजों को देश से निकालने के लिए प्रत्येक ढंग से सोच विचार हो रहा था।

प्रेमी जी ने 'आहुति' नाटक में राष्ट्रीयता का सन्देश दिया है। रणथम्भौर पर अलाउद्दीन ने आक्रमण कर दिया है, उसको परास्त करने के लिए देशवासी युद्धभूमि में जाने को प्रस्तुत हैं। चपला ग्राम ग्राम में राष्ट्रीयता का सन्देश फैला रही है और कहती है—'जन्मभूमि पर प्राण देने का अधिकार प्रत्येक देशवासी को है भाई। देश की शत्रु से रक्षा करने के लिए प्रत्येक जाति के पुरुषों को आगे बढ़ना होगा।'[2] इतना ही नहीं राजकुमार जय मीरसाहब से कहता है—'जब जन्मभूमि के मान का प्रश्न उपस्थित है उस समय प्रत्येक युवक का कर्त्तव्य है कि वह अपना बलिदान चढ़ाने को प्रस्तुत हो जाए।'[3] इस नाटक में प्रेमी जी ने आवश्यकता पड़ने पर बलिदान का सन्देश दिया है।

'शिवा साधना' नाटक में प्रेमी जी ने स्वाधीनता के लिए प्रत्येक व्यक्ति के सहयोग की आशा व्यक्त की है। शिवाजी स्वाधीनता के प्रयास में व्यस्त रह कर तानाजी से कहते हैं कि 'मेरे नए जीवन की एकमात्र साधना होगी कि भारत को स्वतन्त्र करना, दरिद्रता की जड़ खोदना, ऊँच-नीच की भावना और धार्मिक तथा सामाजिक दोनों प्रकार की क्रान्ति करना।'[4] स्वाधीनता प्राप्ति में नारियों ने भी विशेष रूप से भाग लिया है। रामदास शिवाजी से कह रहा है कि 'मैंने अक्काबाई और वेनीबाई को स्त्रियों में राष्ट्र धर्म की जागृति उत्पन्न करने का कार्य सौंपा है। नारी शक्ति समाज की प्रधान शक्ति है। जब तक उन्हें अपने आत्मबल का ज्ञान न हो, अपनी शक्ति पर विश्वास न हो, तब तक कोई देश-स्वतन्त्र नहीं हो सकता।'[5] स्वाधीनता के लिए स्त्रियों के साथ-साथ राजा और महाराजाओं का सहयोग भी अपेक्षित है। इसका उल्लेख करता हुआ शिवाजी जयसिंह से कहता है—'मैं दरिद्र किसानों, अभावग्रस्त श्रमजीवियों और मध्यम वर्ग के साधन हीन व्यक्तियों को लेकर स्वाधीनता की साधना कर रहा हूँ। यदि मुझे राजा महाराजाओं

१ हरिकृष्ण प्रेमी प्रतिशोध पृ० २३
२ हरिकृष्ण प्रेमी आहुति पृ० ५९ ६०
३ वही पृ० ६४
४ हरिकृष्ण प्रेमी शिवा-साधना पृ० १९
५ वही पृ० ४४ ४५

म युद्ध करता रहा और अंत म मृत्यु के समय उसन अपने साथियो स कहा कि ऐश्वर्य भारतमाता और हिंदू जाति को कभी मत भूलना इसी मे सब का कल्याण है।[1] मिश्रबन्धु के अनुसार सबका कल्याण इसी मे है कि अपने देश के गौरव को अक्षुण्ण बनाए रखें और भारतमाता की सेवा करें।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री 'अजीतसिंह' नाटक म एक सुदृढ राज्य के लिए राष्ट्रीयता की भावना का होना आवश्यक मानते हैं। अजीतसिंह विजातीय यवन कन्या, औरगजेब की पोती रजिया स विवाह करना चाहते हैं परंतु दुर्गादास इस विवाह के विरुद्ध हैं। अजीतसिंह कहते है कि क्या राजपूत बालाएँ मुगल सम्राट की महिषी नही बनी ? इस पर दुर्गादास कहते हैं कि क्या तुम मुगल साम्राज्य की अनुवृत्ति किया चाहते हो ? मुगल साम्राज्य पीपल के पत्ते की भाँति काँप रहा ह इसीलिए कि उसमे राष्ट्रीयता नही रही। अजीतसिंह समस्त मारवाड की स्वतंत्रता के पालनकर्त्ता हैं। वे समयानुसार मुगलो से संधि करके अपनी भावी योजनाए बना रहे हैं। रानी चन्द्रकुमारी अजीतसिंह स कहती हैं कि जिनसे आप संधि करके सम्मान प्राप्त कर आए हैं उन्होने हमारा अपमान किया है। इस पर अजीतसिंह कहते हैं— मैं उनसे बदला लूगा, उनके हाथो स देश का उद्धार करूँगा, भले ही इसके लिए रक्त की भीषण नदी बहानी पडे।[2] इस नाटक म नाटककार न मुगलो मे राष्ट्रीयता की कमी बताकर यह बताया है कि बिना राष्ट्रीयता के देश छिन्न भिन्न हो जाता है। हमारे देश मे राष्ट्रीयता की भावना का व्यापक प्रचार होना चाहिए। इसके अतिरिक्त यह भी प्रकट होता है कि हम अंग्रेजो से प्रतिशोध लेना चाहिए।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री न अपन 'छत्रसाल' नाटक म स्वतंत्रता के लिए कदम उठाया है। अंग्रेज लोग भारतवासियो को बडे-बडे खिताब देकर उनको अपनी ओर मिलाना चाहते थ और उनकी स्वाधीनता के प्रति विमुख कराना चाहते थ परंतु गाधीजी की ललकार पर भारतवासियो न अपने अपने खिताब अंग्रेज सरकार को वापिस कर दिए और स्वतंत्रता की भावना प्रकट की। इस नाटक म चम्पतराय बादशाह औरगजेब से बातचीत कर रहे हैं। बादशाह उनको खिताब देकर स्वाधीनता से विमुख करना चाहता है परंतु चम्पतराय उनस कहता है—'जहाँपनाह हम लोग ओहदो और खिताबो के भूखे नही हैं। हम अपनी दरख्वास्त वापस लेते हैं। बुन्देलखण्ड बुन्देलो का है और उसे आजाद कराना उन्ही का काम है।'[1] अन्त म छत्रसाल ने अपनी मातृभूमि को आजाद करके ही दम लिया। इस प्रकार इस नाटक मे देश प्रेम और स्वाधीनता की प्रेरणा मिलती है।

गोविन्दवल्लभ पन्त के 'राजमुकुट' नाटक म देश भक्ति का गुणगान किया गया

---

१ मिश्रबंधु शिवाजी पृ० २२२
२ आचार्य चतुरसेन शास्त्री अजीतसिंह पृ० १९२

है। स्वतन्त्रता और देश प्रेम के लिए सदा ही भारतीय ललनाओं ने बलिदान किया है। नारी की शक्ति और महत्ता कितनी असीम है, इस नाटक में अच्छी तरह दर्शाया गया है। स्वामी के लिए पन्ना धाय अपने प्यारे पुत्र चन्दन को धातक बनवीर की तलवार के सामने डाल देती है और राजकुमार उदयसिंह को बचा लेती है। कुछ समय पश्चात् उदयसिंह के बड़े होने पर बनवीर पर आक्रमण करा कर मेवाड़ का उद्धार करती है और उदयसिंह को राजा का पद दिलवा देती है। इस प्रकार अपने पुत्र की चिन्ता न करके पन्ना धाय ने देश भक्ति का आदर्श प्रस्तुत किया है ताकि इस देश की माताएँ भी देश की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा कर देश को स्वतन्त्र कराने का ध्यान रखें।

वृन्दावनलाल वर्मा ने झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई नाटक में स्वराज्य के लिए स्त्रियों की सेना बनवाई है। इस नाटक में लक्ष्मीबाई अपने देश को स्वतन्त्र कराने के लिए स्त्रियों की सेना तैयार करती है। वह मोतीबाई और सुन्दर तथा जूही से कहती है कि मैं स्त्रियों की सेना बनानी आरम्भ करती है। स्त्रियाँ पुष्ट और बलिष्ट बनें, अपनी रक्षा करना सीखें। तभी पुरुष पुरुष बन सकते हैं और तभी स्वराज्य मिल सकता है और टिक सकता है।[1] इस प्रकार स्त्रियों की सेना बनाकर लक्ष्मीबाई देश को स्वतन्त्रता के लिए अंग्रेजों से युद्ध करती है। अन्त में वे मोतीबाई बाबा गंगादास से स्वराज्य के लिए प्रश्न पूछती है। बाबा गंगादास उससे कहते हैं— अभी तो देर है। स्वराज्य-स्थापना के अभिलाषी अपने अपने छोटे राज्य बनाकर बैठ जाते हैं। जनता को भूल रहे हैं। जनता और उनके बीच का अन्तर नहीं मिटता। और जनता के भी बीच परस्पर भिन्नता का है—ऊँच-नीच छूत छात। जब ये अन्तर और भेद मिट जायें और राजा लोग अपना आराम तथा विलासप्रियता को छोड़कर जनता के वास्तव में सेवक बन जायें तब स्वराज्य सम्भव होगा।[1] इस नाटक में आपसी भेदभाव को समाप्त करने और जातीय भावना को मिटाने का संकेत किया है। सभी एकता के बन्धन में बँध कर सामूहिक प्रयास करेंगे तभी स्वराज्य मिल जायगा। इस नाटक से लगता है कि नाटककार गांधीजी से प्रभावित हुआ है क्योंकि यही भावना गांधीजी की थी। इस प्रकार इस युग के नाटकों में स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए सक्रिय प्रयत्न की भावना व्यक्त की गई है।

(ग) असहयोग आन्दोलन का प्रभाव

स्वतन्त्रता प्राप्ति के राष्ट्रीय आन्दोलन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने चार उद्देश्य निश्चित किए थे—स्वराज्य, स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा। इस आन्दोलन का प्रभाव सेठ गोविन्ददास पर भी पड़ा। उन्होंने अपने 'महत्व किसे' नाटक में इसी आन्दोलन का चित्रण किया है। इसके अपने मनजर नदपुर में

---

१ वृन्दावनलाल वर्मा झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई पृ ८५

वही पृ १६

कहता है कि आप जानते हैं न, कि असहयोग आन्दोलन के कार्यक्रम में तीन बहिष्कार मुख्य हैं—कौंसिल, स्कूल और अदालतें। कर्मचन्द आगे चलकर इन तीनों का बहिष्कार करते हैं। वह कौंसिल के लिए चुनाव नहीं लड़ते, अपने लड़के को स्कूल नहीं भेजते और काश्तकारों या कर्जदारों पर सरकारी अदालतों में नालिश नहीं करते। इतना ही नहीं, कर्मचन्द कांग्रेसी होते ही नत्थूलाल को घर के सारे कपड़े तथा विदेशी सामान को जलाने की आज्ञा देता है। वह नत्थूलाल से कहता है—'कांग्रेस नहीं चाहती कि हिन्दुस्तान के बाहर की कोई भी वस्तु काम में लाई जाए। इसमें शक नहीं कि इस वक्त उसने सिर्फ विदेशी कपड़ा जलाने को कहा है, लेकिन आदमी उससे भी बढ़ कर अपने तमाम विदेशी सामान नष्ट कर दे तो कांग्रेस उसकी तारीफ ही करेगी, निन्दा नहीं।'[1] अन्त में वह घर के सारे विदेशी सामान को परिवर्तित करवा देता है।

(ग) ऐक्य भावना

विवेच्य युग में भारत में बहुत सी रियासतें थी और उनके राजा, महाराजा, नवाब आदि में आपसी वैमनस्य की भावना थी। वे अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए अंग्रेजों से मिल रहते थे। इधर हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिकता की भावना जोर पकड़ती जा रही थी। इस एकता के अभाव में स्वतन्त्रता-संग्राम में बाधा पड़ती जा रही थी और अंग्रेज इस एकता के अभाव का भरपूर लाभ उठा रहे थे। इस स्थिति में गांधीजी ने एकता के लिए अथक प्रयत्न किया। इस भावना का प्रभाव इस युग के नाटककारों पर भी पड़ा और उन्होंने अपने नाटकों में एकता लाने का अथक प्रयत्न किया। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार के नाटक 'अशोक' में एकता की भावना पर बल दिया गया है। इस नाटक में एक नेता एकता की बात करता हुआ कहता है कि यदि हम लोग आपस में मिलकर रहेंगे, संगठित रहेंगे, तो सम्राट की भाड़े की सेना हमारी मातृभूमि की स्वतन्त्रता का अपहरण नहीं कर सकेगी। तक्षशिला की स्वाधीनता अमर रहेगी।[2] इस चित्रण द्वारा चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने एकता की भावना पर विशेष बल दिया है।

हरिकृष्ण प्रेमी ने 'प्रतिशोध' नाटक में इस भावना का बहुत ही विशद वर्णन किया है। व्यक्तिगत लाभ की भावना को मस्तिष्क में रखकर छत्रसाल स्वयं कुछ कह रहा है—शुभकरण, दलसिंह और हीरादेवी आदि को देश की स्वतन्त्रता से अधिक प्रिय है अपनी सम्पत्ति और अपना राज्य। वे अपनी जागीरों की रक्षा के लिए गरीब जनता को युग-युग तक गुलामी की जंजीरों में जकड़े रखना चाहते हैं।[3] धर्म

1. सेठ गोविन्ददास : सेवापथ? पृ० ४
2. चन्द्रगुप्त विद्यालंकार : अशोक पृ० १२

के नाम पर देश के टुकड़े न करने के लिए वकीलों मुजफ्फरसिंह से कहता है— क्या यह जनाब सिर्फ हिन्दुओं का दाना-पानी है, हम मुसलमानों का नहीं? मज़हब के नाम पर मुल्क के टुकड़े न करो मुजफ्फरसिंह। जिस मुल्क में हम पैदा हुए जिसकी मिट्टी में हम पले-बढ़े, जिसके आबोदाने से हम पले उसकी आजादी से क्या हमारा कोई ताल्लुक नहीं? छत्रसाल के दीवान से संगठन की कमी की शिकायत करते हुए कहता है कि हम भारतवासी बल और साहस में संसार में किससे कम हैं? हममें संगठन की कमी है। हमने सम्पूर्ण देश को एक राष्ट्र के रूप में देखा ही नहीं, हम अपने अपने वंशों की मर्यादा और छोटे-छोटे राज्यों की रक्षा के लिए सम्पूर्ण देश की स्वतन्त्रता को भी भूल गए हैं। इस प्रकार इस नाटक के द्वारा प्रेमीजी ने एकता की भावना को ध्यान में रख कर व्यक्तिगत स्वार्थों को त्याग देने का संदेश दिया है।

प्रेमीजी [illegible] नाटक में सम्पूर्ण राष्ट्र को एक हो जाने का आह्वान करते हैं। तात्या टोपे अजीजन से कहते हैं— 'प्रत्येक भारतवासी को समझना है कि जिस प्रकार हमारे शरीर में अनेक अंग हैं लेकिन अंगों का एक-दूसरे से सम्बन्ध है और सारे अंग मिलकर ही शरीर बनता है, इसी प्रकार हमारा यह राष्ट्र है। पैर के नाखून को चोट लगती है तो सम्पूर्ण शरीर तिलमिला जाता है वही बात हमारे देश के सम्बन्ध में होनी चाहिए। देश के किसी भी कोने में अत्याचार हो तो सारा देश उसके प्रतिकार के लिए तैयार हो जाए। सहानुभूति की डोर में हम सारे देश को एकता के बंधन में बाँध देना है।' तात्या टोपे ने राष्ट्रीय एकता के लिए विशेष परिश्रम किया है। अंग्रेज भारत में साम्प्रदायिक वैमनस्य को फैला रहे थे परन्तु गांधीजी इसके विरुद्ध एकता का प्रचार करते थे। इस भावना का प्रभाव इस नाटक पर परिलक्षित होता है और अजीमुल्लाखाँ गांधीजी के शब्दों में हिन्दू और मुसलमानों से कहता है— मुसलमानों! अगर आप कुरान की इज्जत करते हैं और हिन्दुओ! अगर आप गौ-माता की इज्जत करते हैं तो आपसी छोटे-छोटे मतभेदों को भूल जाइए और इस पवित्र युद्ध में सम्मिलित हो एक झण्डे के नीचे लड़ाई के मैदान में उतरिए। इस नाटक में प्रेमीजी ने हिन्दू और मुसलमानों को एक सूत्र में पिरोने का सफल प्रयास किया है।

स्वप्नभंग नाटक में प्रेमीजी ने हिन्दू और मुसलमानों में साम्प्रदायिक भावना को समाप्त करने की प्रार्थना की है। इस विषय में जहाँआरा अपने पिता शाहजहाँ से कहती है कि जो व्यक्ति हिन्दुस्तान के टुकड़े करना चाहता है उसका [illegible] है। यह भाई-भाई का झगड़ा नहीं है, यह है राष्ट्रीयता और साम्प्रदायिकता

१ हरिकृष्ण प्रेमी : प्रतिशोध पृ० १०१
२ वही पृ० ११०
३ हरिकृष्ण प्रेमी : [illegible] पृ० ३८-३९
४ वही पृ० ३ ३

का संघर्ष।'[1] दारा भी अपने पिता शाहजहां से कहता है कि मैं औरंगजेब को राज्य देने को तैयार हूँ परन्तु साम्प्रदायिकता को बढ़ावा नहीं देने दूँगा। वह कहता है— स्वार्थ के लिए हिन्दुओं और मुसलमानों के दिल में वह जहर न भरो जो फिर किसी के लिए भी दूर न हो सके। तुम्हें तख्ते-ताऊस चाहिए, उसे तुम खुशी से ले लो। लेकिन बूढ़े बाप को सताकर मनुष्यता को कलंकित न करो। हिन्दुस्तान को हिन्दू और मुसलमान दोनों की माँ रहने दो। उसे साम्प्रदायिकता की आग में न झुलसाओ।[2] इस प्रकार प्रेमीजी ने भारत के विभाजन की समस्या पर असन्तोष व्यक्त किया है और साम्प्रदायिक भावना को न फैलाने का अनुरोध किया है।

वृन्दावनलाल वर्मा ने धीरे धीरे नाटक में हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिक भावना को समाप्त करने का प्रयत्न किया है। एक सभा में नौजवान देहाती मुस्लिम कहता है— हिन्दू मुसलमानों को लड़ाने भिड़ाने वाले स्वार्थी हिन्दू और मुसलमान सब धीरे धीरे मरे जाते या बेकार हुए जाते हैं। मादरे हिन्द की इज्जत बनाए रखने के लिए हम नौजवान मुसलमान उठ रहे हैं। इत्मीनान रखिए।"[3] इस प्रकार कुछ साहसी हिन्दू तथा मुसलमानों ने एकता की भावना पर बल दिया है।

डा० दशरथ ओझा ने अपने नाटक 'स्वतन्त्र भारत' में बिखरी हुई शक्तियों को एक सूत्र में पिरोने का प्रयत्न किया है। इस समय महात्मा गांधी भी एकता का सन्देश दे रहे थे। इस नाटक से ऐसा लगता है कि नाटककार पर गांधीजी का प्रभाव पड़ा है और उनके व्यक्तित्व को नाटक में अंकित करने का प्रयास किया गया है। हूणों ने हमारे भारत पर आक्रमण किया है। उसका मुकाबला करने के लिए मगध सम्राट् बालादित्य वासुरात से कहते हैं—'हमारा मतभेद परस्पर का वैमनस्य द्वेष की दुर्भावना आदि सब दुर्गुण मिलकर हम एक दूसरे से पृथक करके निर्बल बना देते हैं। किन्तु सौभाग्य से देश में एक अद्भुत व्यक्ति ने जन्म लिया है। आशा है वह समस्त देश को एकता के सूत्र में बांध देगा और बिखरी शक्तियों को सकलित कर देगा।'[4] डा० ओझा ने वर्तमान नाटक में गांधीजी की ओर संकेत किया है कि बिखरी शक्तियों को वे ही एक सूत्र में बाँध सकते हैं।

सेठ गोविन्ददास ने अपने नाटक 'शशिगुप्त' में कहा है कि यदि भारत के राजा एक हो जायें तो समस्त भारत में एकता स्थापित हो सकती है और यवनों को देश से बाहर निकाला जा सकता है अर्थात् अंग्रेजों को देश से बाहर निकाला जा सकता है। इसी भावना को इस नाटक में चित्रित किया गया है। चाणक्य शशिगुप्त से कहते हैं—"भारत के समस्त नरपतिगण तथा गणतन्त्र यदि एक हो जायें तो इसके तेज के सम्मुख यवन ! आह ! एक यवन ही क्या यदि संसार के समस्त राष्ट्र

---

१ हरिकृष्ण प्रेमी स्वप्नभंग पृ० ४३
२ वही पृ० ८३
३ वृन्दावनलाल वर्मा धीरे धीरे पृ० ५
४ डॉ दशरथ ओझा स्वतन्त्र भारत पृ० ६३

भी इस पर आक्रमण करें तो उनकी वही दशा होगी जो चमकते हुए दीप पर पतंगों की, जो प्रज्वलित दव पर रिमझिम बरसने वाली वर्षा की, जो जागृत ज्वालामुखी पर ओलों की।'[1] इस प्रकार इस युग के नाटककारों ने अपने नाटकों में ऐक्य भावना पर विशेष बल दिया है।

(घ) शोषण

पिछले युग की भाँति इस युग में भी गरीबों का शोषण होता रहा। गरीब किसान जमींदारों और साहूकारों से रुपया उधार लेते थे। रुपया समय पर न मिलने पर वे उनके खेतों की उपज को अधिकारपूर्वक अपने घरों में ले आते थे। इतना ही नहीं रुपया न मिलने पर गरीब किसानों की बेटियों से विवाह करने की योजना बनाते थे, अनधिकार चेष्टा में मजदूरों से अधिक समय तक काम करवाते थे। इस शोषण को इस युग के नाटककारों ने देखा और उनसे यह सहा न गया। परिणाम स्वरूप उन्होंने इस शोषण को अपने नाटकों में चित्रित किया।

सेठ गोविन्ददास ने 'गरीबी या अमीरी' नाटक में इस शोषण को चित्रित करने का प्रयास किया है। एक भारतीय व्यापारी लक्ष्मीदास दक्षिण अफ्रीका में व्यापार के लिए जाता है। भारतीय मजदूर उसके पास काम कर रहे हैं। जब मजदूर अपने बच्चों को दूध पिलाने के लिए थोड़ी देर का अवकाश माँगते हैं तो स्वयं लक्ष्मीदास तथा उसका मेट उन पर अत्याचार करते हैं और उनकी स्त्रियों को बुरी तरह पीटते हैं तथा गालियाँ देते हैं। मजदूर काम से थक जाने के पश्चात् आराम करने के लिए अवकाश माँगते हैं परन्तु मेट कहता है कि सारी रात काम करना होगा। 'तुम शैतानों की छुट्टियों की इतनी ख्वाहिश दफ्तर में अब तीन दिन और तीन रात छुट्टी न दूँगा। चाँदनी रात जो है।'[2] इस तरह से गरीबों का शोषण होता है और उनको समय पर अवकाश भी नहीं मिलता।

पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र ने 'अन्नदाता माधव महाराज महान्' नाटक में साहूकारों के शोषण की एक झलक दिखायी है। साहूकार एक बार कुछ रुपये देकर उन पर बहुत बड़ा सूद वसूल करते हैं। इस सूद से घर की आर्थिक स्थिति बहुत बिगड़ जाती है। इस नाटक में रमसूरा गयादीन से कहता है कि लाला सताता है क्या किया जाय। लाला रोज दो-दो दस बार आते हैं। वह आगे कहती है— 'ग्यारह सौ और डेढ़ पाँच सौ हैं—कुल चौबीस रुपये पानदान के तबके तो सूद में गोविन्द नगर जी के हवाले होते हैं।'[3] इस चित्रण से पता चलता है कि उस समय एक गृहस्वामी की आमदनी कितना भाग जाता था और वह किस तरह से कर्ज में

---

१ सेठ गोविन्ददास, शशिगुप्त, पृ० ३२-३३

२ सेठ गोविन्ददास, गरीबी या अमीरी, पृ० १७

३ पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, अन्नदाता माधव महाराज महान्, पृ० ११

फँसा होना था। चौबीस रुपया म स तरह रुपये तो सूद के निकल जात थ और घर का खर्चा भी किस प्रकार चलता होगा इस नाटक म अन्दाजा लगाया जा सकता है।

इस नाटक म शोषण का एक और रूप दिखाया गया है। उस युग क पटवारी जमींदारा के कहने के अनुसार ही काय करत थ। य पटवारी जब किसी की जमीन लेनी हो तो बडे गज स जमीन नापत थे और यदि देनी हो ता छोट गज से नापते थ। इस प्रकार इनके पास दो प्रकार क नापन के गज होत थ और य रजिस्टर आदि भी नही रखते थ। इस नाटक मे दामोदर पटवारी है। वह भी गरीबा की भूमि का अधिक मात्रा म लेता है और दूसरा के खेता का कम कर देता ह। एक गँजेडी माधव महाराज स उसकी शिकायत करता है कि दामोदर क लटठ की जाँच हो। जमींदार की तरफ से नापकर इसने मेर खेत को चौथाई कर दिया है।[1] इस तरह जमीदार किसाना का शोषण करते थे।

वृन्दावनलाल वर्मा न अपने नाटक धीरे धीरे म गरीबा के शोषण का चित्रण किया है। इस नाटक मे एक जगल को साफ किया जा रहा है और गरीब लोग उसम काम कर रहे हैं परन्तु कुछ गरीब उसम स थोडी सी लकडी काट ल जाते हैं। इस पर राजा का कारिंदा उन गरीबों को पीटता है और अनेक प्रकार की गालियाँ देता है। एक राष्ट्रप्रेमी नेता सगुनचन्द वहाँ पर आ जाता है और एक गरीब व्यक्ति उनसे कारिंदे की शिकायत करता है कि राजा क मनेजर साहब यहाँ बठ हैं। इनसे पूछिए कि एक एक पूला घास और एक एक सूखी लकडी क लिए इन्होने कितन गरीबा को स्त्रिया तक को कितनी बार जानवरा की तरह पीटा है।[2] इस प्रकार इस नाटक स स्पष्ट हो जाता है कि गरीब व्यक्तियो को किस प्रकार पीटा जाता था।

राधेश्याम कथावाचक ने महर्षि वाल्मीकि' म किसान क शोषण की समस्या को चित्रित किया है। क्षेत्रपाल न क्रूरसन महाजन स तीन सौ रुपय उधार लिये हैं परन्तु महाजन इन रुपया के बदले म क्षेत्रपाल की कन्या शान्ता स विवाह करना चाहता है। क्षेत्रपाल गरीबी को धिक्कारता हुआ अपनी गामती स कहता ह— हाय भारत के किसान तू क्या किसान हो कर इस देश म जन्मा है ? अकाल की मार स खेत म नाज नही और महाजन के सूद की मार स शरीर म खून नहीं।[3] इसस पता चलता है कि सूद न दन पर किसाना की पिटाइ भी होती थी। क्रूरसन क्षेत्रपाल म शान्ता के विवाह की बात करता है।

क्रूरसन—तुम अपनी शान्ता का विवाह हमार साथ कर दो।

---

१ पाण्डेय बचन शर्मा उग्र अन्नदाता माधव महाराज महान प ३३
२ वृन्दावनलाल वर्मा धीरे धीरे प० ४६
राधेश्याम कथावाचक महर्षि वाल्मीकि प १६

क्षेत्रपाल—तुम्हारे साथ ? एक बूढ़े महाजन के साथ ? रुपये के बदले में अपनी कन्या बेच डालूँ ? मनुष्यता की तराजू में कर्ज के बाटों से तोल कर, गाढ़ी कमाई का सौदा कर दूँ ?[1]

क्षेत्रपाल इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर देता है और क्रूरमल इस पर बिगड़ कर उसकी ओर संकेत करके अपने मुनीम से कहता है— समझ गया, तुम विवाह नहीं करना चाहते, देखना चाहते हो। मुनीजी कल ही इस पर नालिश करो इसके सामान को कुर्की कराओ, इसे सब तरह नाको चने चबवाओ। मुझे भी देखना है कि यह कहाँ तक अपनी मूर्खता पर डटा रहेगा। मैं क्रूरमल हूँ।[2] इस प्रकार वह क्षेत्रपाल को तंग करता है परन्तु उसे सफलता नहीं मिलती।

क्रूरमल ने गाँव के दूसरे किसानों को भी इसी प्रकार सताया है। परेशान हो कर गाँव के किसान महाराज से शिकायत करते हैं कि क्रूरमल ने उनसे तबाह किया है। वे कहते हैं कि प्रतिवर्ष के दुष्काल ने हम किसानों का जीते जी मार दिया है। इसने अत्याचार किया है। इसने हम से बेगार ली, हमारी नंगी पीठों को कोड़ों से उधेड़ा। हमारे झोपड़ों को आग लगाई, हमारी बहू-बेटियों को सताया। माता कहती है कि इसने मेरा अपहरण कराया।[3] इस प्रकार महाजन लोग गरीब किसानों की बहू-बेटियों की इज्जत बिगाड़ा करते थे।

राधेश्याम कथावाचक ने सती पार्वती नाटक में भी इसी प्रकार के शोषण की ओर संकेत किया है। इस नाटक में धनपति साहूकार भी गरीबों का खून चूस चूस कर कोठी बनाता है धर्मशालाएँ स्थापित करवाता है। इस विषय में शंकर जी नारद से कह रहे हैं कि किस प्रकार इस साहूकार ने गरीबों को कष्ट दिए हैं। शंकर जी नारद से इसकी बीती हुई कहानी कहते हैं— यह धनपति साहूकार अपने जीवन में बड़ा नरपिशाच था। कितनी ही विधवाओं और कितने ही अनाथों का खून चूस चूस कर कोठीवाला बना था। अपने लिए हमेशा ऊँचा और दूसरों को नीचा समझता था। मंदिर इसने स्थापित किए पर किसलिए ? जगत् में सम्मान बढ़ाने के लिए। धर्मशालाएँ इसने बनवाईं पर किस लिए ? राजद्वार में धर्मात्मा की पदवी पाने के लिए।[4] महाजन लोग गरीबों का खून चूस चूस कर बड़े-बड़े मंदिर और धर्मशालाएँ बनवाया करते थे ताकि राजा लोग उनसे खुश होकर पदवी प्रदान कर सकें। कैसी विचित्र बात है कि एक ओर तो गरीबों को सताते हैं और दूसरी तरफ मंदिर और धर्मशालाएँ स्थापित करवाते हैं ताकि इज्जत भी बढ़े और पदवी भी मिले। इस प्रकार की भावना आज के युग में भी देखी जा सकती है।

---

१ राधेश्याम कथावाचक महर्षि वाल्मीकि पृ० २१
२ वही पृ० २२
३ वही पृ० १२८–१२९
४ राधेश्याम कथावाचक सती पार्वती पृ० ६४

(ङ) पुलिस का अत्याचार

विवेच्य युग मे पुलिस ब्रिटिश शासन व्यवस्था का प्रतीक है। उसकी काय प्रणाली दो दिशाओं म होती है। सरकार और जनता के प्रति पुलिस के कत्तव्य निश्चित होते हैं। सरकार पुलिस द्वारा ही दमन नीति अपनाती है और जनता को भी व्यावहारिक रूप से सरकार से सघष करने के लिए पुलिस स ही लडना पडता है। पुलिस विभाग का दूसरा कत्तव्य यह है कि अपराध वृत्ति का दमन और जनता की सुरक्षा करे परन्तु मनोवैज्ञानिक धरातल पर ये दोनो ही भिन्न मानसिक प्रवृत्तियाँ हैं। इस प्रकार पुलिस विभाग का सम्बन्ध एक ओर सरकार से तथा दूसरी ओर जनता स होता है। एक ओर पुलिस विभाग अपराधीसमूह से सम्बन्ध रखता है और दूसरी ओर चरित्रवान जनता स। अंग्रेजी सरकार ने अपने राज्य को सुरक्षित रखने के लिए पुलिस द्वारा जनता का दमन करना आवश्यक समझा और वह क्रूरता तथा अत्याचार का प्रतीक बनती गयी। हिन्दी के नाटककारो ने पुलिस को जनता पर अत्याचार करते हुए देखा और उन्होंने अपने नाटको म इस अत्याचार का चित्रण किया।

हरिकृष्ण प्रेमी ने 'बन्धन नाटक म यह दिखाया है कि पुलिस वास्तविक अपराधी की खोज नही करती बल्कि निरपराध व्यक्ति को कद करती है। मालती अपने घर से कुछ जेवर चुराकर सरला को दे देती है ताकि वह उनको बच कर मजदूरो की सेवा कर सके। सरला का भाई मोहन उन जेवरो को रायबहादुर खजानचीराम को वापस देने गया तो उसने पुलिस को बुलवाकर मोहन को जेल भिजवा दिया। पुलिस न वास्तविक अपराधी की खोज न करके मोहन को आठ मास की सजा जा दी। इस चित्रण स प्रकट होता है कि पुलिस वास्तविक अपराधी को सजा नही देती बल्कि निरपराध व्यक्ति को कानूनी अपराधी घोषित करती है और कानून की रक्षा करती है।

मजदूर अपनी मांगो को पूरा न होते देखकर हडताल कर देते हैं और विरोध म एक जुलूस का आयोजन करते हैं परन्तु पुलिस उन पर गोली चला देती है। इस घटना की सूचना एक मजदूर सरला को देता है और उसको सारी परिस्थिति समझाता हुआ कहता है—'बहिनजी आज हमारी सारी कुरबानी पर पानी फिर जायेगा। हमारे जुलूस पर पुलिस ने गोली चला दी है। एक मजदूर मर गया है। कई घायल हुए हैं। मजदूर उत्तेजना म न जाने क्या कर डालें।'[1] इस प्रकार पुलिस निहत्थे जुलूस पर गोली चलाकर अपनी दमन-नीति का परिचय देती है।

पृथ्वीनाथ शर्मा ने अपने अपराधी नाटक म यह दिखाया है कि पुलिस वास्तविक चोर को पकडने में असमर्थ है और वह कानून की रक्षा के लिए किसी को भी पकड लेती है। इस नाटक म मातादीन चोरी कर के भाग जाता है और वह भागता हुआ चोरी की घडी को माग मे खडे अशोककुमार की जेब म डाल

१ हरिकृष्ण प्रेमी बन्धन प ९६

(च) उत्कोच की समस्या

यदि कोई भी व्यक्ति पुलिस से सहायता चाहता था तो वह पुलिस को रिश्वत देता था। इसका चित्रण वृन्दावनलाल वर्मा के नाटक 'धीरे धीरे' में देख सकते हैं। चन्दनलाल गरीब किसानों को तंग करने के लिए थानेदार को दो सौ रुपये रिश्वत में देता है। चन्दनलाल थानेदार से कहता है कि आपके मिठाई खाने के दो सौ रुपये। स्वीकार कीजिए, और इन भूतों की मसखरी मरम्मत कर दीजिए।[1] इस नाटक के द्वारा वर्मा जी यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि किसानों को पिटवाने के लिए भी पुलिस को रिश्वत देनी पड़ती थी।

उपेन्द्रनाथ अश्क ने 'छठा बेटा' नाटक में रिश्वत की समस्या को नए दूसरे रूप में चित्रित किया है। इस नाटक में बताया गया है कि रिश्वत से बहुत काम निकलते हैं। इस नाटक में दीनदयाल जी डॉ० हंसराज से मशीन खरिदवाने के लिए आग्रह करते हैं परन्तु डा० हंसराज उनकी बातों पर संदेह करके उनका विरोध करते हुए कमला से कहते हैं—बचन न देते तो ये लोग पिताजी को भड़का न देते। रिश्वत रिश्वत रिश्वत। आज की दुनिया में जितने काम इससे निकलते हैं उतने किसी से नहीं निकलते। फिर इस रिश्वत का रूप रुपया भी हो सकता है भेंट पुरस्कार भी, प्रशंसा भी खुशामद भी और लूट का हिस्सा भी—ये दोनों चाचा साहबान आसानी से जितना धन लूट सकते थे लूट चुके हैं और लूटने के लिए इन्हें बहाना चाहिए। वह बहाना मैंने उपस्थित करके इन्हें अपने और दूसरे भाइयों के मामले में चुप रहने की रिश्वत दी। दीनदयाल ने समझा हरि उसकी वह पुरानी मशीन खरीद लेगा, जिसे आज आठ वर्ष से सारे लाहौर में किसी ने नहीं लिया और हंसराज माल रोड पर दुकान खोलेगा तो उसे सामान सप्लाई करने के बदले गहरी रकम हाथ आएगी और चाचा चाननराम ने सोचा कि उसका नालायक लड़का सज्जन बन जायेगा—रिश्वत। आज उन्नति के शिखर पर चढ़ने के लिए इससे अच्छा कोई साधन नहीं।[2] अश्क जी ने इस नाटक में यह दिखाने का प्रयास किया है कि उन्नति के मार्ग पर जाने के लिए रिश्वत देनी ही पड़ती है परन्तु सामाजिक रूप से यह धारणा गलत है, हमें इस भावना को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए। यह उल्लेखनीय है कि प्रसाद युग में भी रिश्वत की समस्या थी और विवेच्य युग में भी इसका चित्रण मिलता है।

(छ) सरकार में पूंजीपतियों का आधिपत्य

अंग्रेज लोग पूंजीपतियों को अपने साथ मिलाए रहते थे इस तथ्य को पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है। यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि सरकार में पूंजीपतियों

१ वृन्दावनलाल वर्मा धीरे धीरे पृ ६१
२ उपेन्द्रनाथ अश्क छठा बेटा पृ० ११०

का हाथ रहता है और सरकार उनके अधिकारों की रक्षा का ध्यान रखकर ही कानून बनाती है। गोविन्ददास ने सेवा-पथ नाटक में इसी विषय को चित्रित किया है। देश में सर्वत्र पूँजीवाद का बोलबाला है क्योंकि अधिकारी और सरकार भी उन्हीं के पक्ष में रहती हैं। इस नाटक में शक्तिपालसिंह मिनिस्टर है, यह पूँजीपतियों के अधिकारों की रक्षा करता है और बात करता है समाजवाद की तथा स्वयं तीन हजार रुपये वेतन लेता है। कौंसिल में दो बिल पेश किए गए थे, एक तो किसानों की दशा सुधारने के लिए और दूसरा कारखानों में काम करनेवाले बच्चों के काम करने के घण्टे कम करने के लिए परन्तु वे दोनों बिल पूँजीपतियों ने अस्वीकृत करवा दिए क्योंकि इससे उनको हानि पहुँचती थी। दीनानाथ शक्तिपाल से इसी विषय में चर्चा करते रहे हैं कि सरकार में धनवान लोगों का ही आधिपत्य है। दीनानाथ उनसे कहते हैं कि अब आज देश की जनता पर इन्हीं लोगों का प्रभाव है जो साम्यवादी नहीं हैं। जमींदार सेठ साहूकार इन्हीं सबका लोगों पर प्रभाव है और साम्यवाद इन सबके विरुद्ध है। मिनिस्टर लोग सारी रकम अपने ऊपर खर्च कर देते थे। इसकी ओर संकेत करता हुआ दीनानाथ शक्तिपाल से कहता है— आज जब देश के अधिकांश लोगों को यथेष्ट भोजन और वस्त्र नहीं मिल रहे हैं तब हममें से किसी को यह अधिकार नहीं कि हम जनता की इतनी बड़ी रकम अपने पर खर्च करें और आपके सिद्धान्तों के अनुसार भी तो यह एक प्रकार से पूँजीवाद का समर्थन है।[1] इस प्रकार इस नाटक में यह प्रकट होता है कि वास्तव में सरकार पूँजीपतियों के हाथों सजती थी।

(ज) स्वार्थ-भावना

इन विश्वयुद्धों को देखकर आज मानव त्रस्त हो उठा है। वह सोचता है कि ये विश्वयुद्ध क्यों होते हैं? इनके पीछे कौन-सी भावना छिपी रहती है? चिन्तन एवं मनन के पश्चात् पता चलता है कि इनके पीछे एक ही भावना है और वह है स्वार्थ की भावना। अपने अपने राज्य विस्तार के स्वार्थ में एक देश दूसरे देश पर आक्रमण करता है और धीरे धीरे दूसरे देश भी इसमें सम्मिलित हो जाते हैं। इसका प्रभाव इस युग के नाटककारों पर भी पड़ा और उन्होंने इसका चित्रण बहुत ही विशद रूप में किया है। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने रेवा नाटक में इसका यथार्थ रूप में चित्रण किया है। यशोधरा इस विषय में स्वयं से कह रही है कि इस विश्व में जहाँ सभी जगह अहंकार, दम्भ, छल और प्रपंचन का आधिपत्य है। सभी देश, सभी राष्ट्र, सभी जातियाँ एवं दूसरे को हड़प कर जाने का प्रयत्न कर रहे हैं। सभी अपने को श्रेष्ठ मानते हैं और दूसरों को दलन करने के योग्य।[2] इस प्रकार यहाँ भी स्वार्थ

---

१ सेठ गोविन्ददास सेवापथ पृ० ५५
२ वही पृ० ५८
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार रेवा पृ० ११

की भावना काम कर रही है।

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने 'अशोक' नाटक में भी इसी भावना को अंकित किया है। इस नाटक में शीला के पति सुमन की हत्या चण्डगिरि के द्वारा कर दी जाती है। इस आघात से वह बहुत अधिक दुखी है और अशोक से प्रतिशोध लेना चाहती है। इस पर आचार्य उपगुप्त उसको समझाते हैं—'इस विश्व में सभी जगह छल कपट हत्या और अपहरण हो रहा है। प्रकृति अपने विधान द्वारा प्राणिमात्र को अपहरण का सन्देश दे रही है। यहाँ बलशाली निर्बल को खा जाता है बड़े जीवों का आहार छोटे जीव हैं। बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है। साँप और छिपकलियाँ कीड़े-पतंगों को खाकर जिन्दा रहते हैं। जहाँ तक जिसका बस चलता है, अपहरण करता है। प्रकृति के इस विधान से मनुष्य ने भी अपहरण का पाठ पढ़ लिया है। हमारे मनुष्य-समाज में भी धनी गरीब को चूसता है। राजा प्रजा के बल पर शक्तिशाली बनता है, जमींदार किसानों के अधिकार का अपहरण करता है, विद्वान् मूर्खों को अपना शिकार बनाता है। अपहरण के इस विश्वव्यापी षड्यन्त्र में तुम भी क्या एक पुर्जा बन कर रह जाना चाहती हो शीला ?'[1] नाटककार इन शब्दों के द्वारा यह बताना चाहता है कि आज बड़े-बड़े राष्ट्र अपनी संहारक शक्ति को बढ़ाने में लगे हुए हैं और छोटे छोटे देशों को हड़प जाना चाहते हैं। डा० दशरथ ओझा अपने नाटक 'स्वतन्त्र भारत' में इस स्वार्थ की भावना और युद्ध की ओर संकेत करते हैं। इस नाटक में बालादित्य वासुगन से युद्ध के विषय में कहते हैं कि मैं युद्ध को अब भी मानवता का अभिशाप मानता हूँ किन्तु सोच विचार के पश्चात् इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि जब तक संसार की समस्त जातियाँ सम्पूर्ण राष्ट्र एकमत होकर युद्ध को बन्द करने की चेष्टा नहीं करेंगे तब तक युद्ध की अग्नि समय समय पर प्रज्ज्वलित होती रहेगी।'[2] डा० ओझा का मत है कि मनुष्य का स्वार्थ देश का स्वार्थ और राष्ट्र का स्वार्थ जब तक आपस में समझौता नहीं करते, तब तक युद्ध होते रहेंगे।

सेठ गोविन्ददास ने इस स्वार्थ की भावना को दूसरे रूप से चित्रित किया है। आजकल की सरकार में तथा शासन में बड़े-बड़े अधिकारी अपने सम्बन्धियों और मित्रों को सेवा में रखने के पक्ष में हैं। यह स्वार्थ की भावना दिन प्रति दिन बल पकड़ती जा रही है। इसी भावना को सेठ जी ने 'सन्तोष कहाँ' नाटक में व्यक्त किया है। नीतिज्ञ मनसाराम में अपने शासन में सख्ती करने के लिए कहता है कि 'हमारे असेम्बली के मेम्बरान निःस्वार्थ और सतर्क होते तो इन लोगों के द्वारा जिले के अफसरों पर कन्ट्रोल रखने की कोशिश की जा सकती थी पर इनमें भी अधिकांश को अपनी अपनी पड़ी है। कोई म्युनिसिपलिटी का प्रेसीडेण्ट होना चाहता है तो कोई अपनी कौंसिल का चेयरमैन। कोई अपने रिश्तेदार, कोई अपने मित्र को

१ चन्द्रगुप्त विद्यालंकार अशोक पृ० ९६ ९७

२ डॉ० दशरथ ओझा स्वतन्त्र भारत पृ० १५८

इन स्थानीय संस्थाओं के नामजद सदस्य बनवा देने के लिए विक्रमसेन रहते हैं तो कोई पुलिस अधीक्षक आगीक्षपुरी के पीछे घूमते हैं। किसी को अपने भाई भतीजे को नौकरी दिलाने की पड़ी रहती है, तो किसी को अन्य लोगों की छोटी छोटी बातों की।[1] इस नाटक में सरकार और शासन के स्वार्थ की ओर संकेत किया गया है। इस नाटक के चित्रण से प्रकट होता है कि सर्वत्र स्वार्थ की भावना व्याप्त है।

(ज) शरणार्थियों की समस्या

१५ अगस्त १९४७ ई० को भारत स्वतन्त्र हुआ और भारत के दो टुकड़े होकर पाकिस्तान का निर्माण हुआ। अंग्रेजों ने स्वतन्त्रता आंदोलन में पहले ही यही फूट डाल रखी थी और मुसलमानों ने पाकिस्तान की माँग रखी थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु गांधीजी को विभाजन की बात माननी पड़ी और विभाजन हुआ। भारत के कुछ मुसलमान पाकिस्तान चले गए और कुछ हिन्दू पाकिस्तान के भागों से भारत आए। जो व्यक्ति भारत आए थे उनको शरणार्थी कहा गया और उनको आवश्यकतानुसार सुविधाएँ दी गईं। डॉ० दशरथ ओझा ने अपने नाटक 'स्वतन्त्र भारत' में इस आशय की पहले ही भविष्यवाणी कर दी थी कि स्वतन्त्र भारत के सामने शरणार्थियों की समस्या आएगी। नाटक के अनुसार जिस समय रूस ने भारत पर आक्रमण किया तब पश्चिमोत्तर भारत के लोग शरणार्थी बनकर पूर्व भारत की ओर आए तो पर्यटक वायुयान में कहते हैं कि पश्चिमोत्तर का हत्याकाण्ड सुनकर मन उद्विग्न हो उठता है। नगर में सहस्रों शरणार्थी आ गए हैं। उनकी करुण व्यथा हृदय को विदीर्ण कर रही है।[2] यह डॉ० ओझा जी की दूरदर्शिता का प्रमाण है कि उन्होंने अपने नाटक में शरणार्थियों की समस्या का पहले ही संकेत दे दिया था और भारत को इस समस्या का सामना करना पड़ा।

नाटकों में अभिव्यक्त सामाजिक चेतना का स्वरूप

(क) वर्ण व्यवस्था

प्राचीनकाल में वर्ण भावना गुण और कर्म पर निर्भर करती थी परन्तु कालान्तर में इसका जन्म का आधार ले लिया गया। जाति-पाँति की भावना को प्रसाद युग में अधिक माना गया परन्तु इस युग में इस भावना को कम महत्त्व दिया गया। दिन प्रति दिन जाति-पाँति की भावना का नाश हो रहा है और विवाह खान-पान इत्यादि अन्तर्जातीय भावना को लेकर चल रहे हैं। राधेश्याम कथावाचक ने 'सती पार्वती' नाटक में जाति-पाँति की समस्या को उठाया है। सती शंकर से विवाह कर लेती है परन्तु उनके पिता दक्ष इस विवाह से नाराज हैं। शंकर

---

१ सेठ गोविन्ददास : सन्तोष कहाँ, पृ० ६१

२ डॉ० दशरथ ओझा : स्वतन्त्र भारत, पृ० १२

ने बिना बुलाए आ जाने पर नारद दक्ष से कहते हैं कि जामाता से विरोध बढ़ाना ठीक नहीं। इस पर दक्ष कहते हैं—"कैसा जामाता ? किस का जामाता ? यह तो सती की मूर्खता थी कि उसने राजकन्या होकर एक भिक्षुक को वरमाला पहना दी, सभ्य समाज में मेरी नाक कटवा दी। मैं तो सती को भी उसी दिन से छोड़ चुका हूँ।"[1] इस प्रकार दक्ष अपने आपको ऊँची जाति का मानते हैं और शंकर को भिक्षुक और नीची जाति का। अतः वे अपनी कन्या को भी छोड़ देते हैं।

उदयशंकर भट्ट ने 'मुक्तिदूत' नाटक में जाति की समस्या को उठाया है। इस नाटक में एक शूद्र बैला से अपनी प्राण रक्षा करने के लिए एक ब्राह्मण के घर में घुस आता है। इस पर ब्राह्मण ने उस शूद्र पर मुकदमा चला दिया कि इसने मेरा घर अपवित्र किया है। इस पर कोर्ट ने उस शूद्र से कहा कि वह ब्राह्मण को पन्द्रह स्वर्ण कार्षापण दे और न देने पर दो वर्ष तक उसका भृत्य होकर रहे। इस चित्रण में यह प्रकट होता है कि इस युग में जाति-पाँति की समस्या थी परन्तु इसकी ओर शिक्षित लोगों का ध्यान कम जाता था।

हरिकृष्ण प्रेमी ने 'शीशदान' नाटक में जाति-व्यवस्था को सर्वथा समाप्त करने का प्रयास किया है। इस नाटक में जाति का विरोध करते हुए तात्या टोपे अजीजन से कहता है— मैं केवल एक जाति को मानता हूँ और वह है मनुष्य। तुम्हें इस बात में सन्देह नहीं होना चाहिए कि तुम मनुष्य हो। अपने हाथ से शरबत देने में संकोच क्यों हुआ तुम्हें ? जाति प्रथा और छूत छात के प्रेतों ने भारत का सर्वस्व तो छीन लिया है। भारत को स्वाधीन करने की आकांक्षा में सर पर कफन बाँध कर निकलनेवाले सैनिक क्या इस प्रकार बन्धनों में जकड़े रहना स्वीकार करेंगे ?"[2] प्रेमी जी ने इस बात की ओर संकेत किया है कि अब भारत में जाति व्यवस्था अधिक देर नहीं रह सकती क्योंकि सैनिकों के लिए सब जातियाँ एक समान हैं।

डा० दशरथ ओझा ने 'स्वतन्त्र भारत' में वर्ण-व्यवस्था को हानिकारक माना है। उनका मत है कि जाति-व्यवस्था में अनेक जातियाँ बन गई हैं और सब जातियाँ अपने अपने स्वार्थों की रक्षा करती हैं जिससे विदेशी भारत में आकर शासन करते हैं और लाभ उठाते हैं। हूणों ने देश पर आक्रमण कर दिया परन्तु इस युद्ध में सेठ साहूकारों ने अपना धन नहीं दिया और ब्राह्मणों ने इस में कोई भाग नहीं लिया। एक प्रतिनिधि यशोधर्मन से वर्ण व्यवस्था के विषय में कहता है— यह सारा दोष वर्ण व्यवस्था का है। वर्णाश्रम धर्म ने ऊँच नीच छोटे बड़े, स्पृश्य अस्पृश्य का ऐसा जाल बिछा दिया कि हिन्दू समाज जर्जर हो गया। मुट्ठी भर विदेशी आते हैं और सारा देश जीतते चले जाते हैं। वे हमारे देश में आग लगाते हैं किन्तु हम आपस में ही लड़ते हैं।[3]

---

१ राधेश्याम कथावाचक सती पार्वती पृ० १२३
२ हरिकृष्ण प्रेमी शीशदान पृ० २०-२१
३ डॉ० दशरथ ओझा स्वतन्त्र भारत पृ० १०७

के बिना बुलाए आ जाने पर नारद दक्ष से कहते हैं कि जामाता से विरोध बढ़ाना ठीक नहीं। इस पर दक्ष कहते हैं—"कैसा जामाता? किस का जामाता? यह तो सती की मूर्खता थी कि उसने राजकन्या होकर एक भिक्षुक को वरमाला पहना दी, सभ्य समाज में मेरी नाक कटवा दी। मैं तो सती को भी उसी दिन से छोड़ चुका हूँ।"[1] इस प्रकार दक्ष अपने आपको ऊँची जाति का मानते हैं और शंकर को भिक्षुक और नीची जाति का। अतः वे अपनी कन्या को भी छोड़ देते हैं।

उदयशंकर भट्ट ने 'मुक्तिदूत नाटक' में जाति की समस्या को उठाया है। इस नाटक में एक शूद्र बैला से अपनी प्राण रक्षा करने के लिए एक ब्राह्मण के घर में घुस आता है। इस पर ब्राह्मण ने उस शूद्र पर मुकदमा चला दिया कि इसने मेरा घर अपवित्र किया है। इस पर कोर्ट ने उस शूद्र से कहा कि वह ब्राह्मण को पन्द्रह स्वर्ण कार्षापण दे और न देने पर दो वर्ष तक उसका भृत्य हो कर रहे। इस चित्रण से यह प्रकट होता है कि इस युग में जाति पाँति की समस्या थी परन्तु इसकी ओर शिक्षित लोगों का ध्यान कम जाता था।

हरिकृष्ण प्रेमी ने 'शीशदान' नाटक में जाति-व्यवस्था को सर्वथा समाप्त करने का प्रयास किया है। इस नाटक में जाति का विरोध करते हुए तात्या टोपे अजीजन से कहता है—"मैं केवल एक जाति को मानता हूँ और वह है मनुष्य। तुम्हें इस बात में सन्देह नहीं होना चाहिए कि तुम मनुष्य हो। अपने हाथ से शरबत देने में संकोच क्यों हुआ तुम्हें? जाति प्रथा और छूत छात के प्रेतों ने भारत का सर्वस्व तो छीन लिया है। भारत को स्वाधीन करने की आकांक्षा से सर पर कफन बाँध कर निकलनेवाले सैनिक क्या इस प्रकार बन्धनों में जकड़े रहना स्वीकार करेंगे?"[2] प्रेमी जी ने इस बात की ओर संकेत किया है कि अब भारत में जाति व्यवस्था अधिक देर नहीं रह सकती क्योंकि सैनिकों के लिए सब जातियाँ एक समान हैं।

डा० दशरथ ओझा ने स्वतन्त्र भारत में वर्ण व्यवस्था को हानिकारक माना है। उनका मत है कि जाति-व्यवस्था से अनेक जातियाँ बन गई हैं और सब जातियाँ अपने अपने स्वार्थों की रक्षा करती हैं जिससे विदेशी भारत में आकर शासन करते हैं और लाभ उठाते हैं। हूणों ने देश पर आक्रमण कर दिया परन्तु इस युद्ध में सेठ साहूकारों ने अपना धन नहीं दिया और ब्राह्मणों ने इस में कोई भाग नहीं लिया। एक प्रतिनिधि यशोधर्मन से वर्ण व्यवस्था के विषय में कहता है—"यह सारा दोष वर्ण व्यवस्था का है। वर्णाश्रम धर्म ने ऊँच नीच छोटे-बड़े स्पृश्य अस्पृश्य का ऐसा जाल बिछा दिया कि हिन्दू समाज जर्जर हो गया। मुट्ठी भर विदेशी आते हैं और सारा देश जीतते चले जाते हैं। वे हमारे देश में आगे बढ़ते हैं किन्तु हम आपस में ही लड़ते हैं।"[3]

---

१ राधेश्याम कथावाचक सती पार्वती पृ० १२३
२ हरिकृष्ण प्रेमी शीशदान पृ २०-२१
३ डॉ दशरथ ओझा स्वतन्त्र भारत पृ १०३

डॉ० दशरथ ओझा का मत है कि समाज में असमानता की भावना भी वर्ण-व्यवस्था में पनपती है। इसका प्रतिनिधि कहता है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का भाग [illegible] करके ऊँचे वर्णवालों ने मार दिया या सर्वनाश कर दिया। कोई स्वाधीन है तो कोई नितान्त निर्धन। कोई सत्पुरुष है तो कोई सर्वथा अस्पृश्य।[1] इस प्रकार डॉ० ओझा वर्ण-व्यवस्था को समाप्त करने के पक्ष में हैं।

सेठ गोविन्ददास ने 'कर्ण' नाटक में जाति को कर्म के आधार पर माना है। [illegible] अपने पति कर्ण से कह रही है कि क्या हुआ कि आपने क्षत्रियकुल में जन्म नहीं लिया। वर्ण तो कर्म से बनता है। कौन क्षत्रिय आपके समान दानी है? किस क्षत्रिय में इतनी कृतज्ञता एवं मैत्री का ध्यान है? आपके पिता सूत अधिरथ को धन्य है। आपकी माता सूत राधा को धन्य है। आपकी पत्नी मुझे धन्य है। आपने प्रमाणित कर दिया नाथ कि संसार में जन्म का नहीं कर्म का महत्त्व है।[2] कर्ण ने अपने पराक्रम से शक्तिवान गुण प्राप्त कर लिए थे और दान देने के कारण दानवीर कहे गए थे। इसीलिए उसमें क्षत्रिय-कर्म की भावना होने के कारण उसे क्षत्रिय कहा जाता है।

सेठ गोविन्ददास ने 'कुलीनता' नाटक में भी वर्ण-व्यवस्था को कर्म पर ही आधारित माना है। विजयसिंहदेव कलचुरिया वंश का है और यदुराय गोंड वंश का। *विजयसिंहदेव की पुत्री रत्नासुन्दरी यदुराय के प्रति आकृष्ट है परन्तु राजा उसका* विवाह सम्पन्न नहीं होने देता। विजयसिंहदेव चन्द्रपीड से कहता है— 'तो यही तो सारे-का-सारा का प्रश्न है। शूद्र गोंड था अस्पृश्य के समान गोंड था। फिर कहाँ उसका वंश और कहाँ कलचुरिया का कुल।'[3] चन्द्रपीड कहता है कि कुलीन राजकुमारी का एक शूद्र को वरना सभी मर्यादाओं के बाहर की बात है। इतना ही नहीं राजा विजयसिंहदेव यदुराय को सेवावृत्ति—गढ़ का पद—धारण करने को कहता है परन्तु यदुराय इसका उत्तर बड़े शब्दों में देता है और कहता है— 'सेवावृत्ति
सेवावृत्ति ही मैंने स्वीकार की है अन्य कोई वृत्ति नहीं। पर यह सेवा है

पूर्व जिस धर्म के अनुसार जिस राज्य में प्राणदण्ड की व्यवस्था दी गई थी उसी धर्म के अनुसार राज्य में उन्हीं का यह उत्कर्ष इस बात को सिद्ध कर देता है कि संसार में कर्म मुख्य है और कुलीनता कर्म पर निर्भर रहती है।"[1] इस प्रकार सेठ जी ने अपने नाटकों में वर्ण-व्यवस्था का आधार गुण और कर्म ही माना है।

(ख) नारी-जागरण

भारतीय नारी युगों से पीड़ित थी और वह घर की सीमाओं में ही बन्दी थी परन्तु आधुनिक शिक्षा और जागृति ने उसे भी स्वतन्त्र किया और वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भाग लेने लगी। प्रसाद युग के नाटककारों ने नारी को स्वतन्त्रता प्रदान कर दी थी परन्तु इनमें स्वाभिमान की भावना इस युग में देखी गई। इस काल में आकर नारी ने अत्याचार के विरुद्ध प्रदर्शन किया और अपने अधिकारों की माँग की। इस युग के नाटककारों ने भी नारी पर अत्याचार दिखाकर उसकी उन्नति के मार्ग पर बढ़ते हुए दिखाया है।

हरिकृष्ण प्रेमी ने 'छाया' नाटक में नारी में अत्याचार के विरुद्ध आत्मसम्मान की भावना उत्पन्न की है। रजनीकांत 'हलाहल' का सम्पादक है परन्तु वह शराबी है और बाजार में जाता है। वह अपने ऐश उड़ान के लिए अपनी पत्नी ज्योत्स्ना को बाजार में जाने के लिए कहता है और ज्योत्स्ना के द्वारा एक मालदार आसामी को फँसाना चाहता है। इस बात के लिए वह अपनी पत्नी को राजी करने के लिए उससे कहता है— "अरे तुझे करना ही क्या है, एक झलक दिखाकर उसे पागल कर देना है। तुम जानती हो ज्योत्स्ना! इससे अधिक तुम्हें कुछ न करना पड़ेगा। सरदार को हम ले चलेंगे होटल। बाजार में औरतों की क्या कमी है? शराब के नशे में उसे प्रत्येक युवती ज्योत्स्ना नजर आएगी। तुम्हारे सतीत्व पर आँच भी न आएगी।"[2] इस पर ज्योत्स्ना का आत्मसम्मान जाग उठता है और वह रजनीकांत के प्रस्ताव का एकदम अस्वीकार कर देती है। इस प्रकार प्रेमीजी ने नारी पर अत्याचार करने की एक झलक दिखलाई है और नारी में जागरण की भावना का परिचय दिया है।

राधेश्याम कथावाचक ने अपने 'सती पार्वती' नाटक में आधुनिक नारी को अपने अधिकारों की रक्षा करते हुए दिखाया है और उसमें अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करने की शक्ति भी दिखायी है। सीता को रावण छलपूर्वक उठाकर ले जाता है और रावण अपने आप को शूरवीर कहता है। सीता उसके 'शूरवीर' के शब्द पर धिक्कार रही है— शूरवीर? कौन कहता है तू शूरवीर है? शूरवीर स्त्रियों पर अन्याय नहीं करते हैं। शूरवीर नारी जाति का अपमान नहीं करते हैं। जिस समाज में अबलाओं का आदर नहीं, सतियों के सतीत्व का सम्मान नहीं उस समाज, उस जाति, उस देश

१　सेठ गोविन्ददास　कुलीनता पृ० ९२६।
२　हरिकृष्ण प्रेमी　छाया पृ० २०

आचार्य चतुरसेन शास्त्री के नाटक 'छत्रसाल' में नारी ने देश के लिए बहुत काम किया है और जाति-पाँति के भेदभाव को दूर करके दूसरी जाति में विवाह किया है। कुमार दलपतिराय और औरंगजेब की पुत्री बदरुन्निसा आपस में प्रेम करते हैं। वे विवाह के सम्बन्ध में जाति-पाँति को नहीं मानते। इस विषय में प्राणनाथ प्रभु शुभकरण से कहते हैं कि "शाहजादी बदरुन्निसा और कुमार दलपतिराय का अगाध प्रेम है। बदरुन्निसा यद्यपि मुसलमान कन्या है पर उसने देश का बहुत हित किया है। दोनों के हृदय एक हैं। अतः मैं इन्हें एक करता हूँ।"[1] इस प्रकार जातीय भावना के बन्धन को तोड़कर उनका विवाह सम्पन्न होता है। इस नाटक में शास्त्री जी के दो उद्देश्य हैं, एक तो जातीय भावना समाप्त करना और दूसरे हिन्दू मुस्लिम एकता स्थापित करना। इस युग में हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिक भावना जोरों पर थी और गांधीजी उनको एकता के सूत्र में पिरोना चाहते थे। अतः साहित्यकारों ने भी इसी भावना को प्रोत्साहन दिया।

गोविन्दवल्लभ पंत ने 'सुहाग बिन्दी' नाटक में नारी पर भीषण अत्याचार करवाए हैं। कुमार एक स्कूल में अध्यापक है और अपनी पत्नी विजया से घृणा करता है। उन दोनों में रोज के झगड़े रहते हैं। कुमार उसको घर से निकाल देता है और उसकी मृत्यु का झूठा समाचार फैला देता है और दूसरा विवाह भी कर लेता है। विजया कष्ट झेलते हुए अपने पिताजी के पास पहुँचती है परन्तु वे भी उसको आश्रय नहीं देते। अन्त में विजया कुमार के पास आती है लेकिन कुमार उसे मार पीट कर पगली कहकर घर में बाहर निकाल देता है। इसके उपरान्त कुमार की दूसरी पत्नी रेवा को सब परिस्थितियाँ मालूम होने पर वह विजया को घर में आश्रय देती है। कुछ समय पश्चात् साँप के काटने से विजया की मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार पंतजी ने इस नाटक में विजया के प्रति सहानुभूति और मानवता का दृष्टिकोण अपनाया है। विजया को देखकर रेवा के मन में उसके प्रति सहानुभूति जागती है और वह इस अत्याचार को सहन न करके विजया को पूर्ण आदर-सत्कार देती है। इस प्रकार नारी में जागरण की भावना प्रदर्शित हुई है।

सेठ गोविन्ददास ने अपने नाटक 'गरीबी या अमीरी' में नारी की स्वावलम्बन की भावना को व्यक्त किया है। अचला एक अमीर व्यापारी की पुत्री है। उसका पिता दक्षिण अफ्रीका में व्यापार करता है परन्तु वह पिता की इच्छा के विरुद्ध एक निर्धन व्यक्ति विद्याभूषण से विवाह कर लेती है। गरीबी के कारण वह परेशान है परन्तु उसने साहस से काम लेकर चर्खा चलाना आरम्भ किया। चर्खे में उसे सफलता नहीं मिलती। इसके पश्चात् वह एक स्कूल में नौकरी कर लेती है। वह गाँव की लड़कियों को टेलरिंग का काम अर्थात् कपड़ा के काटने—फिराक काटने जम्फर काटने बढ़ाई बुनाई—का काम सिखाती है और बहुत प्रसिद्ध हो जाती है। भाग

---

१ आचार्य चतुरसेन शास्त्री : छत्रसाल पृ० १२१

है कि पुत्री का धर्म है कि माता पिता जिसके साथ उसका विवाह कर दें, उसी को उस परमात्मा समझना चाहिए। किशोरी इस मत से सहमत नही है और सच्चे विवाह का अर्थ समझाती है— पुत्री का धर्म है कि उसका हृदय जिसे पति भाव स स्वीकार करे उसी के आगे वह आत्म-समर्पण कर दे, इसीलिए तो इस देश मे 'स्वयवर' की प्रथा है। स्वयवर का अर्थ ही यह है कि कन्या 'स्वय' 'वर' को स्वयवर म वर ले।'[1] किशोरी को पता लग जाता है कि इनकी पहली पत्नी की मृत्यु हो चुकी है और ये दूसरा विवाह करना चाहते हैं। किशोरी इसके विरुद्ध आवाज उठाती है—'इनकी पहली स्त्री मर गई अब दूसरा विवाह क्यो करने आये हैं? जिस समाज म पुरुष के मर जाने पर स्त्री दूसरा विवाह नही कर सकती उसी समाज मे स्त्री के मरने पर पुरुष दूसरा विवाह क्या करता है? क्या यह अन्याय नही? अनय नही?'[2] इस प्रकार किशोरी उसके साथ विवाह करने को तैयार नही होती। नारी के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए राधेश्याम कथावाचक ने महर्षि वाल्मीकि' नाटक के द्वारा अनमेल विवाह का विरोध किया है।

(घ) विधवा समस्या

प्रसाद-युग की भाति इस युग मे भी नारी के प्रति सहानुभूति और मानवता वादी दृष्टिकोण स विचार किया गया। विधवा सम्बधी जितनी भी समस्याएँ थी नाटककारो न सभी पर अलग अलग विचार प्रस्तुत किये हैं। प्राचीन काल म यदि कोई स्त्री विधवा हो जाती थी तो उसको पूरा सरक्षण दिया जाता था और उसके अधिकारो का हनन नही होता था, परन्तु आधुनिक युग मे स्थिति ठीक इसके विपरीत है। विधवा को उसकी अपनी सम्पत्ति भी नही दी जाती। राधेश्याम कथा वाचक न 'महर्षि वाल्मीकि नाटक म इसी समस्या को उठाया है। एक बूढी औरत की लडकी का पति मर जाता है और बहुत सी सम्पत्ति छोड जाता है, परन्तु घरवाले सम्पत्ति मे से कुछ भी नहा देते। बूढी औरत अपनी करुण गाथा गोमती स सुनाती है कि मेरी पुत्री का पति बहुत सी सम्पत्ति छोडकर मर गया है अब इसके परिवारवाले इसको कुछ भी नही देते। सारी सम्पत्ति को स्वय हडप गये हैं और कहते हैं कि हमारे रहते रहते इसका सम्पत्ति पर कोई अधिकार नही।[3] इस प्रकार वे उस बेचारी विधवा को कुछ भी नही देते। इस प्रकार की समस्या आज भी गाँवो मे पायी जाती है। वहाँ भी विधवा को कोई साम्पत्तिक अधिकार नही दिए जाते।

विधवा के साम्पत्तिक अधिकार की समस्या को हरिकृष्ण प्रेमी न 'बन्धन नाटक म बहुत ही सहानुभूतिपूर्वक उठाया है। सरला की माता की मृत्यु हो चुकी है और उसके पिता ने दूसरा विवाह कर लिया। सरला को माता का साया न रहने

१ राधेश्याम कथावाचक महर्षि वाल्मीकि पृ० ६६
२ वही पृ० ६६
३ वही पृ० ८५

जीवन व्यतीत करती है और उसे समाज में उचित आदर मिलना चाहिए। नित्यानन्द हीरानन्द वात्स्यायन के 'मुकुट' नाटक में कैलाश बाबू कागज मिल का मालिक है और रत्ना गोपाल की विधवा बहन है। कैलाश रत्ना के सौंदर्य पर आसक्त होकर उससे विवाह करना चाहता है परन्तु रत्ना इसे स्वीकार नहीं करती। वह कहती है कि तुमने हमें सताया है और हमारी गरीबी का लाभ उठाया है। इस पर कैलाश रत्ना से कहता है कि तुमने और कुछ करने ही नहीं दिया। मैं तो चाहता था तुम्हें रानी बनाना। तूने भिखारिन रहना ही अच्छा समझा, तो मैं क्या कर सकता हूँ?[1] कैलाश ने रत्ना को प्राप्त करने के लिए गोपाल को रास्ते से हटाने के लिए रस्सी काटकर उसकी टाँग काट दी और मोहन को भी रास्ते से हटा दिया परन्तु रत्ना उसकी निर्दयता के कारण गोपाल से विवाह नहीं करती क्योंकि उसे यह भय है कि रहा विधवा होने के कारण उसे समाज में उचित स्थान न मिले। यहाँ भी उसे समाज में उचित संरक्षण प्राप्त नहीं होता।

(ङ) वेश्या-समस्या

नाटककारों ने वेश्या-समस्या की ओर प्रसाद युग में अपेक्षित ध्यान दिया और इस युग में भी उसके प्रति सहानुभूति और मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाया है। हरिकृष्ण प्रेमी ने वेश्या बनने के लिए समाज को उत्तरदायी ठहराया है। उनका कहना है कि यदि समाज में स्त्रियों को उचित संरक्षण प्राप्त हो जाता है तो वे वेश्यावृत्ति के लिए कदम न उठाएँ। उचित और आवश्यक संरक्षण के अभाव में ही स्त्रियाँ वेश्यावृत्ति धारण करती हैं और यदि समाज उन्हें संरक्षण प्रदान करे तो वे इस वृत्ति का त्याग करने के लिए तैयार भी हो सकती हैं। हरिकृष्ण प्रेमी के 'बन्धन' नाटक में ललिता उचित संरक्षण के अभाव में ही वेश्या बनती है। ललिता का पति उसके साथ दिल्ली में आकर रहता है और नौकरी की खोज करता है। नौकरी न मिलने के कारण वह कमरे का किराया नहीं दे सकता और मकान मालिक मजिस्ट्रेट ने किराया न मिलने के कारण ललिता के पति पर झूठा अभियोग लगाकर उसे जेल भिजवा दिया। तदुपरान्त ललिता मजिस्ट्रेट से प्यार करने लगी परन्तु कुछ समय पश्चात् मजिस्ट्रेट ने भी ललिता को अपने घर से निकाल दिया। ललिता को कहीं उचित संरक्षण नहीं मिल पाता और अन्त में वेश्यावृत्ति धारण करने को विवश हो जाती है। अब वह एक प्रसिद्ध वेश्या है। प्रेमी ने ललिता के चरित्र को अंकित करके यह दिखाने का प्रयास किया है कि एक विवाहिता स्त्री भी उचित संरक्षण के अभाव में वेश्या बन सकती है। यदि ललिता को समाज में संरक्षण प्राप्त हो जाता तो वह वेश्या न बनती। इस नाटक से यह सिद्ध हो जाता है कि समाज ही वेश्याओं के लिए उत्तरदायी है।

---

[1] नित्यानन्द हीरानन्द वात्स्यायन, मुकुट, पृ० ६२

प्रेमीजी ने छाया नाटक में भी वेश्या के लिए समाज को ही उत्तरदायी माना है। इस नाटक में प्रेमी जी ने यह दिखलाया है कि वह और माता पिता अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए अपनी लड़कियों को वेश्यावृत्ति धारण करने को मजबूर करते हैं। इस नाटक में माया के माता पिता ने उसे वेश्या बनने के लिए बाध्य किया। परिणामस्वरूप माया वेश्या बनती है और वह पाँच मास के गर्भ के बच्चे का गर्भपात कराकर नदी में फेंक देती है। प्रकाश नामक एक कवि माया से सहानुभूति रखता है और माया इस घटना को बड़े दर्दनाक शब्दों में व्यक्त करती है— वह बालक पूरा नहीं था। मांस का एक लोथड़ा था, केवल पाँच मास मेरे पेट में रहा था। दो दिन से घर में ही सन्दूक में बन्द पड़ा था। आज जागनेवालों की आँख बचाकर आ पाई हूँ।'[1] इस पर प्रकाश पूछता है कि तुम ऐसा क्यों करती हो? माया इसका उत्तर बहुत ही दर्दनाक शब्दों में देती है और इसके लिए वह अपने माता पिता को उत्तरदायी ठहराती है। माया प्रकाश से कहती है—'इसलिए कि उन्हें इज्जत के साथ रहना है खाना कपड़ा की का बाज से पहनना मच रहा है। पिता जी की शराब पान के लिए पैसा चाहिए।'[2] इस प्रकार छाया का चरित्र अंकित करके नाटककार ने समाज में फैली कुरीतियों के विरुद्ध रोष प्रकट किया है। प्रेमी जी ने छाया को वेश्या दिखाकर समाज के यथार्थ रूप को हमारे सामने रखा है। नाटक के अनुसार समाज में व्याप्त इस कलंक के लिए छाया उत्तरदायी नहीं है उसके माता पिता उत्तरदायी हैं।

इस युग में प्रेमी जी ने वेश्याओं के प्रति सहानुभूति प्रकट की है और उनकी दशा में सुधार लाने का प्रयत्न किया है। उदाहरणार्थ प्रेमी ने 'शीशमहल' नाटक में वेश्या के प्रति सहानुभूति और मानवतावादी दृष्टिकोण से विचार किया है। अजीजन को बचपन में अंग्रेज उठाकर ले जाते हैं परन्तु वह अपने सतीत्व की रक्षा करके पुनः घर वापस आ जाती है। अजीजन के वापस आने पर हिन्दू धर्म उसे स्वीकार नहीं करता। इस परिस्थिति में अजीजन ने कोई आश्रय न देखकर वेश्या का रूप धारण कर लिया और बाजार में नाचने-गाने का कार्य आरम्भ कर दिया। तात्या टोपे को उसकी वेश्यावृत्ति सहन नहीं हुई और वह उसको बहन कहकर पुकारता है और स्वतन्त्रता के लिए सैन्यक्रिया सीखने के लिए प्रेरित करता है। वह अजीजन से कह रहा है— अब तो रानी ने अपनी परिचारिकाओं—मुन्दर मुन्दर और काना आदि—मोती बाई और जूही आदि वेश्याओं और एक बड़ी संख्या में अन्य स्त्रियों को केवल तलवार ही नहीं तोपें तक चलाने में निपुण बना दिया है। उनकी स्त्री सेना में न केवल बुन्देलखण्ड की ठकुरानें हैं, बल्कि पासी आदि छोटी कही जानेवाली जाति की स्त्रियाँ भी हैं। तुम तो क्षत्रियबाला हो—क्या

१ हरिकृष्ण प्रेमी छाया पृ० १८
२ वही पृ० १८

नही कर सकता तुम ?"¹ इसके पश्चात् अजीजन स्वतन्त्रता सग्राम म भाग लेती है और अंग्रेजो का वध करती है। तात्या टोपे उसको बहन बनाकर घर म आश्रय देना चाहता है। इस प्रकार इस युग म नारी के प्रति मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाया गया और उसकी दशा म सुधार करने का प्रयत्न किया गया। यह उचित भी है कि यदि वेश्या को सहानुभूति और उचित सरक्षण दिया जाये तो वह वेश्या वृत्ति को त्याग कर सामान्य जीवन बिताने को तैयार हो सकती है।

(च) अवैध सन्तान की समस्या

विधवा और वेश्या की समस्या से ही अवैध सन्तान की समस्या उत्पन्न होती है। विधवाओ और वेश्याओ की सन्तान को भारतीय समाज मान्यता प्रदान नहीं करता और न ही समाज म उन बच्चो को आश्रय मिल पाता है। भारतीय समाज म इस अवैध सन्तान के दो रूप प्राप्त होते है। माताएँ अपनी अवैध सन्तान को या तो मार देती हैं अथवा नदी आदि म फेंक देती हैं या फिर कही निर्जन स्थान पर फेंक देती हैं। निर्जन स्थान पर फेंकी हुई सन्तान को या तो सन्तानरहित माताएँ अपनी सन्तान बनाकर रख लेती हैं या फिर उनको सरकारी अनाथालयो म भेज दिया जाता है और सरकार की ओर से उनका पालन-पोषण किया जाता है। इस युग म सरकारी अनाथालय और बाल भवन इत्यादि सस्थाएँ बनने लगी थी। सेठ गोविन्ददास के कर्ण नाटक मे कर्ण कुन्ती की अवैध सन्तान है और कुन्ती न उसे विवाह से पूर्व ही जन्म दिया है। सामाजिक भय के कारण कुन्ती कर्ण को नदी म फेंक देती है। कुछ समय पश्चात् कुन्ती स्वय इस समस्या पर विचार कर रही है—'आह! जन्म देनेवाली माता हत्या करनेवाली डाकिनी हो गयी। और कारण? सामाजिक भय। युधिष्ठिर भीम अर्जुन के जन्म तथा उसके जन्म म यही यही अन्तर है न कि य तीनो विवाह के पश्चात् हुए और वह विवाह के पूर्व। विवाह के पश्चात् की सन्तान पति म न होकर किसी अन्य से भी हो तो भी समाज को ग्राह्य है। और जब विवाह सस्था ही न थी तब? प्राचीन सामाजिक सगठन म विवाह ही न था। इसका निर्माण हुआ है आधुनिक सुख के लिए। पर क्या इससे अधिक सुख हुआ?¹ इस प्रकार कुन्ती पश्चात्ताप कर रही है परन्तु अब उसके सामने कोई समुचित समाधान नहीं है। अत वह कर्ण के जन्म की बात को गुप्त रखती है।

विदुर कुन्ती के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करता है और इस घटना को सामान्य और छोटी सी बात कह देता है परन्तु कुन्ती इसको छोटी बात नहीं मानती और विदुर से कहती है— विदुर! तुम इस छोटी सी बात समझते हो? आज समाज समाज से घृणा धारण करते हुए भी इस सामाजिक संगठन की

---

१ हरिकृष्ण प्रेमी शीशदान पृ० २०

२ सेठ गोविन्ददास कर्ण पृ० ८

जब मास्टर सम्पूर्ण सामाजिक क्रान्ति की इच्छा रखते हुए भी विवाह और मन्दिर पर मन में थोड़ी सी भी श्रद्धा न रखते हुए भी समाज का कितना कितना अधिक भय है मुझे।'[1] कुन्ती को समाज में पूरा स्थान प्राप्त है और वह रानी का पद प्राप्त करती हुई भी रूप के रूप में उसके आधीन है। वह जीवन भर समाज के भय से कांपती रहती है परन्तु उसके पास उसका कोई निदान नहीं। यदि कोई स्त्री इस प्रकार का अपराध करे तो समाज उसे सम्मान नहीं देता। समाज ने इस अवैध सन्तान के लिए अनाथालय तो स्थापित किए हैं परन्तु उस बेचारी स्त्री के लिए क्या किया? वह जीवन भर पश्चात्ताप की अग्नि में जलती रहती है। यदि समाज उसको इस अपराध के लिए क्षमा कर दे तो वह स्त्री भविष्य में अधिक सावधान रह सकती है और सुखी जीवन व्यतीत कर सकती है।

समाज ने इस अवैध सन्तान के लिए अनेक अनाथालय बाल भवन इत्यादि स्थापित किए हैं। सेठ गोविन्ददास के 'सन्तोष कहाँ' नाटक में ऐसा प्रकार का बाल भवन स्थापित किया गया है। रमा और मनमोहन मिल कर एक छोटे से बाल भवन की स्थापना करते हैं। इस बाल भवन में अवैध छोटे-छोटे बच्चे रख जाते हैं और सामाजिक वातावरण के अनुरूप ही उनका लालन-पालन होता है। रमा मनमोहन से कहती है कि आज नदी के किनारे पर एक बच्चे पड़े हुए मिले हैं। वह बाल भवन की स्थापना के विषय में मनमोहन से कह रही है—'हमारे बाल भवन सुनने की बात कदाचित् बन्द पड़ गई है। कुछ अभागिनी माताएँ अपने अपने बच्चों को छोड़ छोड़ कर चली जाती हैं।'[2] इस प्रकार इन बच्चों के कल्याणार्थ समाज ने बाल भवन शिशु-सदन आदि अनेक संस्थाओं की स्थापना की है। इस प्रकार इस अवैध सन्तान के लिए तो ये संस्थाएँ स्थापित हो गई हैं और बच्चों को सहारा भी प्राप्त हो जाता है परन्तु उन अभागिनी माताओं के लिए समाज के पास कोई निदान नहीं है। इस युग के नाटककारों ने भी उनके लिए कोई उचित समाधान प्रस्तुत नहीं किया। उनके समाधान की दृष्टि केवल बच्चों तक ही सीमित रही।

(छ) सौतिया डाह

स्वतन्त्रता से पूर्व भारत में बहुत सी रियासतें थीं। उनके मालिक राजा महाराजा और नवाब बड़े-बड़े विवाह करते थे परन्तु उनकी पत्नियों में ईर्ष्या द्वेष और दुर्भावनाएँ व्याप्त रहती थीं। अतः उनकी पत्नियों में असन्तोष और सौतिया डाह विशेषरूप से पाया जाता था। गोविन्दवल्लभ पन्त ने 'अन्तःपुर का छिद्र' नाटक में इसी भावना को स्थान दिया है। राजा उदयन की दो रानियाँ हैं—बड़ी रानी का नाम पद्मावती है और छोटी रानी का नाम मागन्धिना है।

---

१ सेठ गोविन्ददास कथा पृ० ६३

सेठ गोविन्ददास सन्तोष कहाँ पृ० ८६

पद्मावती मागधिनी का प्रत्येक बात म ध्यान रखती है और उसे प्यार करती है परन्तु इसके विपरीत मागधिनी नहीं चाहती कि उसके और उदयन के बीच मे पद्मावती रहे। वह पद्मावती क विरुद्ध प्रचार करना आरम्भ कर देती है और उदयन स उसके विरुद्ध बातें करती है परन्तु उदयन को यह सब अच्छा नहीं लगता। पद्मावती की मृत्यु के लिए मागधिनी एक मालिन क द्वारा एक सप मँगवाती है और पद्मावती की वीणा म रख देती है। परन्तु जब उदयन पद्मावती को गाना सुनाने के लिए वीणा बजाना आरम्भ करता है तो सांप को देखकर क्रुद्ध हो जाता है। मागधिनी राजा स कहती है कि पद्मावती न यह सांप आपकी मृत्यु के लिए मँगवाया है। राजा क्रोध में आकर पद्मावती का समाप्त करने के लिए एक तीर चलाता है परन्तु पद्मावती इससे बच जाती है। तत्पश्चात् मालिन आकर सारा रहस्य खोल देती है। सांप भी मागधिनी को ही काटता है और उसकी मृत्यु हो जाती है। इस घटना के पश्चात् राजा उदयन और पद्मावती बौद्ध धम स्वीकार कर लेते हैं और नाटक का अन्त होता है। गोविन्दवल्लभ पन्त न इस नाटक के द्वारा दो पत्नियो मे व्याप्त सौतिया डाह का चित्रण किया है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि यदि एक पति की दो पत्नियाँ होगी तो उनमे आपस म ईर्ष्या भाव अवश्य होगा और एक दूसरी के प्रति घृणा डाह आदि के भाव प्रदर्शित करती रहेगी।

(ज) मद्यपान की समस्या

समाज म मदिरापान की एक भयकर समस्या है। जिस व्यक्ति का इसकी आदत पड जाती है सारा जीवन उसी म नष्ट हो जाता है। मदिरा स शरीर पर बहुत बुरा प्रभाव पडता है। इस युग म मद्यपान की समस्या की ओर कुछ नाटककारो का ध्यान आकर्षित हुआ और उन्होंने अपने नाटको म इसके विरोध म प्रचार किया। उपेन्द्रनाथ अश्क ने छटा बटा' नाटक म मद्यपान की ओर सकेत किया है। डा० हसराज के पिता शराब पीते हैं और घर के व्यक्तियो को खूब गालियाँ देते हैं। व शराब के नशे म झूमते हुए गुने गने नग सिर ही दुकान म आ जाते हैं और इधर उधर की बातें करते हैं। इस तरह उसने घर की बहुत-सी सम्पत्ति नष्ट कर दी। अश्क जी इस नाटक क द्वारा शराब क दुष्परिणाम दिखाना चाहते हैं और इसस बचने की शिक्षा देते हैं।

गोविन्दवल्लभ पन्त न अगूर की बेटी नाटक म शराब क दुष्परिणाम दिखलाए हैं। मोहनदास शराबी है। उसन शराब पी-पी कर बक का सारा रुपया समाप्त कर दिया। पिताजी की बनाई हुई शहर की सातो कोठियाँ दोनो गाँव लोहे का कारखाना और अपनी पत्नी के सारे आभूषण, शराब की गगा मे बहा दिए। नौबत यहाँ तक आ पहुँची कि एक दिन वह शराब क नशे म नाली म पडा हुआ मिला। हरिहर उसको देखकर उठाता ह और कहता है— शरम करो मोहन राम तुमने ब्राह्मण के घर जन्म लिया था। राम राम। तुम यहाँ पडे थे ? नाली

करने लगी है। पन्त जी ने इस नाटक को लिखकर स्त्री समाज को इस प्रकार के राग से सावधान किया है।

नाटकों मे अभिव्यक्त सांस्कृतिक चेतना का स्वरूप

(क) विश्व-बन्धुत्व की भावना

मनुष्य दो विश्वयुद्धो को देखकर त्रस्त हो उठा और वह स्थायी शान्ति के लिए प्रयास करने लगा है। वैज्ञानिक उन्नति ने मनुष्य को ऐसे ऐसे उपकरण दिये हैं कि सारे ससार को थोडे ही समय मे समाप्त किया जा सकता है। इस विनाश से बचने के लिए राष्ट्र आपस मे सन्धि कर रहे है और स्थायी शान्ति के लिए नए प्रयत्न कर रहे हैं। सेठ गोविन्ददास ने भी अपने नाटको के द्वारा स्थायी शान्ति के लिए विश्व बन्धुत्व की भावनाओ को ही एकमात्र उपाय बतलाया है। यह उसी स्थिति मे हो सकता है जब प्रत्येक मनुष्य दूसरे को अपना बन्धु समझने का प्रयास करे। सेठ जी ने 'विकास' नाटक मे विश्व-बन्धुत्व की भावना का चित्रण किया है। पृथ्वी आकाश से प्राचीन ऋषियो की वाणी को दुहराती हुई कहती है कि उन्होने सबको बन्धु माना था। उन्होने तो इससे भी कही बढकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' कह समस्त सृष्टि को अपना कुटुम्ब मानने और 'सर्वभूतहिते रत' कह समस्त योनियो के उपकार मे दत्तचित्त रहने को कहा था।[1] विश्व बन्धुत्व की भावना प्राचीन भारतीय संस्कृति के रूप को व्यक्त करती है।

सेठ गोविन्ददास ने 'शशिगुप्त' नाटक मे भी इसी भावना को व्यक्त किया है। इस नाटक मे चाणक्य यवनो को भारत से निकलवाकर शशिगुप्त और हेलन का विवाह कराना चाहते हैं। विश्वबन्धुत्व की ओर सकेत कर वे हेलन से कहते हैं— यह तो यवन सम्राट की विजय का प्रस्ताव है। इस विवाह के पश्चात् तो शशिगुप्त के पितातुल्य होने के कारण सच्चे विजेता यवन सम्राट हो जाते हैं। और फिर और फिर मने सुना है कि यवन और भारतीय यूनान और भारत इन भेदभावो मे आपको विश्वास ही नही है। आप तो सारे मानव समाज को एक जाति सारे विश्व को एक देश मानती है। मेरा यह प्रस्ताव तो आपके सिद्धान्तो को कायरूप मे परिणत करता है। एक जाति के निर्माण का बीज बोता है। विश्व को एक देश बनाने का आरम्भ करता है।[2] इस प्रकार चाणक्य दो देशो मे मेल करवाकर विश्व मैत्री की ओर सकेत करते हैं।

चाणक्य यवनो को भारत से निकलवाने के पश्चात् और शशिगुप्त तथा हेलन का विवाह सम्पन्न होने पर सन्यास धारण करने को तैयार होते हैं। चाणक्य शशिगुप्त से भी विश्व कल्याण की बात कह रहे हैं— मेरा वर्तमान काय

२ सेठ गोविन्ददास विकास पृ० ६८, ६६

२ सेठ गोविन्ददास शशिगुप्त पृ० १५६

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने 'मेघनाद' नाटक में सत्य की विजय दिखलाई है। रावण असत्य के पक्ष की ओर था और राम लक्ष्मण सत्य की ओर थे। दोनों पक्षों के भयानक युद्ध की समाप्ति के पश्चात् राम की विजय दिखला कर लेखक ने गांधी जी के सत्य की ओर संकेत किया है। इस नाटक की रचना में लेखक का यह भी संकेत था कि स्वतन्त्रता संग्राम में विजय भारतीय पक्ष की होगी और स्वतन्त्रता की प्राप्ति होगी क्योंकि भारत सत्य के मार्ग का अनुसरण कर रहा था और अंग्रेज असत्य के मार्ग पर चल रहे थे। अन्त में नाटककार का विचार सत्य सिद्ध हुआ और भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई।

राधेश्याम कथावाचक ने 'महर्षि वाल्मीकि' नाटक में अहिंसा की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। रत्नाकर हिंसा को त्याग कर अहिंसा के मार्ग का अनुसरण करता है। वह एकान्त में अहिंसा के विषय में सोच रहा है— "आज ज्ञान हुआ है, हृदय की आँखों से देख रहा हूँ कि हिंसा आग है और अहिंसा जल, हिंसा तम है और अहिंसा सत, हिंसा नरक है और अहिंसा स्वर्ग, हिंसा शरीर का विष है और अहिंसा आत्मा का अमृत, हिंसा मनुष्य का काला पाप है और अहिंसा देवताओं का उज्जल प्रसाद, हिंसा का मालिक क्रोध की मूर्ति यम है और अहिंसा का स्वामी शान्ति का स्वरूप धर्म।"[1] इस प्रकार राधेश्याम कथावाचक ने हिंसा के मार्ग को त्याग कर अहिंसा के मार्ग का वरण करने का सन्देश दिया है।

उपेन्द्रनाथ अश्क ने 'छठा बेटा' नाटक में हिंसा पर अहिंसा की स्थापना की है। अश्क पर गांधी जी का प्रभाव परिलक्षित होता है इसीलिए उन्होंने इस नाटक में अहिंसा के प्रयोग की आवश्यकता को समझा है। बसन्तलाल शारीरिक बल की बात करते हैं तलवार एवं बन्दूक की ओर इंगित करते हैं परन्तु दीनदयाल उनमें अहिंसा पर बल देने के लिए कहते हैं कि 'महात्मा गांधी तो अहिंसा का प्रचार कर रहे हैं।'[2] इस प्रकार अश्क जी ने भी गांधी जी से प्रभावित होकर अहिंसा का प्रचार किया है।

उदयशंकर भट्ट ने 'मुक्तिपथ' नाटक में हिंसा के विरुद्ध प्रचार किया है। एक ब्राह्मण ने राजा से शिकायत की है कि सिद्धार्थ ने हमारे यज्ञ में बलि नहीं देने दी और हमारे धर्म में हस्तक्षेप किया है। मन्त्री कहता है कि यज्ञ में दी गई बलि हिंसा नहीं कही जा सकती। इस पर सिद्धार्थ हिंसा के विषय में कहता है कि "हिंसा सब जगह हिंसा ही है। चाहे वह यज्ञ में हो अथवा और कहीं। धर्म हिंसा का उपदेश नहीं देता। धर्म जीवन है मृत्यु नहीं। यह हमारा अज्ञान है धर्म का विकृत रूप है। ऐसे धर्म को हम नहीं मानना चाहिए।"[3] इस नाटक में सिद्धार्थ हिंसा के त्याग की बात कहता है और अहिंसा को ग्रहण करना अपना धर्म मानता है। जिस समय इस नाटक की

---

१ राधेश्याम कथावाचक महर्षि वाल्मीकि पृ० १४७

२ उपेन्द्रनाथ अश्क छठा बेटा पृ० ६१

३ उदयशंकर भट्ट मुक्तिपथ पृ० २७

राक्षस—होली नहीं, आज तो केवल वसंत पंचमी है। होली का अभी एक मास दस दिन है।

नन्द—पर आज से होलिकोत्सव आरम्भ हो जाता है।[1]

इस प्रकार होली त्यौहार हमारी प्राचीन संस्कृति को अक्षुण्ण बनाए है। इस दिन सब व्यक्ति आपस की वैर भावना को भुलाकर प्रेम का सन्देश प्राप्त करते हैं। इसलिए इसको ४० दिन पूर्व ही मनाना आरम्भ कर देते हैं।

हरिकृष्ण प्रेमी ने 'आहुति' नाटक में होली को तन्मयता के साथ मनाने का वर्णन किया है। हमीरसिंह मीरमहिमा को होली के त्यौहार का वर्णन सुनाता है— होली के दिन हम लोग प्रेम के रंग में सिर से पैर तक डूब जाते हैं। इस दिन न कोई बड़ा होता है न छोटा। सब को मनमानी करने का अधिकार होता है। प्रकृति ने हमें जिस स्वाभाविक रूप में भेजा है वही रूप हम होली के दिन धारण करते हैं। हृदय, आत्मा शरीर सब कुछ रंगीन हो उठता है। आनन्द के ताण्डव में हम भेद भाव, भूत भविष्य पाप-पुण्य सब भूल जाते हैं। ओह ! कितनी तन्मयता, कितना रस और कितना आनन्द है हमारे इस त्यौहार में।'[2] प्रेमी जी ने इस त्यौहार के दिन सबको एक समान मानने की विचारधारा प्रकट की है। इसका यह अभिप्राय है कि ऐसे ही अवसरों पर ऊँच-नीच की भावना को समाप्त किया जा सकता है और भारतीय जीवन में सामाजिक समानता को एक स्वस्थ रूप प्रदान किया जाता है।

'भैया दूज' के त्यौहारों का भारतीय नारी समाज में विशेष महत्त्व है। यह त्यौहार कार्तिक शुक्ला के दिन मनाया जाता है। इस त्यौहार के सम्बन्ध में एक पौराणिक कथा प्रचलित है। यमुना भगवान् सूर्य की पुत्री मानी जाती है। एक बार उसने अपने भाई यमराज को अपने घर बुलाकर बड़ा स्वागत किया। इस पर यमराज ने प्रसन्न होकर उसको वरदान मांगने के लिए कहा—तब यमुना ने यही वरदान मांगा कि तुम प्रतिवर्ष इसी तरह मेरे घर आया करो। यमराज ने भ्रातृ निष्ठा पर प्रसन्न होकर वरदान दे दिया और कहा कि इस दिन जो बहन अपने बुरे-से बुरे भाई को भी बुलाकर सत्कार करेगी उसे मैं अपने पाश से मुक्त कर दूंगा। उसी दिन से भयादूज का उत्सव समाज में प्रचलित हो गया। इस दिन बहनें भाइयों के तिलक करती हैं और उनके जीवन की मंगलकामना करती हैं तथा भाई भी बहनों को अनेक प्रकार के उपहार देते हैं और उनकी रक्षा करते हैं।

हरिकृष्ण प्रेमी ने अपने 'आहुति' नाटक में इस त्यौहार को स्त्रियों के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण बतलाया है। महारानी देवल मीरमहिमा को भयादूज के दिन टीका करती हैं और कहती हैं— आज भयादूज है। हम भाइयों को टीका करना

---

१ सेठ गोविन्ददास शशिगुप्त ८८

२ हरिकृष्ण प्रेमी आहुति प ५

इस पाश्चात्य शिक्षा में शुद्ध प्रेम नाम की कोई वस्तु नहीं है। सुधा विनय मोहन और केशव दोनों से प्रेम करती है। विनयमोहन निर्धन व्यक्ति है परन्तु केशव बरिस्टर है और विवाहित होकर भी अपने आपको अविवाहित कहता है। केशव और सुधा का विवाह निश्चित हो जाता है परन्तु केशव की पत्नी मोहनी के सब कुछ बतलाने पर उनका विवाह नहीं हो पाता। इसके पश्चात् सुधा ने विनयमोहन से विवाह की बातचीत की परन्तु उसने भी सुधा के पिछले प्रेम को देखकर विवाह करने से अस्वीकृति प्रकट की। परिणामस्वरूप सुधा का विवाह ही नहीं हो पाता और वह जीवनपर्यन्त द्विविधा में पड़ी रहती है। नाटककार के मतानुसार पाश्चात्य शिक्षा में जीवन में शान्ति प्राप्त नहीं होती। अन्त में सुधा अपने हृदय की बात विनय से कहती है—'जब से होश सँभाला है इस बचन और तड़पता हुआ ही पानी चली आ रही हूँ। कभी इस वस्तु के लिए मचल रहा है तो कभी उसके लिए भटक रहा है। एकान्त और शान्ति का रास्ता छोड़कर यह सदा उत्तेजना की राह खोजता रहा है आकाश के तारों के पीछे भागता रहा है।'[1] इस प्रकार नाटककार ने आधुनिक शिक्षा में शिक्षित लड़कियों पर एक तीखा व्यंग्य किया है।

आधुनिक शिक्षा में मनुष्य की इच्छाएँ इतनी अधिक बढ़ गई हैं कि उसे वर्तमान की स्थिति से सन्तोष नहीं होता। वह आकाश में उड़ना चाहता है, तरह तरह के प्रलोभन उसे व्यथित करते हैं और उसकी आकांक्षाएँ प्रतिदिन बढ़ती चली जा रही हैं। गोविन्दवल्लभ पन्त ने अंगूर की बेटी नाटक में आधुनिक शिक्षा में प्रभावित एक लड़की की इच्छा का चित्रण किया है। आधुनिक लड़कियाँ सिनेमा की शौकीन हैं और सिनेमा के फिल्म स्टारों को देखकर उनके मन में भी फिल्म स्टार बनने की तीव्र उत्कण्ठा उत्पन्न होती है। इस नाटक की नायिका प्रतिभा फिल्म एक्ट्रेस है वह 'दी सन पिक्चर्स लिमिटेड' कम्पनी में काम करती है। माधव उसको अधिक वेतन देने के बहाने अपने पास बुला लेता है एवं धीरे धीरे अपनी ओर आकृष्ट करता है। प्रतिभा अपनी नौकरी छोड़कर उसके पास आ जाती है परन्तु माधव का काम नहीं चल पाता क्योंकि उसके पास पैसे का अभाव है। प्रतिभा का अधिक सम्पन्न और सुखी होने का स्वप्न मिट्टी में मिल जाता है। माधव ने कामिनी के चुराए हुए गहने भी प्रतिभा को दिए परन्तु पुलिस के भय से सोना भाग जाते हैं। माधव पकड़ा जाता है और अस्पताल में उसकी मृत्यु हो जाती है। प्रतिभा भी पुनः दी सन पिक्चर्स लिमिटेड कम्पनी में हीरोइन के पद पर काम करने को तैयार हो जाती है। इस प्रकार आधुनिक शिक्षा पाकर फिल्मी चकाचौंध में पड़कर अनेक महिलाएँ अपने घर को उजाड़ लेती हैं। आधुनिक शिक्षा के रंग में रँग कर फिल्म स्टार बनने की इच्छाओं का दुष्परिणाम दिखाना ही नाटककार को अभीष्ट है।

---

१ पृथ्वीनाथ शर्मा दुविधा पृ० ५८

उपेन्द्रनाथ अश्क ने 'स्वर्ग की झलक' नाटक में स्त्रियों के लिए आधुनिक शिक्षा का विरोध किया है। आधुनिक शिक्षा ने नारियों पर ऐसा प्रभाव डाला है कि वे घर के कार्य में निपुण नहीं हो पातीं। परिणाम यह होता है कि परिवार तबाह हो जाते हैं। वर्तमान शिक्षा ने नारी को आलसी, निकम्मी, फैशन-परस्त, अधिकार की प्यासी और बाहरी टीप टाप के लिए पागल बना दिया है। आधुनिक शिक्षा की चकाचौंध में घर उजड़ रहे हैं, गृह भवन आधार खो रहे हैं। आमला शृंगार करना पसन्द करते हुए कहती है कि नाक भौं सिकोड़ता है पर समय से जाना आवश्यक है। आमला राजेन्द्र अपने उत्तरदायित्व को नहीं समझती। इस पति को घर में छोड़कर चली जाती है। उमा भी नारी की स्वतन्त्रता और अधिकार की हिमायती है। रघु जो उमा को अपनी भगिनी बनाने को पागल था उससे खिन्न हो जाता है और वह कम पढ़ी लिखी लड़की रक्षा से विवाह करने को तैयार हो जाता है। प्रोफेसर अपनी लड़की के विषय में आधुनिक शिक्षा पर व्यंग्य करते हुए रघु की भाभी से कहती है कि कॉलेज की शान छिछली होती है। गृहस्थ जीवन के वास्तविक अनुभव को उस समय प्रदान करते हैं। उसे ऐसा बहुत कुछ आगे चलकर सीखना होगा।[1] रघु के बड़े भाई भी आधुनिक शिक्षा के पक्ष में नहीं हैं। वे रघु को समझाते हैं कि मध्यवर्गीय आदमी के लिए अधिक पढ़ी लिखी लड़की के साथ जीवन बिताना कठिन हो जाता है। इतना ही नहीं वे आगे कहते हैं कि लड़कियाँ जितना अधिक पढ़ती हैं उतना ही अधिक छिछोरी होती जाती हैं। इस प्रकार अश्क जी आधुनिक युग में भी स्त्री नारी की शिक्षा को पसन्द नहीं करते क्योंकि यह शिक्षा आधुनिक जीवन के विकास के लिए सक्षम नहीं है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि अश्क जी शिक्षा का विरोध कर रहे हैं वरन् वे तो आधुनिक शिक्षा प्रणाली से असन्तुष्ट हैं और विशेषकर स्त्रियों की शिक्षा के विषय में।

(ख) भौतिकवादी दृष्टिकोण

आधुनिक भारत के नवनिर्माण में विज्ञान का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति की विचारधारा मुख्यतः धार्मिक और आध्यात्मिक रही है परन्तु आधुनिक युग में वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने भारतीय चिन्तनधारा को भी परिवर्तित कर दिया। आध्यात्मिक जीवन-दृष्टिकोण की उपेक्षा ही नहीं वरन् उसके प्रति विश्वास भी उठ गया है। विज्ञान ने भौतिक सभ्यता के उपकरणों द्वारा मनुष्य की आशातीत उन्नति की है। इस भौतिक सभ्यता का प्रभाव इस युग के नाटककारों पर आवश्यक रूप से पड़ा और उन्होंने अपने नाटकों में इस सभ्यता को अंकित किया है।

राधेश्याम कथावाचक ने 'सती पार्वती' नाटक में विज्ञान के क्षेत्र में हुए नये

आविष्कारों की ओर इंगित किया है। इस सम्बन्ध में दद्दा कविराय से विज्ञान की महत्ता की ओर संकेत कर रहे हैं—'मनुष्य को विज्ञान-बल द्वारा अग्नि जल और वायु के संयोग से उत्पन्न होनेवाली वाष्प के काम में लगाया ताकि वह नित्य नए नए आविष्कार करे। विद्युत की शक्ति से भूयान, जलयान वायुयान और आत्म शक्ति से मन्त्र, यन्त्र तन्त्र निर्माण करे। इतना ही नहीं और भी आगे बढ़ने का विचार है। इस प्रकार राधेश्याम कथावाचक ने भौतिक युग में विज्ञान द्वारा निर्मित वायुयानों की ओर संकेत किया है और आगे बढ़ने की इच्छा व्यक्त की है।

इस भौतिक युग में विज्ञान ने मनुष्य को उन्नति के शिखर पर तो पहुँचा दिया परन्तु उसके हाथ में विनाश की लीला के ऐसे अस्त्र दे दिए जिससे मानवता त्रस्त हो उठी है। सेठ गोविन्ददास के विकास नाटक में पृथ्वी आकाश को इसी विनाश की ओर संकेत कर रही है— शब्दों में सभी एकता विश्व प्रेम और विश्व बन्धुत्व की दुहाई देते हैं। बिना एकता का अनुभव और अनुरूप कर्म किए जो आधिभौतिक उन्नति हो रही है उसमें कितना नाश हो चुका है और हो रहा है यह मैंने तुम्हें आज वे ही कुछ दृश्य दिखाकर सिद्ध कर दिया है। भविष्य में इस आधिभौतिक उन्नति से और भी अधिक नाश की सम्भावना है।'[2] नाटककार आधुनिक परमाणु बम और उदजन बम की ओर संकेत कर रहा है। इनसे अधिक विनाश की सम्भावना है।

वास्तव में जब सेठ जी इस नाटक को लिख रहे थे, उस समय द्वितीय महायुद्ध छिड़ चुका था और उस युद्ध का इस नाटक पर प्रभाव पड़ा है। पृथ्वी आकाश से द्वितीय विश्वयुद्ध की चर्चा कर रही है कि किस प्रकार अमेरिका ने जापान के दो प्रसिद्ध नगरों— हिरोशिमा और नागासाकी—पर बम गिराए थे और उनके क्या परिणाम निकले। पृथ्वी कहती है—तुम्हें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि इस युद्ध में केवल लड़नेवाली सेनाओं का ही नाश नहीं हो रहा है किन्तु वायुयान बम बरसा बरसा कर नगर के नगर और ग्राम के ग्राम चौपट कर रहे हैं। कुछ बम स्वयं ही उड़ उड़ कर बरसते हैं और राकेट नाम के कुछ बम इतनी शीघ्रता से आते हैं कि उनकी आवाज सुनायी देने के पहले ही उनका विस्फोट हो संहार का कार्य आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार सहस्रों निर्दोष मनुष्यों और उनकी सम्पत्ति का संहार हो रहा है।'[3] इन शब्दों में द्वितीय विश्वयुद्ध में नष्ट हुई सम्पत्ति की ओर संकेत किया गया है।

पृथ्वी मनुष्य के व्यक्तिगत स्वार्थ और उसकी पाशविकता के विषय में आकाश से कहती है कि मनुष्य से यह आशा की जाती थी कि वह समस्त संसार की एकता को पहचान कर सभी को सुख पहुँचाने का प्रयत्न करेगा और इस प्रयत्न

१ राधेश्याम कथावाचक सती पार्वती पृ० १२०
२ सेठ गोविन्ददास विकास पृ० ६६
३ वही पृ ६१

में उसे सच्चा सुख मिलेगा, परन्तु यह आशा निराशा में परिणत हो गई। उसमें जो वास्तविकता है उसके कारण सामूहिक रूप से वह इस बात का भी अनुभव न कर सका और अनुभव न कर सकने के कारण उसके कर्म कभी इस ज्ञान के अनुरूप नहीं हुए। उसकी सभी कृतियाँ अपने पराये और असमानता के भावों से भरी हुई हैं। अन्य को सुख देने में उसे सुख का अनुभव होना तो दूर की बात रही अपने लिए वह दूसरों को कष्ट दे रहा है। स्वार्थवश सभी अपने अपने साढ़े तीन हाथों के शरीर की इन्द्रियों को तृप्त करने में लगे हुए हैं आधिभौतिक सुखों में निमग्न हैं।[1] पृथ्वी का कहना है कि यह स्वार्थ की भावना केवल व्यक्ति तक ही सीमित न रह कर राष्ट्रों तक पहुँच गई है। पृथ्वी आकाश को बता रही है कि पहले यदि एक व्यक्ति अपनी आधिभौतिक वासनाओं की तृप्ति के लिए दूसरे व्यक्ति को कष्ट देता था तो आज एक समाज दूसरे समाज को, एक देश दूसरे देश को कष्ट पहुँचा रहा है। इन सब आधिभौतिक और वैज्ञानिक आविष्कारों का उपयोग संसार के सामूहिक सुख के लिए न होकर सामूहिक नाश के लिए हो रहा है।[2] इस नाटक में सेठ जी ने विज्ञान के द्वारा विनाश की लीलाओं का चित्रण किया है। यदि आज का मानव समाज और राष्ट्र इन विनाशक उपकरणों का उपयोग विश्व शान्ति और कृषि की उन्नति के क्षेत्र में करें तो इनसे विश्व का कल्याण और मानव की आशातीत उन्नति हो सकती है।

इस भौतिक युग में धनी व्यक्ति गरीबों का धन लूट-खूट कर अपने घरों को भरते हैं और फिर समाज की सेवा की बातें करते हैं। सेठ गोविन्ददास ने सेवापथ नाटक में यही दिखलाने का प्रयास किया है। शक्तिपाल आरम्भ में एक वकील है, फिर बैरिस्टर और उसके पश्चात् मिनिस्टर भी बन जाता है। वह जनता का धन लूट-खसोट कर अपना घर भर लेता है और सभ्यता की बात करता है। दीनानाथ एक समाज-सेवी आदमी है। वह गरीबों की सहायता करता है। वह इन सभ्य व्यक्तियों की ओर संकेत करता हुआ शक्तिपाल से कहता है कि ये सभ्य लोग अपने स्वार्थ को सबसे पहले पूरा करते हैं। इन सभ्य कहलानेवाले लोगों का जब थोड़ा सा स्वार्थ पूर्ण नहीं होता तब वे अहंकार में चूर हो जाते हैं और फिर अपनी सत्ता का दुरुपयोग कर अत्याचार आरम्भ करते हैं। आज संसार में एक मनुष्य दूसरे मनुष्य, एक जाति दूसरी जाति और एक देश दूसरे देश को जिस प्रकार लूट रहे हैं दूसरों को दुःखी कर अपने आधिभौतिक सुखों को ढूँढ रहे हैं सभ्यों और दूसरे मनुष्यों को निर्धन बना एक मनुष्य जिस प्रकार धनवान बन रहा है, क्या यही सभ्य रीति से जीवन व्यतीत करना कहा जा सकता है?[3] सेठ जी ने इस भौतिक सभ्यता में यह दिखलाने

१ सेठ गोविन्ददास विकास पृ० १२
वही पृ० १४
सेठ गोविन्ददास सेवापथ पृ० ११

का प्रयत्न किया है कि आज मनुष्य अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए दूसरो का गला काट रहा है।

आज की इस भौतिक सभ्यता म मनुष्य की शान्ति भग हो चुकी है उसे कहा भी स तोष प्राप्त नही होता। सवत्र उसके मस्तिष्क म एक तनाव की स्थिति बनी रहती है। सेठ गोविन्ददास ने स तोष कहा' नाटक म इसी स्थिति का चित्रण किया है। मनसाराम आरम्भ म एक गरीब व्यक्ति है। उसे अपनी गरीबी म स तोष नही होता। तत्पश्चात् उसने सटटे म खूब रुपया कमाया और वभवपूर्ण जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया। पर तु उसे अब भी स तोष नही होता। इसके उपरान्त वैभव त्याग कर देश सेवा का व्रत लिया और चर्खा कातना आरम्भ किया पर तु यहा भी असतोष की भावना व्याप्त रही। अ त म वह अपने जीवन स तग आकर नीतिव्रत से कहता है— सभी पाखण्ड सभी पाखण्ड म भरा हुआ है क्या विश्व म असत्य असत्य का ही साम्राज्य है? ओह! स तोष स तोष कहा कहा म तोष है? यह । [1] इस प्रकार मनसाराम को कहा भी स तोष प्राप्त नही होता। सेठ जी न इस नाटक म यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि आज की इस भौतिक सभ्यता म मनुष्य की शान्ति लुप्त हो चुकी है और सवत्र अशान्ति का साम्राज्य आच्छादित है। उसे किसी भी पक्ष मे कहीं पर भी चन नही पडती। जीवन म उसे सच्ची शान्ति प्राप्त नही है।

उपेन्द्रनाथ अश्क ने छटा बेटा' नाटक मे पाश्चात्य सभ्यता के वातावरण का चित्र प्रस्तुत किया ह। बसन्तलाल की वृद्धावस्था म उसके पाच पुत्र उसकी सहायता नही करते। पिता की लाटरी आ गई है और लाटरी का रुपया भी हडप ले गये पर तु उसका साथ फिर भी नही देते क्योकि वे सभी पाश्चात्य सभ्यता मे पले हुए हैं। उनकी इस सभ्यता पर व्यग्य करता हुआ वह उनसे कहता है—आजकल की सभ्यता म है क्या? उसम साहस कहाँ है? दयानतदारी कहाँ है? सत्य कहा है? सहिष्णुता सहानुभूति दया और कृतज्ञता कहाँ ह? यह सभ्यता विज्ञान की सभ्यता है छल, कपट और प्रपच की सभ्यता है यह। [2] अश्क जी के मतानुसार इस पाश्चात्य भौतिक सभ्यता मे सवत्र छल कपट असत्यता आदि के दर्शन होते हैं। आधुनिक युग म हम अपनी प्राचीन परम्परा को भूलकर इस भौतिक वातावरण म विचरण कर रहे हैं और अपनी सस्कृति को भूलने के कारण ही हम शान्ति प्राप्त नहीं होता।

नाटकों मे अभिव्यक्त आर्थिक चेतना का स्वरूप

(क) मजदूरों का शोषण

द्वितीय विश्वयुद्ध के आरम्भ होने स भारतीय कारखानो म दिन रात काम

१ सेठ गोविन्ददास स तोष कहाँ प० ३३
२ उपेन्द्रनाथ अश्क छटा बेटा प ८६

होने लगा और पूँजीपति अप्रत्याशित लाभ कमाने लगे। उनकी धन-लोलुपता इतनी बढ़ गई कि उन्होंने मजदूरों का शोषण करना प्रारम्भ कर दिया। इस शोषण का शिकार इस युग के नाटककार अपने समाज में और बाहर देख रहे थे और इस शोषण का चित्र उन्होंने अपने नाटकों में अंकित किया। सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन ने अपने नाटक 'मुकुट' में इस शोषण को चित्रित करने का प्रयास किया है। गोपाल कपड़ा मिल में काम करता है और वह मजदूरों का नेता है। वह अपनी पत्नी के इलाज के लिए छुट्टी माँगता है परन्तु उसे छुट्टी नहीं मिलती। मालिक कहते हैं कि यदि छुट्टी जाना चाहते हो तो बदले में आदमी दे जाओ अथवा नौकरी छोड़ कर चले जाओ। परिणामस्वरूप उसकी पत्नी बीमार होती रही और मालिक इस प्रकार गोपाल का शोषण करते रहे। इस नाटक से यह ज्ञात होता है कि मिल मालिक मजदूरों को छुट्टी तक नहीं देते थे चाहे उनके घर में बीमारी हो अथवा और कोई अन्य कष्टजनक स्थिति हो।

हरिकृष्ण प्रेमी ने 'बंधन' नाटक में पूँजीपतियों के शोषण की प्रक्रिया का वर्णन किया है। इस नाटक में रायबहादुर खजांचीराम एक मिल मालिक पूँजीपति हैं। वेतन के न बढ़ने से उनकी मिल में मजदूरों ने हड़ताल आरम्भ कर दी है। मोहन मजदूरों का नेता है और वह इस पूँजीवाद को समाप्त करना चाहता है। वह खजांचीराम के शोषण के विरुद्ध अपने उद्गार प्रकट कर रहा है— 'आप डाका डालते हैं जो मजदूरों के परिश्रम से प्राप्त हुए रुपयों को अपनी तिजोरी में डाल लेते हैं। विद्रोह आप कर रहे हैं जो अपने मजदूरों को भूखा मारते हैं। यह विद्रोह है— प्रकृति के साथ विद्रोह।'[1] इन शब्दों में मोहन मजदूरों के शोषण के विरुद्ध आवाज उठाता है।

द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ जाने से सामान्य प्रयोग में लाई जानेवाली वस्तुएँ महँगी हो गईं परन्तु मजदूर पेट भर रोटी माँगते हैं। वे अपनी मजदूरी में वृद्धि चाहते हैं। उनके वृद्धि माँगने पर रायसाहब खजांचीराम उनकी पिटाई करते हैं। रायसाहब का पुत्र प्रकाश अपनी बहन मालती को ये सब परिस्थितियाँ बता रहा है— 'आज जब मजदूरों पर लाठियाँ पड़ी थीं किसी का सिर फूटा किसी की टाँग टूटी किसी की आँख गई किसी का हाथ उड़ा।' इस नाटक से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि मजदूर अपनी माँग रखते हैं तो उनकी पिटाई होती है और उनको सताया जाता है। इस प्रकार इस युग में शोषण की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है।

(ख) निर्धनता

द्वितीय विश्वयुद्ध के समाप्त होने पर लड़ाई के सामान की आवश्यकता न

---

१ हरिकृष्ण प्रेमी बंधन पृ० १६
वही पृ० १८

हान के कारण उत्पादन बन्द कर दिया गया और इसके फलस्वरूप बहुत से मजदूर बेकार हो गये। पूजीपतियो और व्यापारियो ने अप्रत्याशित लाभ कमाया और आर्थिक शक्ति इनके हाथो मे केन्द्रित हो गई। परिणाम यह हुआ कि न केवल किसान तथा मजदूरो मे बेकारी उत्पन्न हुई वरन् मध्यवर्ग मे भी शिक्षित बेकारी की समस्या प्रकट हुई। सेठ गोविन्ददास ने 'सेवापथ' नाटक मे यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि एक ओर तो गरीब व्यक्ति भूखा मर रहा है और दूसरी ओर धनवान् व्यक्ति ऐश्वय का जीवन व्यतीत करता है। दीनानाथ गरीब है और समाजसेवी है। उसकी पत्नी कमला धनवानो को देखकर सरला (श्रीनिवास नामक एक धनी की पत्नी) से कहती है कि मेरे पति तो गांधी जी के आदर्शों पर चलते हैं। वह निधन व्यक्तियो को देख कर मरता सा उनकी दशा का वर्णन करती है और अपने पति के सिद्धान्तो को सराहती है—"उनका तो महात्मा गाधी से भी आगे बढकर यह सिद्धान्त है न कि जब यह निधन देश है यहाँ के अधिकाश जनो को पेट भर भोजन नही मिलता वस्त्र नहीं मिलते रहने को झोपडे नही हैं तब यहाँ मुट्ठी भर लोगो को दिन मे चार बार उत्तमोत्तम भोजन करने बहुमूल्य वस्त्र पहनने ऊँचे ऊचे महलो एव बगलो मे रहने, मोटरो मे घूमने और नाना प्रकार के विलासो को भोगने का कोई अधिकार नही है।"[1] इन पंक्तियो से गरीब व्यक्तियो के जीवन की एक झलक मिलती है कि किस प्रकार वे अपना जीवन-यापन करते हैं।

सेठ गोविन्ददास ने 'महत्त्व किसे ?' नाटक मे भारतीय ग्राम की आर्थिक व्यवस्था का चित्रण प्रस्तुत किया है। जिस समय अंग्रेज भारत पर राज्य कर रहे थे उस समय भारत के ग्रामो की हालत शोचनीय थी। वहाँ के व्यक्तियो को पेट भर खाना भी प्राप्त नही होता था। लक्ष्मीपति, सच्चिनाथ और देशव्रत कर्मचन्द के सम्मान मे एक भोज देना चाहते हैं परन्तु कर्मचन्द भोज लेने के पक्ष मे नहीं है। वह उनसे कहता है—"मैं सोच रहा था कि जब इस देश के आधे से भी अधिक आदमियो को दोनो वक्त पूरा खाना भी नसीब नही होता जब यहाँ के सौ मे से निन्यानवे आदमी सूखे टुकडो से अपना पेट भरते हैं उस वक्त ये दावत कहाँ तक मुनासिब हैं।"[2] इस प्रकार कर्मचन्द्र दावत लेने से मना कर देते हैं और उन लोगो का ध्यान गरीब व्यक्तियो की ओर भी आकर्षित करते हैं।

सेठ जी ने 'गरीबी या अमीरी' नाटक मे भी भारतीय निधनता का उल्लेख किया है। अचला भारतीय व्यापारी शम्भोदास की कन्या है। उसका पिता दक्षिण अफ्रीका मे व्यापार करता है। अचला एक निधन व्यक्ति विद्याभूषण से विवाह कर लेती है। अफ्रीका से आने के पश्चात् वह समस्त आभूषण एव कीमती वस्त्र त्याग देती है और खादी के वस्त्र धारण करती है। अपने देश की हालत को देखकर वह

१ सेठ गोविन्ददास सेवापथ पृ १८
२ सेठ गोविन्ददास महत्त्व किसे ? पृ ११

हरिकृष्ण प्रेमी न 'बन्धन' नाटक मे मजदूरा की आपस म पत्तला की जूठन क लिए भी छीना झपटी दिखलाई है। रहीम लक्ष्मण स मजदूरा की गरीबी की ओर इंगित करता हुआ कहता है कि 'आजकल बेकारी, गरीबी और कंगाली क्या कम है। हमारी हालत कुत्ता से भी बदतर है। जो पत्तला की जूठन हमारे सामने डाली जाती है उसके लिए भी छीना झपटी जारी है।'[1] इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि जहाँ पत्तला की जूठन पर भी छीना झपटी हो—वहाँ की आर्थिक व्यवस्था कैसी होगी। ब्रिटिश भारत म भारतीया की यह हालत थी और अंग्रेज तथा ऊँचे अधिकारी और पूंजीपति गरीबा की कमाई पर ऐश करते थ और सुखी जीवन व्यतीत करते थ।

प्रेमी जी के 'शिवा साधना' नाटक म भी तत्कालीन भारतीय निर्धनता का चित्र अंकित किया गया है। रामदास देश के व्यक्तिया की गरीबी का वर्णन करता हुआ शिवाजी स कहता है कि मैंने बचपन स आज तक भ्रमण करने म ही अपना जीवन व्यतीत किया है। इस भ्रमण म मैंने जन्मभूमि का जो रूप देखा उससे मेरा हृदय टूक टूक हो गया। मैंने देखा कि धन-सम्पत्ति सब समाप्त हो गई है, सब प्रदेश सुनसान और निस्तब्ध हैं। जनता के पास खाने के लिए अन्न नही पहनने ओढ़ने को कपड़े नही, घर बनवाने को उपादान नहीं। यह देखकर मेरे हृदय म हाहाकार गरज उठा।[1] इन शब्दा म प्रेमी जी ने ऐतिहासिक कथा के माध्यम से ब्रिटिशकालीन भारत की आर्थिक अवस्था का हृदय विदारक दृश्य अंकित किया है। भारतीयो के पास न खाने को अन्न था न पहनने को कपड़े थे और न मकान थे। इस प्रकार भारतीय निर्धनता का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करना ही लेखक को अभीष्ट है।

(ग) श्रमिक वर्ग मे जागृति

इस युग म मिल मालिक, पूंजपति और जमींदार श्रमिकों का शोषण कर रहे थे और उनको अनेक प्रकार की यातानाएँ दी जा रही था। परिणामस्वरूप उनमे कुछ शिक्षित व्यक्तिया ने शोषण के विरुद्ध आवाज उठानी आरम्भ की। मिला म श्रमिका के संगठन बन चुके थे उन्होंने अपनी मांगा के लिए नारा लगाना आरम्भ कर दिया। इस स्थिति को देखकर इस युग क नाटककारा ने श्रमिका की जागृति का चित्रण करना आरम्भ किया। वृन्दावनलाल वर्मा के नाटक 'धीरे धीरे' म दयाराम धनी व्यक्ति गोपाल जी स कहता है—'श्रमजीवियो की मजदूरी के घंटे कम करने के लिए आपने अभी कुछ नही किया। पूंजीपतिया के मुनाफे का मजदूरा म बाँटने की योजना अभी तक काम में नहीं लाई गई। सब जमींदारियां का छीन कर

१ हरिकृष्ण प्रेमी बंधन पृ० २५

१ हरिकृष्ण प्रेमी शिवा साधना पृ ७४

अभी तक आपने किसानों में विभाजन नहीं किया।[1] इससे प्रकट हो जाता है कि श्रमिक लोग जमींदारों और मिलमालिकों के विरुद्ध जागरूक हो गये थे और अपनी स्थिति को सुधारने का प्रयास कर रहे थे।

नित्यानन्द हीरानन्द वात्स्यायन के 'मुकुट' नाटक में मजदूरों की दयनीय स्थिति का पता चलता है और उन्होंने अपनी दशा को सुधारने के लिए उचित माँगें रखना प्रारम्भ कर दी हैं। डा० मोहन मजदूरों के लिए कुछ सुधार के कार्य करना चाहता है पर वह बनारसी अपने पिता रायबहादुर से उनके विरुद्ध लड़ता है— वही तो मजदूरों को नये-नये क्रान्तिकारी समाजवादी संगठन और न जाने किस तरह की अनुशासनहीनता की बातें सुनाता रहता है। अगर हमारे कारखाने में कुछ भी गड़बड़ हुई तो सब उसकी जिम्मेवारी होगी।[2] इन शब्दों से प्रकट है कि मजदूरों में संगठन की भावना उत्पन्न हो चुकी है और उनमें समाजवादी विचारधारा का विकास हो चुका है। मिल मालिकों को यह भी पता चल चुका है कि शीघ्र ही मिलों में हड़ताल हो जाएगी। इस स्थिति में यह तथ्य प्रमाणित हो जाता है कि श्रमिक वर्ग में जागृति की भावना पनप चुकी है।

मिल के मजदूरों ने हड़ताल की धमकी दे दी है और वे शीघ्र ही हड़ताल कर देंगे। इस हड़ताल की सूचना पाकर माणिकचन्द मजदूरों को समझाता है कि हड़ताल तो तुम लोगों की शक्ति को ही नष्ट करती है। तुम्हारे इस कदम से उद्योग-धंधों को हानि पहुँचती है। इस व्याख्यान पर एक मजदूर अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करता है— मजदूरी नहीं दी जाती। हमारे बच्चे भरपेट भोजन नहीं पाते। हमारी औरतें असमय में ही स्वास्थ्य खो बैठती हैं। हम लोग जानवरों की तरह काम करने पर भी कुछ कमा नहीं पाते। बुढ़ापा आने पर हमारी क्या दशा होगी? या काम छूट जाने पर हमारा क्या होगा?[3] मजदूर केवल अपना पेट ही नहीं पालना चाहता अपितु वह कुछ उन्नति भी करना चाहता है। दूसरा मजदूर कहता है— 'हम सिर्फ इसलिए मेहनत नहीं करना कि पेट पाल सकें। हम तरक्की भी करना चाहते हैं। समाज में उन्नत होना चाहते हैं। मोहन बाबू ने हमें बताया है कि हम सिर्फ पेट पालने भर को ही पैदा नहीं करते हैं, उससे कई गुना अधिक पैदा करते हैं जो मालिक मुनाफे के तौर पर ले लेते हैं। उस मुनाफे का हिस्सा हमें भी मिलना चाहिए ताकि हम अपने बच्चों को पढ़ा-लिखा सकें—आदमी बना सकें।[4] मोहन मजदूरों में उन्नति और उचित शिक्षा की आवश्यकता पर बल देता हुआ कहता है— दिन भर काम करने के बाद सांस्कृतिक या नैतिक उन्नति, शिक्षा या मनोरंजन

---

1. भगवतीलाल वर्मा: धीरे धीरे, पृ० ६७
2. नित्यानन्द हीरानन्द वात्स्यायन: मुकुट, पृ० १
3. वही, पृ० ६७
4. वही, पृ० ६८

के लिए कुछ नहीं चाहिए ?"[1] इस प्रकार मोहन उनकी शिक्षा, मानसिक स्तर और मनोरंजन के लिए आवश्यक सुविधाएँ दिलाने के लिए प्रयत्नशील है।

माहन मजदूरों की पारिवारिक स्थिति का वर्णन करता हुआ माणिक्चन्द म कहता है—मजदूर का पारिवारिक जीवन है कहाँ ? एक छोटा सा वायु प्रकाश हीन घर—मानव रूपी पशुओं स भरा हुआ। पति कहीं पर काम कर, पत्नी कहीं और ममझला लडके लडकियाँ और कहीं। शाम को थके माँदे आना। बच्चों की चख चख। उसमे बचने के लिए गाली गलौज और मारपीट। यही है उनका पारिवारिक जीवन। वह भी अनिश्चित। उसका जीवन भोंपू से बँधा है। भापू बजने ही काम पर जाना भापू बजने पर खाना। वह किराए का मजदूर है। जो कोई उसे किराया दे सके—उसका गुलाम है।[2] इस प्रकार विवेच्य युग मे श्रमिक वर्ग अपने अधिकार और सुविधाओं के प्रति सजग हो चुका था।

मजदूरों की दयनीय स्थिति को देखकर सेठ गोविन्ददास ने हिंसा या अहिंसा नाटक मे उनकी दशा म सुधार दिखाया है। उनके लिए विद्यालय पुस्तकालय आदि खोले गए हैं। माधवदास माधव मिल का मालिक है। उसके पुत्र दुर्गादास ने मिल म काय करने वाले मजदूरों के लिए कुछ सुविधाएँ प्रदान की हैं। वह अपनी सौतेली मा स आगामी हडताल की सूचना देता है कि मिल मे हडताल होनेवाली है। माँ कहती है कि इसका सबब। दुर्गादास इसका उत्तर देता है कि सबब यह है कि मैंने इधर थोडी सी नरमी दिखा दी एक स्कूल लगवा दिया एक लाइब्रेरी खुलवा दी ट्रेड यूनियन बन जाने दिया।[3] इस प्रकार श्रमिकों म जागृति की भावना पनप चुकी थी और उनको कुछ सुविधाएँ प्रदान भी होने लगी थी।

(छ) मिलो मे हडताल

विवेच्य युग म श्रमिक वर्ग म जागृति की भावना पनप चुकी थी, यह स्पष्ट किया जा चुका है। मजदूरों न अपनी माँगे मिल मालिकों के सामने रखी परन्तु उन्होंने उनकी माँगे अस्वीकार कर दी। परिणामस्वरूप मजदूरों ने हडताल के नोटिस देने आरम्भ कर दिए और कारखाना तथा मिलों म हडताल आरम्भ हो गई। हेमराज माधव मिल म मजदूर यूनियन का सभापति है और त्रिलोचनपाल म त्री है। त्रिलोचनपाल मिल म हडताल कराना चाहता है। अपनी माँगों की स्वीकृति न देखकर वह हडताल करवाने म सफल होता है। हेमराज उसस कहता है कि तुम हडताल कराकर मालिकों की मालकियत छुडा सकते हो इनके गुनछर्रों को रोक सकते हो ? इस पर त्रिलोचनपाल उत्तर देता है— एक हडताल म न सही पर जब हडताल पर हडताल होगी सारे देश के मजदूर एक होकर जनरल हडताल करेंगे,

---

१ नित्यानन्द हारानन्द वात्स्यायन मुकुट पृ ६८

२ वही पृ ७१

३ सेठ गोविन्ददास हिंसा या अहिंसा पृ० १४

(ट) उद्योग-धन्धे

द्वितीय विश्वयुद्ध आरम्भ होने पर यद्यपि ब्रिटिश सरकार भारत में औद्योगिक विकास के विरुद्ध थी परन्तु युद्ध के लिए सामान तैयार करने के लिए उद्योग धन्धों को प्रोत्साहित किया गया। भारतीय पूंजीपतियों के लिए यह सुवर्ण अवसर था कि अधिक से अधिक सामान तैयार करें और आशातीत लाभ कमायें। परिणामस्वरूप उद्योग धन्धों और कृषि की ओर आवश्यक ध्यान दिया गया। वृन्दावनलाल वर्मा के 'धीरे धीरे' नाटक में कृषि और उद्योग धन्धों का प्रोत्साहित किया गया है। दयाराम गोपालजी का ध्यान छोटे छोटे व्यवसायों की ओर आकर्षित करता है— जिस तरह ब्रिटिश साम्राज्य सेना की मद पर अरब मीच कर रुपया बहाती है उसी तरह जब तक आप कृषि और शिल्प की खुले हाथों सहायता न करेंगे कुछ व्यय व्यर्थ न करेंगे—तब तक जलते तवे पर बूंद डालने से क्या होना है? भूखा किसान और टूटा शिल्पी सहायता के लिए आपके सामने आज हाथ पसारता है तो बरसों बाद आपके सेक्रेटरी के कान पर जूं रेंगती है।"[1] इस युग में बेकार लोगों की कमी नहीं थी, वे समाज में एक प्रकार से बोझ बने रहे थे। वे आवश्यक रोजगार की तलाश में एक जुलूस बना कर आते हैं उनका नारा है कि पढ़े लिखे होने पर भी बेकार हैं। रोजगार दीजिए। सचिव महोदय गोपाल जी से कहते हैं कि कृषि ऐसा व्यवसाय है जो अधिकांश बेकारों को रोजी दे सकता है। कृषि और उद्योग धन्धों की उन्नति वर्तमान ढांचे का सुधारते हुए की जाये तो ...।[2] इस प्रकार इस नाटक में कृषि और उद्योग धन्धों को प्रोत्साहन देने का प्रश्न उठाया गया है। यदि कृषि और उद्योग धन्धों को व्यवस्थित रूप से कार्यान्वित किया जाय तो बेकारी की समस्या का निदान हो सकता है।

सेठ गोविन्ददास ने सन्तोष कहां नाटक में कृषि के साथ-साथ कुटीर-उद्योग को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता पर बल दिया है। रमा मनसाराम को कहती है कि बाल भवन को छोड़कर स्कूल दोनों बोर्डिंग हाउस अनाथालय—अस्पताल और खेती तथा बगीचा आप देख सकते हैं। इस पर मनसाराम कहते हैं— अब और क्या-क्या आरम्भ करना है? ये संस्थाएँ ठीक ढंग से चलने लगी। फार्म को देख कर किसान खेती की उन्नति कर ही रहे हैं। कागज बनाने की और इसी तरह और भी छोटी छोटी कॉटेज इन्डस्ट्रीज भी चलने लगी हैं। कपड़ा भी लोग चरखा और करघों से बना कर पहनने और स्वावलम्बी होते जा रहे हैं।[3] सेठ जी ने इस नाटक में छोटे छोटे लघु उद्योगों की ओर भी ध्यान दिया है। वास्तव में गांधीजी ने

१ वृन्दावनलाल वर्मा धीरे धीरे पृ० ८६ ८०
२ वही पृ० ८८
३ सेठ गोविन्ददास सन्तोष कहां, पृ० ५४ ५५

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटक (१९४८—१९६५ ई०)

स्वतन्त्रता अपने आपमें एक जीवन्त मूल्य है, जिसका किसी राष्ट्र के साहित्यिक राजनीतिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन में महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। विविध क्षेत्रों में नवीन सम्भावनाओं के द्वार खुलते हैं और चिरसंचित आशा आकांक्षाओं के अनन्त अवसर प्राप्त होते हैं। जीवन समाज और साहित्य, में बदलाव के स्वर गतिशील होते हैं। स्वतन्त्रता से पूर्व हमारी अपनी राष्ट्रीय समस्याएँ थी, विभिन्न क्षेत्रों की अपनी आवश्यकताएँ थी। लेकिन विदेशी सरकार हमारी सुख सुविधाओं को नहीं देखती थी। उसका लक्ष्य तो मात्र अपना हित सम्पादन था। अतः तत्कालीन नाट्य साहित्य में इतिहास और संस्कृति के माध्यम से हमारे नाटककारों ने राष्ट्रीय चेतना फूंकी। लेकिन आज राष्ट्र स्वतन्त्रता के नये मोड़ से गुजर चुका है नये विचारों की विभिन्न विचार-सरणियाँ विभिन्न नाटकों के रूप में हमारे सामने आ रही हैं जिनमें भावी समाज के भव्य रूप की परिकल्पना की गई है।

इन नाटककारों के समक्ष जमींदारी उन्मूलन, भूमि सुधार के विभिन्न रूप संयुक्त परिवार का टूटना, नारी शिक्षा परम्परा और प्रगतिवादी वर्गों का संघर्ष आर्थिक विषमताएँ एवं विभिन्न सामाजिक समस्याएँ उभर कर आयी हैं। समाज में व्याप्त बेकारी और निर्धनता ने धार्मिक प्रतिमानों को निस्सार-सा कर दिया है। अन्धविश्वास छुआछूत छोटे बड़े का संघर्ष आदि समाज की जड़ें अन्दर ही अन्दर खोद रहे हैं। संयुक्त परिवार आधुनिक शिक्षा के कारण जहाँ टूट रहे हैं वहाँ युवकों में स्वावलम्बन की भावना को भी बढ़ा रहे हैं। चारों ओर के संक्रान्तिक वातावरण में निराधार परम्पराएँ टूट रही हैं आर्थिक विषमता वर्ग संघर्ष का बीज वपन कर रही है और नाटककार इन सबके बीच से अपनी अनुभूति-यात्रा तय कर रहा है। आज का नाटककार वर्तमान के स्वरों को चारों ओर से बटोर कर समाज के समक्ष विभिन्न तौर-तरीकों से प्रस्तुत कर रहा है। वर्तमान की अभिव्यक्ति ही उसका अभिप्रेत है ताकि जन-जीवन की समस्याओं का रूप उजागर हो और हम उनके निराकरण हेतु सचेत हों।

नाटकों में अभिव्यक्त राजनीतिक चेतना का स्वरूप

(क) देश प्रेम का स्वरूप

हरिकृष्ण 'प्रेमी' के नाटकों में देश प्रेम सर्वोपरि तत्त्व है। उनके प्राय सभी

देश प्रेम और स्वतन्त्रता को अधिक महत्ता प्रदान कर रहा है। बहादुरशाह जफर भारत का अंतिम मुगल सम्राट इस देश की स्वाधीनता के लिए अपने आपको अंग्रेजों के यहाँ कैद पाता है। वह १९५७ ई० की लडाई में देश प्रेम की भावना का, पूर्ण स्वाधीनता का समर्थक है। समग्र रूप में नाटककार ने उसे देश प्रेम की भावना से ओत प्रोत दिखाया है और वह मरते दम तक पराधीनता स्वीकार नहीं करता। प्रेमी जी इस चरित्र के द्वारा देशवासियों में देश प्रेम की भावना भरना चाहते हैं।

प्रेमी जी ने विषपान नाटक में देश प्रेम की भावना को व्यक्तिगत स्वार्थ स्वाभिमान और जातीय भावना से ऊपर माना है। देश को सर्वोपरि मानता हुआ दौलतसिंह संग्रामसिंह से अपना मत प्रकट करता है—'हम अपने भेद भाव मानापमान स्वत्व और स्वार्थ भूलकर अपने देश के लिए एक हो जायें। यदि हमें राष्ट्र का भिखारी बनना पड़े तो भी कोई चिन्ता न करें। यदि देश भक्तावतों की शाखा-प्रशाखा नष्ट हो जाए फिर भी यदि देश की रक्षा हो सके तो तुम उसे अपना गौरव समझो। देश पारस्परिक प्रतिष्ठा जाति गौरव और वंशाभिमान से कहीं बड़ी चीज है। उसके लिए हम स्वाभिमान की भी हत्या करनी पड़ेगी।'[1] वह देश के लिए कर्तव्य की भावना पर बल देता हुआ मानसिंह से कहता है—'प्रत्येक मनुष्य अपने कर्तव्य का पालन करे। दूसरे की त्रुटियाँ देखने की ओर उसका ध्यान न हो—तो बहुत कुछ अनायास हो जाय। हम देश हित को निज मान से ऊपर स्थान देकर त्याग और उदारता का परिचय देना चाहिए।'[2] आज भी स्वतन्त्र भारत में कुछ व्यक्ति अपने वंशाभिमान और जातीय भावना को अधिक महत्व देते हैं उनके लिए नाटककार ने देश प्रेम की भावना का स्पष्ट संकेत किया और नाटक के माध्यम से इंगित किया है कि उनको देश हित ही सर्वोपरि समझना चाहिए।

प्रेमी जी के साथ की सृष्टि नाटक में देवल और उसकी माता कमलावती ने देश प्रेम को सर्वोपरि माना है। उनको इस्लाम धर्म स्वीकार करने की धमकी दी गई परन्तु उन्होंने न तो इस्लाम धर्म ही स्वीकार किया और न बादशाह अलाउद्दीन से विवाह किया। वे अपने राष्ट्र से प्रेम करती रहीं और अलाउद्दीन खिलजी के बार-बार प्रलोभन देने और धमकी देने पर भी अपनी आन पर अड़ी रहीं। इस प्रकार नाटककार ने अपने पात्रों के द्वारा राष्ट्र प्रेम की भावना को प्रोत्साहित करते हुए चित्रित किया है।

भारत सदियों से पराधीन रहा था इसलिए स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिए प्रेमी जी प्रत्येक भारतीय को सैनिक बनाना चाहते हैं। शपथ नाटक में विष्णुवर्धन अपने मित्र भट्टार्क से कहता है—आवश्यकता है जनता में निर्भयता आत्मविश्वास समृद्ध-बल पर आस्था और देश के प्रति कर्तव्य भावना को जाग्रत

१ हरिकृष्ण प्रेमी विषपान, पृ० २५
२ वही पृ० ११३

न कोई भाई है न बहिन न पिता, न माता, न कोई सम्बन्धी। ये क्रान्तिकारी तो देश की रक्षा के लिए ही उत्पन्न होते हैं। गोली से खेलनेवाले इस दल के नेता स्वामी एक स्थान पर अपनी नीति स्पष्ट करते हुए कहता है कि यह आग पर चलने का मार्ग है। स्नेह प्रेम नाम की चीज यहां नहीं है। संयम, ब्रह्मचर्य कर्त्तव्य और देश प्रेम शत्रुओं से मातृभूमि का उद्धार। हमको अपने दल के लिए लोहे के आदमी चाहिए। यह महाभारत का युद्ध है वीणा देवी। कर्त्तव्य के लिए हम युद्ध करते हैं चाहे कोई भी हो। प्रस्तुत चित्रण में क्रान्तिकारियों की देश भक्ति का अटूट विश्वास परिलक्षित होता है।

देवराज दिनेश ने 'मानव प्रताप' नाटक में मातृभूमि की रक्षा करने का सन्देश दिया है। भारत को सदियों के पश्चात् स्वतन्त्रता प्राप्त हुई थी और इसकी रक्षा करना प्रत्येक भारतवासी का कर्तव्य है। नाटककार ने राणा प्रताप के चरित्र को अंकित कर के यह दिखलाने का प्रयास किया है कि किस प्रकार प्रताप ने अनेक विपत्तियों का सामना करते हुए विदेशियों से अपनी मातृभूमि की रक्षा की थी। खाद्य-सामग्री के समाप्त हो जाने पर जंगल की घास फूस की रोटी खाकर तथा भूखे रहकर भी प्रताप अपनी मातृभूमि की रक्षा करने में सफल होता है। देश प्रेम के लिए वह अपने सारे परिवार को खतरे में डाल देता है परन्तु फिर भी उसमें देश प्रेम की भावना कूट कूट कर भरी है। इस चित्रण से स्पष्ट हो जाता है कि दिनेशजी देश की रक्षा करने के लिए सर्वस्व अर्पण करने का सन्देश देना चाहते हैं।

चीन ने १९६२ ई० में अचानक भारत पर आक्रमण कर दिया परन्तु देश के सैनिक ने मातृभूमि की रक्षा के लिए अपने तन मन धन की बाजी लगा दी। अपने देशवासियों को उत्साहित करने के लिए ज्ञानदेव अग्निहोत्री ने 'नेफा की एक शाम' नाटक की रचना की। देश की रक्षा करने के लिए गोगो ने चीनी दस्ते पर आक्रमण किया और उनकी सारी युद्ध सामग्री प्राप्त कर ली। इसका वर्णन करता हुआ गोगो देवल से कहता है कि दस चीनियों का एक दस्ता सियांग नदी के पुल पर बैठा खा पी रहा था। अन्धेरे में सरकते हुए हम सब उनके ठीक पीछे जा पहुँचे और सब को गोलियों से भून डाला। तमाम हथियार और गोला-बारूद हमारे हाथ लगा।[1] अन्त में नीमो और देवल दोनों भाइयों ने देश की रक्षा के लिए अपने जीवन की कुर्बानी दे दी। उनकी माता मातई को खुशी है कि उसके दोनों बेटे देश की रक्षा के लिए काम आए। गोगो मातई को धैर्य बँधाता हुआ कहता है— तुम्हारे लाखों बेटे और हैं मातई। वे सब आ रहे हैं आजादी के देवता को अपना जवान लहू देने के लिए।'[2] इस नाटक में अग्निहोत्री ने नीमो और देवल के चरित्र का अंकन करके

१ ज्ञानदेव अग्निहोत्री नेफा की एक शाम पृ २३
२ वही पृ १२७

दुर्गा सैनिकों से अनुरोध करती है कि जिस शासन में जनता की आवाज नहीं सुनी जाती उसके नियमों का भंग करना जनता का कर्तव्य हो जाता है। तुम्हें यही बात प्रत्येक मेवाड़ी को समझा देनी है। हमारा पहला भाव जन जागृति का है। शत्रु हमारे बीच जाति भेद, और वर्ग भेद गढ़े करके हमें परस्पर लड़ा कर शक्ति क्षीण करेगा और फिर अपना फौलादी पंजा इस देश पर दृढ़तापूर्वक फैलाएगा।[1] स्वातन्त्र्य पूर्व-युग में स्त्री भेद भावना के कारण भारत को अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पड़े और सदियों तक पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा रहा। नाटककार का विचार है कि कहीं इस प्रकार की भूल पुनः न हो जाए इसलिए उन्होंने अपने नाटक के द्वारा एकता स्थापित करने का प्रयास किया है।

प्रेमी जी 'विदा' नाटक की प्रस्तावना में लिखते हैं कि "अब हम स्वतन्त्र हैं और हम बहुत बलिदानों के पश्चात् प्राप्त की गई इस स्वतन्त्रता की रक्षा करनी है अपनी दुर्बलताओं को दूर करना है और देश को सुखी और समृद्ध बनाना है। यह तभी सम्भव है जब हम एकता के सूत्र में बँधकर देश के उत्थान में जुट पड़ें। महात्मा गांधी ने देश की एकता की रक्षा करने के लिए प्राण दे डाले। भारत सब वर्गों जातियों और धर्मों का है। सबमें भाईचारा होना चाहिए सब को समान सुविधाएँ तथा अधिकार प्राप्त होने चाहिए और सब राष्ट्रीयता की भावना से एकसूत्र में बंधे रहने चाहिए यही गांधीजी की कामना थी।[2] गांधीजी का प्रभाव प्रेमी जी पर परिलक्षित होता है और उनकी एकता की भावना से प्रेरित होकर प्रेमी जी ने उनके आदर्शों पर चलने की योजना बनाई है। गांधीजी चाहते थे कि भारत में सब धर्मों को समान अवसर मिले और प्रेमी जी ने इसी भावना को इस नाटक में दिखलाने का प्रयास किया है। दुर्गादास राष्ट्रीय भावना को बताते हुए महारानी से कहते हैं— "मैं चाहता हूँ कि भारत में एक ऐसे साम्राज्य की स्थापना हो जिसके पीछे जन बल हो जिसमें प्रत्येक धर्म को विकसित होने का अवसर मिले।[3] प्रेमी जी का आशय यह है कि आपसी धार्मिक झगड़े न होकर सब धर्मों की उन्नति हो और उनमें एकता स्थापित हो।

प्रेमी जी 'रक्तदान' नाटक में हिन्दू और मुसलमानों का समान भाव से रहने और राष्ट्रीय भावना के प्रति निष्ठावान होने का संकेत देते हैं। बहादुरशाह अपनी प्रजा के नाम एक आदेश देते हैं कि "दिल्ली में रहनेवाले हर मुसलमान को, चाहे वह साधारण नागरिक हो या सेना में काम करता हो, आदेश दिया जाता है कि ईद के पवित्र त्यौहार पर गाय जिबह नहीं की जाय। यदि किसी मुसलमान ने इस आदेश के विरुद्ध कार्य किया तो उसे तोप के मुँह से उड़ा दिया जाएगा। यदि किसी मुसलमान ने गो वध हेतु किसी को प्रोत्साहित किया तो उसको भी प्राण-दण्ड दिया

१　हरिकृष्ण प्रेमी　उद्धार पृ० ६३
२　हरिकृष्ण प्रेमी　विदा प्रस्तावना पृ० ३
३　वही पृ० ९८

जाएगा। हिंदू और मुसलमान दोनों भारत की सन्तान है दोनों भाई भाई हैं दोनों को एक दूसरे की धार्मिक भावनाओं का ध्यान रखना आवश्यक है। इस समय जब कि भारत की स्वतन्त्रता के लिए हिंदू और मुसलमान दोनों प्रयत्न कर रहे हैं हम अपनी राष्ट्रीय एकता हर हालत पर कायम रखनी है।[1] यद्यपि इस नाटक के प्रकाशन से पूर्व भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हो चुकी थी परन्तु प्रेमीजी के मतानुसार स्वतन्त्रता को स्थायित्व प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय भावनाओं का होना अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए आपसी धार्मिक भेदभाव नहीं होना चाहिए और हिंदू मुसलमानों को आपस में मिलकर समान भाव से रहना चाहिए।

हरिकृष्ण प्रेमी ने कीर्ति-स्तम्भ नाटक में पारस्परिक कलह और एकता के अभाव की ओर संकेत किया है। वे कहते हैं कि भारत में संकीर्णता बहुत फैली हुई है। संग्रामसिंह राजधानी में भारत की सामाजिक संकीर्णता के विषय में कहते हैं— हम छोटे छोटे राज्य जाति और वर्ण की संकीर्णताओं के बाहर दृष्टि ले ही नहीं जा सकते। भारत की शक्ति अपार है किन्तु अजेय नहीं है। वह अजेय हो सकती है यदि भारतीयों में दूरदर्शिता आ जाय संकीर्णताओं की सीमाएँ तोड़ी जा सकें व्यक्तिगत हित के ऊपर हम सामूहिक हित का ध्यान रखना सीख सकें और सम्पूर्ण देश का जनबल किसी एक झण्डे के नीचे आ सके।[2] इस नाटक में प्रेमी जी ने राष्ट्रीय एकता की ओर संकेत किया है और सबके समान हित को महत्ता प्रदान की है।

प्रेमी जी ने राष्ट्रीय एकता को स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए सबसे अधिक महत्त्व दिया है। उन्होंने विषपान नाटक की भूमिका में लिखा है कि राष्ट्रीय एकता का अभाव इस देश की सबसे बड़ी कमजोरी है। इस संघर्ष के युग में यदि हम ऊंचा सिर करके चलना चाहते हैं तो पहले राष्ट्रीय एकता स्थापित करें। मैंने अपने ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास को इस रूप में उपस्थित किया है कि जिससे देश प्रेम और राष्ट्रीय एकता की भावनाएं पनपें। आज भी हमारे देश में हिंदू हित मुस्लिम हित और सिख हित के नारे लगाये जा रहे हैं।[3] प्रेमी जी इन जातीय हितों को समाप्त करके राष्ट्रीय हित की कामना करते हैं। सीता की मूर्ति नाटक में कमलावती अलाउद्दीन खिलजी से घृणा करती है। इस घृणित भाव को देखकर अलाउद्दीन को बेगम माहरू कमलावती से कहती है— जब तक हिन्दुस्तानी मिलाजुला रहम एक दूसरे के दुख-दर्द में शामिल नहीं होंगे—जब तक सारे हिन्दुस्तानी एक जाजम पर बैठकर खाना नहीं खा सकेंगे—जब तक इनके यहाँ आठ घरों के लिए नौ चूल्हों की जरूरत रहेगी तब तक अलाउद्दीन के अत्याचारों को कौन रोक सकता

---

१ हरिकृष्ण प्रेमी रक्षाबन्धन पृ ११६

२ हरिकृष्ण प्रेमी कीर्ति-स्तम्भ पृ ११३

३ हरिकृष्ण प्रेमी विषपान भूमिका पृ ८

है। जो भारतीय विदेशियों से लड़ते समय भी युद्ध करने की अपेक्षा छूत छात पर ही अधिक ध्यान रखते हैं—उनका उद्धार कैसे हो सकता है?"[1] स्वतन्त्र भारत की राष्ट्रीय एकता में छूत छात की भावना भी एक बाधा है। प्रेमीजी छूत छात की भावना को भी समाप्त करने के पक्ष में हैं।

प्रेमीजी ने 'शतरंज के खिलाड़ी' नाटक में एकता के उद्देश्य की ओर इंगित करते हुए लिखा है—"शतरंज के खिलाड़ी में मेरा प्रिय विषय साम्प्रदायिक एकता है जिसे जरा उदार होकर सोचने पर राष्ट्रीय एकता, जरा गहरे उतरने पर सांस्कृतिक एकता और जरा और गहरे उतर कर देखने पर मानवीय एकता भी कह सकते हैं।"[2] अलाउद्दीन अपने सेनापति महबूब खाँ से कहता है कि भारत में एकता की बहुत कमी है। आज भारत में जाति भेद ने इस एकता को समाप्त कर दिया है। ब्राह्मण शूद्र का छूना भी पाप समझता है। जातीय भावना ने सारे भारत की एकता को खण्डित किया है। यहाँ परस्पर प्रेमभाव की कमी है। महबूब खाँ रत्नसिंह से प्रेम भाव की ओर संकेत करता हुआ अपने उद्गार व्यक्त करता है कि बिखरी हुई शक्तियाँ—तलवार में नहीं प्रेम के धागे से एक की जा सकें तो क्या वह सारे संसार पर अपने प्रेम का साम्राज्य स्थापित नहीं कर सकता? रत्नसिंह इसका उत्तर देता है—लेकिन मैं जानता हूँ—ये बिखरी हुई शक्तियाँ एक नहीं हो सकतीं। हमारी जाति में घृणा के बीज प्राणों में घर कर गए हैं—हम एक दूसरे की जड़ खोदने का प्रयत्न कर अपने ही आपको निर्बल बना रहे हैं।[3] इन शब्दों के द्वारा प्रेमी जी ने जातीय असहयोग पर दुःख व्यक्त किया है।

भारतीय संविधान में यह घोषणा की जा चुकी है कि व्यक्तिगत तथा जातीय धर्म में राज्य की ओर से कोई हस्तक्षेप नहीं होगा। जगदीशचन्द्र माथुर ने 'शारदीया' नाटक में इसी घोषणा की ओर संकेत किया है। नरसिंह श्री दौलतराव सिंधिया से कहते हैं कि हैदराबाद के निजाम से विजय प्राप्त करके दो आवश्यक घोषणाएँ करनी होंगी। पहली घोषणा तो यह कि दोनों राज्यों में हिन्दू और मुसलमानों को अपने धर्म-काज करने की पूरी आजादी होगी न दखन में गौवध होगा, न महाराष्ट्र में खुदा परस्ती पर रोक टोक। और दूसरी घोषणा यह कि हिन्दू और मुसलमान दोनों परमात्मा की एक बराबर संतान हैं। इसलिए न हिन्दू मन्दिरों पर आघात होगा न मुसलमान मजारों, पीरों और पैगम्बरों का अपमान किया जाएगा। दोनों एक दूसरे के साथ मेल मिलाप से रहेंगे।[4] इस प्रकार नाटककार ने दोनों जातियों को परस्पर मेल मिलाप से रहने पर विशेष बल दिया है।

सेठ गोविन्ददास ने 'अशोक' नाटक में अहिंसा और प्रेम के द्वारा एकता

---

१ हरिकृष्ण प्रेमी सांपों की सृष्टि पृ० ३
२ हरिकृष्ण प्रेमी शतरंज के खिलाड़ी भूमिका पृ० ४
३ हरिकृष्ण प्रेमी शतरंज के खिलाड़ी पृ० ७३
४ जगदीशचन्द्र माथुर शारदीया पृ० ४४

में बहका लिए जाते हैं और तब वे आपस में ही लड़ने झगड़ने लगते हैं। इन बातों में उलझ कर देश की चिन्ता किसी को नहीं रहती। यहां तक कि बहुत से सरकारी अफसर भी इन्हीं कमजोरियों के शिकार हैं।[1] नाटककार ने आधुनिक भारत में व्याप्त इस भेदभाव की भावना को समाप्त करने का प्रयास किया है और चेतावनी दी है कि सामान्य जनता इस प्रकार बहकावे में न आए।

डा० दशरथ ओझा ने भारत विजय नाटक में बिखरी हुई शक्ति को एकता के सूत्र में बांधने का प्रथम प्रयास किया है। जिस समय इस नाटक की रचना की गई उस समय भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हो चुकी थी और सरदार पटेल ने अपनी शक्ति से समस्त रियासतों को स्वतन्त्र रूप में मिलाकर एक महान् और कठिन कार्य सम्पन्न किया था। नाटक के अध्ययन से परिलक्षित होता है कि नाटककार भी सरदार पटेल से प्रभावित है। इस नाटक में समुद्रगुप्त भारत की समस्त बिखरी हुई शक्ति को एकत्रित करता है और शकों को देश से बाहर निकालने में सफल होता है। इस खुशी में योगीराज समुद्रगुप्त से कहते हैं— 'समुद्र तुम्हारा कार्य महान् है समस्त भारत को एकता के सूत्र में ग्रथित करना साधारण कार्य नहीं है। इसे तुम्हारे जैसा कोई विरला पुण्यात्मा सम्पन्न कर सकता है।'[2] डा० दशरथ ओझा ने समस्त भारत की बिखरी शक्ति को एकता के सूत्र में बांधकर देशवासियों को एकता की भावना में विश्वास रखते हुए चित्रित किया है।

आज के युग में दलबन्दी एक विकट समस्या है। एक दल दूसरे दल की त्रुटियाँ निकालता रहता है। इनमें परस्पर एकता की भावना को न देखकर वृन्दावन लाल वर्मा ने कवट नाटक में इसका विशद् वर्णन किया है। इस नाटक में कुछ राजनीतिक दल तुलसी की समाधि पर गान्धारी की मूर्ति स्थापित करना चाहते हैं परंतु वह अपनी मूर्ति की स्थापना के पक्ष में नहीं है। वह सब दलों के व्यक्तियों को एकत्रित करके समझाने का प्रयास करती है और उनसे कहती है— आप सब दलबन्दियों के दल दल की कीचड़ उछालते रहिए। इतने बड़े बड़े गड्ढे खोदते चले जाइए जिसमें देश की संस्कृति और प्रगति गड़ती चली जाए। देश की रोटी, कपड़ा संस्कृति और प्रगति की समस्याओं का हाथ में न लेकर आपसी फूट की आग लगाते चले जाइए जिसमें तुलसी सरीखी कई कलियाँ खाक होती चली जायें।[3] इस प्रकार इस नाटक में वर्मा जी ने राजनीतिक दलों की पारस्परिक फूट की ओर संकेत किया है। उनका विचार है कि यदि समस्त राजनीतिक दल आपस में सहयोग से कार्य करें तो देश की विकट से विकट समस्याएँ भी सुलझ सकती हैं।

पारस्परिक फूट से सम्पूर्ण देश को हानि पहुँचती है। इसका चित्रण डा० रामकुमार वर्मा ने अपने नाटक 'नाना फड़नवीस' में किया है। नाना फड़नवीस ने बतलाया

---

1 चन्द्रगुप्त विद्यालंकार न्याय की रात पृ० १६
2 डा० दशरथ ओझा भारत विजय पृ० ९६
3 वृन्दावनलाल वर्मा कवट पृ० १३

है कि आपसी फूट के कारण ही पानीपत के युद्ध में हमारी पराजय हुई और अनेक वीरों को मृत्यु का मुँह देखना पड़ा। फड़नवीस राघोबा से कहते हैं— "काका! पानीपत के युद्ध में महाराष्ट्र का भयानक पराभव हुआ। परस्पर की फूट से हमने अपना देश और धन तो खोया ही न जाने कितने वीरों के रक्त से देश की शस्य श्यामल भूमि लाल कर दी। विदेशी हमें खिलौनों की भाँति सताकर हम पर हँसते हैं और एक दूसरे के ऊपर उछालकर तोड़ रहे हैं। सोचिए समझिए काका। परस्पर की फूट भारत के लिए अभिशाप बनी हुई है। इस अभिशाप को सदा के लिए समाप्त कर दीजिए।"[1] इस चित्रण द्वारा वर्मा जी ने आधुनिक भारत की फूट की ओर संकेत किया है कि आज किस प्रकार देश में प्रान्तीयता है और भाषा के कारण एकता खण्डित हो रही है। देश में पारस्परिक भेद के कारण ही अनेक राज्यों में आपस में अच्छे सम्बन्ध नहीं हैं। अतः इस नाटक में पारस्परिक सहयोग की भावना पर विशेष बल दिया गया है।

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल ने रक्तकमल नाटक में पारस्परिक भेदभाव की ओर संकेत किया है। आज स्वतन्त्र भारत में भेदभाव के कारण अपेक्षित जागरण नहीं हो रहा है। कमल अपने एक भाषण में कहता है— "आज़ादी के बाद हमारे देश को जिस एकता के सूत्र में बँधना चाहिए था वह नहीं बँधा। भाषा के आधार पर अलग अलग प्रान्तों की माँग और अलग अलग प्रान्तों के आधार पर अपनी अपनी भाषा की बुनियाद। इतनी लम्बी गुलामी के बाद बेशकीमती आज़ादी की हमने इज्ज़त नहीं की क्योंकि आज़ादी के बाद मुल्क में जितना जागरण होना चाहिए था वह नहीं हो सका है लम्बी गुलामी की वजह से जर्जरित देश को जहाँ एकता की डोर में बाँधकर पहले इसके पुनर्निर्माण की आवश्यकता थी वहाँ इसे प्रान्तीयता जातिवाद साम्प्रदायिकता अराष्ट्रीयता के दलदल में ला धरा।"[2] डॉ० लाल ने इस नाटक में यह दिखाया है कि स्वतन्त्र भारत में प्रान्तीयता जातिवाद एवं अराष्ट्रीयता की भावना बढ़ रही है और इसी कारण से अपेक्षित उन्नति नहीं हो रही है। समग्र रूप से डॉ० लाल का यह विचार है कि हम इन क्षुद्र भावनाओं का त्याग कर एकता की ओर बढ़ना चाहिए तभी अपेक्षित उन्नति हो सकती है।

(ग) भ्रष्टाचार

भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हो चुकी है और एक सुव्यवस्थित शासन भी स्थापित हो चुका है परन्तु सरकार अभी तक भ्रष्टाचार को रोकने में सफल नहीं हुई। आज कल सर्वत्र भ्रष्टाचार का बोलबाला है। नियुक्तियों के सम्बन्ध में प्रत्येक अधिकारी अपने सम्बन्धी को नियुक्त करना चाहता है चुनाव में जाने जाने पर प्रत्येक प्रत्याशी अपने लाभ की ओर देखता है कार्यालयों में प्रत्येक पदाधिकारी अपना व्यक्तिगत

---

१ डॉ० रामकुमार वर्मा नाना फड़नवीस पृ० ८३

२ डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल रक्तकमल पृ० ५

लाभ देखता है। इस प्रकार समाज के प्राय प्रत्येक क्षेत्र म भ्रष्टाचार व्याप्त है। इस भावना को नाटककारो ने अपने नाटक में चित्रित करने का प्रयास किया है।

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने न्याय की रात नाटक म भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज उठाई है। हेमन्त आधुनिक समाज म एक प्रसिद्ध व्यक्ति है। वह भ्रष्टाचार फैलाने मे चलता पुर्जा समझा जाता है। उसका एक मित्र सदानन्द किसी बडे पद पर आसीन है। वह अनेक व्यक्तियो से रुपया लेकर सदानन्द के माध्यम से नौकरी दिलवा देता है। उसने एक जवान शरणार्थी लडकी को सदानन्द के पास भेजा और उसन उसको अपना सचिव रख लिया और बाद म उसको किसी जालसाजी मे फसा लिया। इसी प्रकार जुगलकिशोर यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन द्वारा परचेज अधिकारी चुना गया है परन्तु सदानन्द उस न रखकर किसी अपने सम्बन्धी को रखना चाहता है। फिर भी किसी न किसी भांति जुगलकिशोर उस पद पर नियुक्त हो जाता है। वह सिफारिश के विषय म कहता है कि किसी भी जगह वह पुरानी बात नहीं रही। हर जगह खुशामद, पक्षपात और तिकडमबाजी का दौरदौरा है। योग्यता की कोई कद्र नही करता। तिकडमबाज अत्यन्त अयोग्य होते हुए भी तरक्की पाते चले जाते हैं।[1] राजीव एक ईमानदार भारतीय नागरिक है और वह हेमन्त की छानबीन करता है। हेमन्त अपने पेशे के विषय मे सब कुछ बताता हुआ कहता है—'मेरा पेशा है बेईमान व्यक्तियो के लिए परमिटो का इन्तजाम करना बेईमान और लालची व्यवसायियो को बडे-बडे ठेके दिलवाना और यह सब काम मैं कर पाता हूँ ऊँचे ओहदों पर विद्यमान कुछ बेईमान और विश्वासघाती सरकारी अफसरो की सहायता से।'[2] अन्त म हेमन्त अपना अपराध स्वीकार कर लेता है। इस नाटक म भ्रष्टाचार के विरुद्ध आक्रोश दिखाया गया है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अपने नाटक दशाश्वमेध म शासन सम्बन्धी भ्रष्टाचार की ओर सकेत किया है। वीरसेन अगारक से शासन के भ्रष्टाचार की ओर इगित करता हुआ कहता है कि जिस राज्य म शासक को जनता के पेट भरने की चिंता नहीं होती, वहां के लोग जनता का पेट काटकर अपने भण्डारो को भरते रहते हैं और समय पडने पर जब यहाँ भूख की आग धधकने लगती है तो राज्य जलकर स्वाहा हो जाता है।[3] इस चित्रण से यह सकेत मिलता है कि नाटककार की दृष्टि म शासन जनता की ओर अधिक सजग नही।

आजकल के शासन म मजदूर लोग ठीक समय पर काम नहा करते और सरकारी द्रव्य का व्यय करते हैं। जगदीशचन्द्र माथुर ने कोणार्क नाटक म मजदूरो के ठीक समय पर काम न करने की प्रवृत्ति की ओर संकेत किया है। चालुक्य विशु म कहते हैं कि मजदूर समय पर काम नही करते और समय को यूं ही नष्ट

---

१ चन्द्रगुप्त विद्यालंकार न्याय की रात पृ० ८१-८२
२ वही पृ० ११४
३ लक्ष्मीनारायण मिश्र दशाश्वमेध पृ ५७

कि तुम्हारे पिता ने खूब रिश्वत ली है परन्तु गुलाब उसे अपने पिता का वास्तविक अधिकार मानती है। इस पर रीता कहती है— 'हरगिज नहीं। यही कारण है कि हमारे देश में बेईमानी चरित्रहीनता पक्षपात स्वार्थ सिद्धि के भाव देश के स्वतन्त्र होने पर भी गए नहीं हैं।'[1] इस प्रकार भट्टजी ने सरकारी अधिकारियों को भी रिश्वत लेते हुए चित्रित किया है। ये अधिकारी रिश्वत लेकर ही लोगों के कार्य करते हैं।

उपेन्द्रनाथ अश्क ने 'पतरे' नाटक में रिश्वत की समस्या की ओर दृष्टिपात किया है। इसमें दिखाया गया है कि शराब की बोतल पर भी रिश्वत देनी पड़ती है और तब ब्लैक से बोतल मिलती है। इसके अतिरिक्त मकान-समस्या और शोषण की झाँकी भी प्रस्तुत की गई है। एक युवक शाहबाज से शराब की बोतल के विषय में कहता है कि शराब की बोतल ब्लैक से लानी पड़ती है, पुलिस के हाथ पड़ जाएँ तो ...।[2] अश्क जी ने अंजो दीदी नाटक में बड़े-बड़े पदों के लिए भ्रष्टाचार के रूप को दिखाया है। इसमें नीरज अंजो से कहता है कि यहाँ तो पग-पग पर झूठ कपट कूटनीति षडयन्त्र कुटिलता और कुण्ठा है। स्थायित्व है पर उस स्थायित्व का मूल्य बहुत बड़ा है।[5]

अश्कजी ने 'अंधी गली' नाटक में भी रिश्वत छल-कपट, धोखेबाजी की समस्याओं को चित्रित किया है। मकान की रचना में ठेकेदार रुपया तो खा जाते हैं परन्तु समय पर कार्य नहीं करते। इसी विषय पर रामचरण जी कहते हैं— 'अजी साहब जिन ठेकेदारों को ठेका दिया था व पाँच लाख रुपया खा गये और मकान दो बालिश्त भी नहीं बने। जवाब-तलब हुआ। तो उन्होंने लिख दिया—सरकार ने आगे रुपया नहीं दिया फिर आ गई बरसात सब ढह गये। इस प्रकार ठेकेदारों के घाले का चित्रण किया गया है। इसके अतिरिक्त इस नाटक में आवास सम्बन्धी भ्रष्टाचार भी दिखाया गया है। मकान मालिक दस रुपये किरायेवाले भाग के पचास-पचास रुपये माँगते हैं और गरीब व्यक्तियों को खूब लूटते हैं। देश के विभाजित होने पर शरणार्थियों की पत्नियों और विधवाओं को सिलाई की मशीनें दी गई थीं। शरणार्थी अधिकारी इनको भी मशीनें हड़पना चाहते हैं। कैप्टन मिश्र कैप्टन लीवू से कहता है कि कोई शरणार्थी तुम्हारा मित्र हो तो हम कल ही उसे मशीन दिलवा दें। फिर आगे कहता है कि जिसे मशीन दी जाए वह अपना होना चाहिए ताकि उससे ली जा सके।[4]

ये शरणार्थी अधिकारी कुछ व्यक्तियों से झूठे आवेदन भरवाकर उनको आर्थिक सहायता दिलवा रहे थे। कैप्टन मिश्र श्याम से कहते हैं कि तुम झूठा आवेदन भरकर दे दो कि हमारा सब कुछ लाहौर में रह गया और हम तुमको आर्थिक सहायता

१ उदयशंकर भट्ट पृ ८४
२ उपेन्द्रनाथ अश्क पतरे पृ १०६
३ उपेन्द्रनाथ अश्क अंधी गली पृ० ५८
४ वही पृ ७२-७३
५ उपेन्द्रनाथ अश्क अंजो दीदी पृ० १४८

लिया गया। परन्तु श्याम इस बात को मानने को तैयार नहीं है। इस पर मिश्रजी उससे कहते हैं— इसमें कुछ अन्तर नहीं पड़ता। आपको ध्यान है जिन्हें कब्ज मिल रहा है क्या वे सब शरणार्थी हैं। उन सिंधियों से ज्यादा उन लोगों को पहले से ही यहाँ बस हुए थे। विभाजन को जिन जिन पर असर पड़ा वे सब शरणार्थी हैं। कौन शरणार्थी है कौन नहीं? किसे मकान चाहिए और किसे नहीं? यह सब तय करना तो हमारे हाथ में है। आपको कब्ज दिलायेंगे तो केस बनाना ही होगा।[1] इस प्रकार ये शरणार्थी अधिकारी अपने व्यक्तियों को मकान एवं कब्ज दिलवाकर उनसे भी रिश्वत लेते हैं और अपना आर्थिक हित पहले सोचते हैं। अश्कजी ने इस प्रकार भ्रष्टाचार को रोकने का प्रयास किया है।

राधेश्याम कथावाचक ने 'स्वर्गीय नाटक' में शासन विभाग की पोल खोली है। विश्वमोहिनी के स्वयंवर में इस विशेष में राजा महाराजा एवं देवता आए हैं परन्तु शासन विभाग के अधिकारी मन्त्री शासन कार्य के समय इधर उधर मन बहलाते हैं। इस विषय में जगत अपनी माता भगवती से कहता है— विश्वविमोहिनी का स्वयंवर हो रहा है। इस विशेष के सत्कार आदरसत्कार राजे महाराजे आये हैं। उनके लिए सभी की चाहिए। मेरा तो समय में यह भी आया कि इसके मन्त्री की कृपा से उस दफ्तर में भी बड़ा गोलमाल है। मास में जितनी रकम चढ़ाई जाती है—खा जाती है उसमें आधी भी नहीं। इस प्रकार ये शासन विभाग के अधिकारी रकम को खा जाते हैं। अपने खातों में लिख देते हैं कि गेहूँ गल गया और हमने उसे बाहर फेंक दिया परन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि गेहूँ उनके घर पर पहुँच जाता है। राधेश्याम कथावाचक ने इस नाटक के चित्रण द्वारा आधुनिक शासन विभाग के अधिकारियों की पोल खोली है कि किस प्रकार वे सरकारी रकम को खा जाते हैं और खातों में गलत ढंग से लिखा देते हैं।

भगवतीचरण वर्मा ने 'रुपया तुम्हें खा गया' में रिश्वतखोरी और चोरबाजारी का चित्रण किया है। उदय और उसके पिताजी को चोरबाजारी के सिलसिले में पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया है। जमानत पर छूटने पर उदय अपने मामा राधेश्याम शर्मा के पास जाता है और सारे मामले को समाप्त करने की प्रार्थना करता है। परन्तु शर्मा जी कृष्णकुमार से कहते हैं— चोर और सीमेंट की चोरबाजारी पर? इसलिए मैं तुम लोगों को परमिट दिलवाने में हिचकता था। सुनो कृष्णकुमार—मेरे सगे भांजे को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया है।[3] शर्मा जी इस मामले पर कुछ भी करने को तैयार नहीं हैं और कहते हैं कि मैं इस मामले में कुछ न कर सकूँगा।

(घ) शोषण

इस युग में शोषण का इतिहास बहुत पुराना है। प्रारम्भ में ही शक्तिशाली

---

१ उपेन्द्रनाथ अश्क अंधी गली पृ० ७६
२ राधेश्याम कथावाचक स्वर्गीय नाटक पृ० ८८ ८९
३ भगवतीचरण वर्मा रुपया तुम्हें खा गया पृ० १ ८ १०६

निर्बल का शोषण करता आया है। आज भी स्वतन्त्र भारत में गरीब का शोषण हो रहा है। हरिकृष्ण प्रेमी ने 'संरक्षक' नाटक में शोषण का रूप दिखाने का प्रयास किया है। जालिमसिंह किशोरसिंह का संरक्षक है परन्तु वह जनता का रुपया लूट-लूट कर अपना घर भरना चाहता है। उसने कितने ही किसानों की भूमि को हड़प कर अपनी भूमि में मिला लिया है। कुछ किसान आपस में वार्तालाप कर रहे हैं। एक किसान जालिमसिंह को महात्मा मानता है परन्तु दूसरा किसान कहता है— उसकी महात्मापन हमसे पूछ जिनकी जमीनें किसी न किसी बहाने से छीनकर उसने निजी जोत में ले ली हैं। आज उसके अन्नागारों में करोड़ों रुपयों का अन्न भरा हुआ है। हाड़ोती के प्रदेश की आधी से अधिक जोती जा सकने वाली जमीन आज उसकी खुदकाश्त में है। जो आदमी गरीब किसानों की भूमि और जीविका हड़पने से नहीं चूका उसे राजगद्दी का लोभ हो गया हो तो आश्चर्य की बात ही क्या है।[1] इस प्रकार इस नाटक में जालिमसिंह ने गरीबों का खूब शोषण किया है।

प्रेमी जी के 'स्वप्न भंग' नाटक में भी शोषण की समस्या को उठाया गया है। कासिम खाँ एक उच्चाधिकारी है और वह गरीबप्रकाश की झोपड़ी पर अपना महल बनवाना चाहता है। वह एक सैनिक को आदेश देता है—"यह स्थान हमारा महल बनाने के लिए उपयुक्त है। इस झोपड़ी को आज ही खुदवा दो।"[2] प्रकाश के प्रार्थना करने पर कासिम खाँ उसकी बात को नहीं सुनता और उसकी झोपड़ी छीन ली जाती है। प्रेमी जी ने इस नाटक में गरीबों के शोषण का अत्यन्त मार्मिक शब्दों में चित्रण किया है।

प्रेमी जी ने 'विषपान' नाटक में भी शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई है। बड़े-बड़े राजा महाराजा विवाहों पर अथवा अनेक अवसरों पर पानी की तरह रुपया बहाते हैं। परन्तु वे रुपया गरीबों की कमाई से वसूल करते हैं। इसी विषय को लेकर रामी श्यामा से कहती है— धनसंग्रह करने का काम तो इन्हीं मोटे मोटे लोगों के हाथों में होता है और ये अजगर स्वयं अपनी जेब से नाममात्र को देते हैं। अधिकांश गरीबों की गाढ़ी कमाई में से छीना जाता है। सच तो यह है कि हम लोगों को दोनों समय पेट भर भोजन भी नसीब नहीं होता—तिस पर जब ऐसे दण्ड लग जाते हैं तो हमारी आत्मा तिलमिला उठती है।' इस प्रकार गरीब व्यक्तियों पर दण्ड लगा लगाकर रुपया वसूल किया जाता है और विवाहों पर खर्च किया जाता है।

जगदीशचन्द्र माथुर ने 'कोणार्क' नाटक में गरीबों का शोषण दिखाया है। गरीबों पर अत्याचार का पर्दाफाश करता हुआ आधुनिक युवक का प्रतीक धर्मपद विशु से कहता है—जब मैं इन मूर्तियों में बँधे रसिक जोड़ों को देखता हूँ तो मुझे

१ हरिकृष्ण प्रेमी संरक्षक पृ० ६२ ६३

२ हरिकृष्ण प्रेमी स्वप्न भंग पृ० ५७ ५८

याद आती है वमान में नहाते हुए किसान की, कामा तक पानी के विरुद्ध नौका को खेनवाले मल्लाह की, दिन दिन भर कुल्हाड़ी लेकर लकड़ी काटनेवाले लकड़हार की। इस मन्दिर में बरसों से १२०० से ऊपर शिल्पी काम कर रहे हैं। इनमें से कितनों की पीड़ा से आप परिचित हैं? जानते हैं आप कि महामात्य के भृत्यों ने इनमें से बहुतों की जमीन छीन ली है? कइयों की स्त्रियों को दासियों की तरह काम करना पड़ा है और उधर मार उत्सव में अकाल पड़ रहा है।'[1] इस प्रकार गरीबों की जमीनों को छीना जाता है और उनको पारिश्रमिक भी समय पर नहीं दिया जाता है। धर्मदत्त ने इस नाटक में आधुनिक मजदूर की आवाज को ऊँचा किया है और शोषण के विरुद्ध आक्रोश की भावना व्यक्त की है।

(ङ) शरणार्थियों की समस्या

भारत के विभाजन के पश्चात् स्वतन्त्र भारत को शरणार्थियों की समस्या का सामना करना पड़ा। लाखों शरणार्थी भारत में आकर बस गये। उनके सामने रोटी-कपड़े एवं आवास की समस्या थी। कुछ शरणार्थियों के माता पिता की भी हत्या कर दी गई थी। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार के 'न्याय की रात' नाटक में कमला एक शरणार्थी लड़की है। भारत-पाक विभाजन में उसके माता पिता की हत्या कर दी गई। अब वह नौकरी के लिए इधर-उधर घूम रही है। हुसैन उसको अपने चंगुल में फँसा कर कहता है कि मैं तुम्हें नौकरी पर रखवा दूँगा। कमला उससे कहती है— मैं तो नौकरी की तलाश में आपके पास आई हूँ। मुझे नौकरी चाहिए और कुछ भी नहीं। मैं अपना काम पूरी मेहनत और ईमानदारी से करूँगी।'[2] हुसैन कमला को फँसाकर सदानन्द के यहाँ मैनेजरी के पद पर रखवा देता है और कमला को एक तम्बाकू के मामले में फँसाकर लाखों रुपया का लाभ कमाता है। अन्त में सब भेद खुल जाता है और हुसैन आत्महत्या कर लेता है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अपने 'पग ध्वनि' नाटक में शरणार्थियों के आवास की समस्या को चित्रित किया है। भारत सरकार ने इस आवास की समस्या को कई वर्षों तक सुलझाया। हुस्न विस्थापितों की दुर्दशा को देखकर अपने पति शहाबुद्दीन से कहती है— हमें अपने मुल्क के सब भाई-बहनों के साथ भाई-बहन बनकर रहना होगा। हम अपने पिछले किए पर पछतावा करना है। भागे हुए भाइयों को वापस बुलाना है, उनके लिये मकान बनवाना और उन्हें फिर से बसाना है।'[3] समस्त भारत निवासियों ने विस्थापितों के प्रति सद्व्यवहार करके उनके आवास की समस्या को हल किया।

---

१ जगदीशचन्द्र माथुर कोणार्क पृ० ३४
२ चन्द्रगुप्त विद्यालंकार न्याय की रात पृ० ४७
आचार्य चतुरसेन शास्त्री पग ध्वनि पृ० ३३

उपेन्द्रनाथ अश्क ने 'अंधी गली' नाटक में दिखाया है कि कुछ शरणार्थी अपने आस-पास के सम्बन्धियों के पास चले आए थे। फिर भी बहुत से शरणार्थी रह गए थे जिनको भारत सरकार ने बसाया था। इन पर बहुत रुपया खर्च हुआ था। इसमें भी बहुत से अधिकारी रुपया को खा पी गये। इसकी ओर संकेत करता हुआ लहनासिंह त्रिपाठी से कहता है—'शरणार्थियों को फिर से बसाने के लिए जिन महकमे अन अफसर रण उनके ऊपर जितना रुपया खर्च होया ऐ उतना जे शरणार्थी को मिल ते ओहनां दी मुसीबत दूर न हो जावे। अफसरा ते यह कमियाँ दे पेट मोटे होंद जान्दे न ते शरणार्थियाँ दे पेट पल्ले कुछ पदा नहीं।'[1] इस प्रकार भारत सरकार ने शरणार्थियों की समस्या हल की परन्तु कुछ अधिकारी उसमें से भी रुपया खा गये।

(च) गणतन्त्र की भावना

स्वतन्त्र भारत के संविधान में यह घोषणा की गई है कि भारत एक प्रजातन्त्र राज्य होगा। इसमें जनता को अपने विचार प्रकट करने का पूरा अधिकार है। हरिकृष्ण प्रेमी ने 'शपथ' नाटक में जनता को शासन के मामले में अधिक शक्तिशाली बताया है। विष्णुवर्धन राज्यसत्ता से अधिक शक्तिशाली जनता को बताते हैं और कहते हैं—"राजसत्ता से अधिक शक्तिशाली जन सत्ता है। प्रारम्भ में युद्ध के वातावरण में सेना और जाति का नेतृत्व करने के लिए राजा का जनता द्वारा निर्वाचन हुआ था पीछे यह पद पैतृक बन गया। देश का शासन न्यायदान पालन एवं रक्षण राजा का कर्तव्य है। राज्याभिषेक के समय उसे इसकी प्रतिज्ञा लेनी होती है। प्रतिज्ञा च्युत होने पर प्रजा राजा को अधिकार च्युत कर सकती है।'[2] इस चित्रण में प्रकट है कि भारत में जनता का शासन अधिक प्रिय माना गया है। प्रेमी जी ने 'शतरंज के खिलाड़ी' नाटक में भी गणराज्य की भावना को प्रोत्साहित किया है। प्रेमी जी प्रभा के शब्दों में बोल रहे हैं कि चाहे वह पक्षी हो, चाहे वह पशु हो चाहे मानव, हर एक चाहता है कि उसकी स्वाधीनता का अपहरण न हो उस पर किसी का शासन न रहना चाहिए।[3] इन नाटकों में प्रेमीजी ने गणतन्त्र की भावना में विश्वास प्रकट किया है।

वृन्दावनलाल वर्मा ने 'पूर्व की ओर' नाटक में गणतन्त्रात्मक शासन में निष्ठा व्यक्त की है। अश्वतुंग ने वारुण द्वीप में गणतन्त्र शासन स्थापित करके एक नये विधान को लागू किया है। वह सबसे प्रार्थना करता है—"व्यष्टि और समष्टि व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध को ध्यान में रखकर सब कोई चले। सबको अपने अपने धर्म के मानने की स्वतन्त्रता ही रहेगी साथ ही सबको अपने समाज और

---

१ उपेन्द्रनाथ अश्क अंधी गली पृ० ३७-३८

२ हरिकृष्ण प्रेमी शपथ पृ० ११६-११७

३ हरिकृष्ण प्रेमी शतरंज के खिलाड़ी पृ० १०४-१०५

राष्ट्र की रक्षा और प्रतिष्ठा के लिए अपने को होम देने के लिए उद्यत रहना चाहिए।'[1] इस नाटक में वर्मा जी ने स्वतन्त्र भारत के संविधान की ओर संकेत किया है।

वृन्दावनलाल वर्मा ने अपने 'हंस मयूर' नाटक में गणराज्य की भावना का समर्थन किया है। 'स्वतन्त्रता प्राप्त करके सभा के सामने अपने विचार प्रकट करते हैं— सभा का प्रधान नियुक्त किए जाने के लिए मैं आप सबका कृतज्ञ हूँ। दबिया और कुषाणों की तरह वर्ष पहले की लाई हुई अपनी स्वतन्त्रता पाकर आज फिर हम अपने गणतन्त्र की स्थापना के लिए एकत्रित हुए हैं। जनता की भूमि जनता को लौटाई जाती है क्योंकि जनता ही उसकी स्वामी है, राजा उसका स्वामी नहीं। अपने अपने वर्ग में रहकर लोग अपना काम सुखपूर्वक करें। सबको अपने अपने धर्म का अनुसरण करने की स्वाधीनता होगी केवल यज्ञों में पशुओं का बलिदान न होगा। जनमार्ग सुरक्षित रक्खे जायेंगे जिसमें कृषि और उद्योगों की उपज दूर-दूर तक आ जा सके। किसी से भी बलात् काम, धन या अन्न नहीं लिया जायगा। ग्राम समितियाँ, शिल्पियों के संघ और श्रेणियाँ फिर से संगठित हों। शान्ति और शौर्य के समन्वय से जीवन और मरण को सुन्दर बनाया जाय।'[2] इस नाटक में भी भारतीय गणराज्य का समर्थन किया गया है और प्रत्येक व्यक्ति को अपना कार्य करने की सुविधा की ओर इंगित किया गया है।

सेठ गोविन्ददास ने 'महात्मा गांधी' नाटक में गणराज्य में राम राज्य की कल्पना की है। महात्मा गांधी प्रार्थना सभा में भाषण कर रहे हैं— 'स्वराज्य तो हमें मिल गया पर अभी रामराज्य को कायम करना है। ऐसा राज्य जिसमें घृणा न हो, हिंसा न हो, सब सम्प्रदाय वाले आपस में मुहब्बत रखते हुए निवास करें। स्त्री और पुरुष के समान हक हों। गरीब से गरीब आदमी भी यह महसूस करे कि यह देश मेरा है और इसके संगठन में मेरे मत की भी कीमत है। ऊँची श्रेणी और नीची श्रेणी इस तरह बहुत-सी श्रेणियाँ न हों। अस्पृश्यता नाम की कोई चीज न रहे।'[3] सेठ जी ने इस नाटक में एक आदर्श राज्य की कल्पना की है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को सुख मिले।

उदयशंकर भट्ट ने 'शक विजय' नाटक में गणतन्त्रात्मक राज्य में एक केन्द्रीय शक्ति की कामना की है जो आवश्यकता पड़ने पर देश की रक्षा कर सके। सौभाग्य की बात है कि भारत में इस प्रकार की एक केन्द्रीय शक्ति है। कालकाचार्य ने धर्म की संकीर्ण मनोवृत्ति से प्रभावित होकर शकों को भारत में आने का निमन्त्रण दिया था परन्तु मालव के एक वीर राजकुमार वरद ने देश की समस्त शक्तियों को एकत्रित

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा, पूर्व की ओर, पृ० १८४
2. वृन्दावनलाल वर्मा, हंस मयूर, पृ० १३
3. सेठ गोविन्ददास, महात्मा गांधी, पृ० १२६

करके शकों को खदेड़ दिया और भारत की पुनः प्रतिष्ठा कायम की। वरद समस्त गणराजाओं के सामने एक प्रार्थना करता हुआ कहता है—'मालव गणतन्त्र रहा है, गणतन्त्र ही रहेगा। मैं उसका एक तुच्छ सेवक हूँ। इसके साथ मैं यह भी प्रार्थना करता हूँ कि विदेशी सत्ता से रक्षा करने के लिए एक केन्द्र शक्ति हो जो आवश्यकता पड़ने पर सम्मिलित प्रयत्न द्वारा सम्पूर्ण देश की रक्षा कर।'[1] इस नाटक से यह प्रकट है कि केन्द्रीय सरकार सब राज्यों की सहायता करती है और रक्षा भी करती है। भारत के संविधान में यह स्पष्ट किया गया है कि आवश्यकता पड़ने पर समस्त राज्यों को केन्द्रीय सरकार का आदेश मान्य होगा और समस्त देश की विदेशियों से सुरक्षा की व्यवस्था केन्द्रीय सरकार करेगी। इस प्रकार भट्ट जी ने इस नाटक के द्वारा इस दिशा में एक स्तुत्य प्रयास किया है।

(छ) भारत की विदेश नीति

भारत की विदेश नीति है कि किसी के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न किया जाये और न ही किसी की भूमि को हस्तगत किया जाये। डा० दशरथ ओझा ने 'भारत विजय' नाटक में अपने स्वतन्त्र भारत की विदेश नीति को स्पष्ट किया है। समुद्रगुप्त ने समस्त भारत को एकता के सूत्र में पिरोया है तथा समस्त राष्ट्र की विदेश नीति तय की है। संयोग की बात है कि यही भारत की भी विदेश नीति है। समुद्रगुप्त मानवगण के वीरों से कहते हैं—'मालव वीरो हम भारतीय स्वयं जीवित रहना और अन्य जातियों को जीवित रखना चाहते हैं। हम राज्य प्रलोभन में फँसकर कभी दूसरे पर आक्रमण नहीं करते। किन्तु अपने देश पर किसी का आक्रमण देख भी नहीं सकते। हम किसी के साथ अन्याय नहीं करते और न किसी के अन्याय को भीरु बनकर सहन कर सकते हैं। यही हमारा धर्म है यही हमारी नीति है।'[2] भारत समस्त संसार के साथ सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। समुद्रगुप्त यौधेयराज से कहते हैं—'योधेयराज आज भारत अभारतीय के साथ स्मृति-सम्मत व्यवहार करके अन्तरराष्ट्रीय विधान का निर्माता बनेगा। अब भारत को समस्त संसार से सम्बन्ध स्थापित करना होगा।'[3] इस प्रकार भारत समस्त संसार के साथ शान्तिपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है।

हम अपनी भूमि पर किसी विदेशी का प्रभुत्व स्थापित नहीं होने देना चाहते। इसी भावना को हरिकृष्ण प्रेमी ने 'प्रकाशस्तम्भ' नाटक में चित्रित किया है। हारीत भारत की अखण्डता के विषय में बाप्पा की माता उदाला से कह रहा है कि जिस प्रकार हमारी जननी के शरीर का प्रत्येक अवयव अविभाज्य है उसी प्रकार हमारे देश का भी। हम उसकी सूची के अग्रभाग जितनी भूमि पर भी किसी विदेशी का

१ उदयशंकर भट्ट शक विजय पृ० १११
२ डॉ० दशरथ ओझा भारत-विजय पृ० ११
३ वही पृ० १०१

प्रभुत्व स्थापित नहीं करने लगे।[1] भारतीय सरकार इसी नीति को अपना रही है।

हम किसी विदेशी की कोई वस्तु न तो छीनते और न किसी पर आक्रमण ही करते हैं। सानन्द अग्निहोत्री ने नफा की एक शाम नाटक में इसी नीति को स्पष्ट किया है। फौजी मातादीन से कहता है कि मैं हिन्दुस्तानी फौज का जवान हूँ। हम खुद किसी की कोई चीज़ नहीं छीनते हैं। हम सिर्फ छीनी हुई चीजें वापस लेते हैं।[2] अग्निहोत्री ने इस नाटक में भारत की विदेश नीति का समर्थन किया है कि हम भूमि को छीनना नहीं चाहते और भूमि को देना भी नहीं चाहते।

(ज) ग्राम पंचायतों की स्थापना

भारत गाँवों का देश है। गाँवों की पंचायतें ही ग्रामनिवासियों के झगड़ों का निपटारा करती हैं और उस निर्णय को समस्त ग्रामवासी मानते हैं। वृन्दावनलाल वर्मा ने पूर्व की ओर नाटक में ग्राम-पंचायतों की स्थापना की है। अश्वगुप्त ने चन्द्रमा स्वामी को बाँध लिया है क्योंकि वह धनी व्यक्ति है और पूर्व में व्यापार करता है। अश्वगुप्त उससे सोने की माँग करता है परन्तु वह सोना देने से मना करता है और अश्वगुप्त से कहता है— आप ग्रामसभा के निर्णय को तो मानेंगे? सब मानते आए हैं।[3] वर्माजी ने हंस मयूर नाटक में भी ग्राम-पंचायतों को महत्त्व पूर्ण माना है। भारत के कुछ भाग पर शकों ने अधिकार कर लिया है। इन्द्रसेन रामचन्द्र से कहता है कि शकों को पराजित करने के उपरान्त देश में बहुत कार्य करना पड़ेगा। इस पर रामचन्द्र कहता है— ग्राम की पंचायती संगठन पहले क्योंकि शकों ने गणतन्त्र की परम्पराओं को उन्मूलन कर डाला है।[4] इससे प्रकट होता है कि वर्माजी स्वतन्त्र भारत में ग्राम पंचायतों के पक्ष में हैं।

सेठ गोविन्ददास ने 'महात्मा गांधी' नाटक में पंचायत को विशेष महत्त्व प्रदान किया है। दादा अब्दुल्ला और तय्यब के मुकद्दमे को सुलझाने के लिए महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका में गये और उनके इस झगड़े को पंचायत के माध्यम से सुलझाया। तय्यब गांधीजी से कहता है—आप आए थे दादा अब्दुल्ला सेठ के वकील होकर, दादा अब्दुल्ला सेठ की और मेरी लड़ाई चल रही थी। आपने कचहरी से बाहर पंचायत करा इस मामले को निपटाया।[5] इस प्रकार सेठ जी पंचायतें स्थापित करने के प्रचलन में विश्वास रखते हैं।

विष्णु प्रभाकर ने होरी नाटक में भी ग्राम पंचायतों का प्रोत्साहन किया है। होरी के पुत्र गोबर ने झुनिया से प्रेम कर उसे कलंकित किया है। परन्तु पंचायत इस

---

१ हरिकृष्ण प्रेमी प्रकाश स्तम्भ पृ० ४
२ सानन्द अग्निहोत्री नफा की एक शाम पृ० ७
३ वृन्दावनलाल वर्मा पूर्व की ओर पृ० ३६
४ वृन्दावनलाल वर्मा हंस मयूर पृ० ११६
५ सेठ गोविन्ददास महात्मा गांधी पृ० १७

सहन नहीं करती। परिणामस्वरूप पचायत उनके मामले का निर्णय करती है और झिंगुरी सिंह होरी तथा धनिया को पचायत का निर्णय सुनाता है— "पचायत ने तुम्हारे मामले पर खूब गौर किया है। तुमने कुलटा को घर म रखकर समाज म विष बोया है। अगर गाँव मे यह अनीति चली तो किसी की आबरू सलामत न रहेगी। झुनिया को देखकर दूसरी विधवाओं का मन बढ़ेगा। पचायत यह अनीति नहीं सह सकती। उसने तुम पर सौ रुपये नकद और तीन मन अनाज डाड लगाने का फैसला किया है।" इस प्रकार गाँव के झगडो को पचायत ही निपटाती है। स्वतन्त्र भारत म ग्राम-पचायतो को विशेष रूप से प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

(झ) स्वार्थ-भावना

वतमान युग म भी स्वार्थ भावना का दौर चल रहा है। शक्तिशाली व्यक्ति निबल को खा जाना चाहता है और बडा राष्ट्र छोटे राष्ट्र को निगलना चाहता है। स्वार्थ के कारण ही दो विश्वयुद्ध हो चुके हैं और तीसरे विश्वयुद्ध की सम्भावनाओ स मानव त्रस्त है। प्रश्न पैदा होता है कि आखिर यह सब क्या होता है? इसका एक मात्र उत्तर व्यक्ति की स्वार्थ भावना ही है। आज का मनुष्य दूसरे की उन्नति करते हुए नहीं देख सकता। उसी प्रकार एक देश दूसरे की उन्नति नहीं चाहता। अत व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण ये युद्ध होते हैं और पारस्परिक तनाव की स्थिति आती है। इसी स हिंसा का जन्म होता है। हरिकृष्ण प्रेमी ने इस स्वार्थ भावना को अपने शतरज के खिलाडी नाटक म चित्रित किया है। दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन ने अपने सेनापति महबूब खाँ को भेजकर जसलमेर पर आक्रमण किया है और उनकी सेना इस रूप म है मानो एक बवडर हो। महाराल अपनी बहन ताडवी स इस सेना के विषय मे कहता है— बवण्डर नहीं बहन। यह हिंसा और स्वार्थ का तूफान है। यह शक्तिशालियो का शक्तिहीनो पर आक्रमण है यह सामर्थ्यवानो की स्वत्वहीनो को चुनौती है।[2] इस आक्रमण मे स्वार्थ की भावना निहित है—इसकी ओर सकेत करता हुआ रत्नसिंह महबूब खाँ से कहता है—'स्वार्थ ने ससार के हरे भरे बाग म तीखे काँटे बिछा दिए हैं। मनोहर सुखद स्नेह भवन में भयकर अग्नि प्रज्वलित कर दी है। आज सम्पूर्ण मानवता कराह रही है।[3] मनुष्य की बढती हुई आकाक्षा के विषय म गिरिसिंह अम्बरी स कहता है— मनुष्य की आकाक्षा न ससार का रूप विकृत कर दिया है। जब तक व्यक्तिगत आकाक्षाएँ लाभ और लालसाएँ राज्य प्रणालियाँ और वभवपूर्ण रनन की इच्छाएँ जीवित हैं—तब तक यह हिंसा काण्ड चलेगा ही।[4] आज का मानव अपने स्वार्थ को इस विधि म प्रस्तुत

---

१ विष्णु प्रभाकर डाली पृ ५४

२ हरिकृष्ण प्रेमी शतरज के खिलाडी पृ ४५

३ वही पृ ७१

४ वही पृ ६२

चाहता है। इसके लिए वह उचित अनुचित साधनों का प्रयोग भी करता है। दक्ष अपनी पुत्री सती का विवाह शिव से केवल इसलिए करते हैं कि शिव की सहायता से समस्त आर्यावर्त पर विजय प्राप्त करने में सुविधा होगी। इस विषय में दक्ष अपने मान पाचालेश्वर से कहते हैं—"इन मन्त्री महाशय का कहना है कि यदि सती का विवाह महाराज शिव से कर दिया जाए तो हम लोग कैलाश से एक बहुत बड़ी और शक्तिशाली सेना का निर्माण कर सकेंगे। इस कारण कि यहाँ के निवासी बहुत बलिष्ठ और हृष्ट पुष्ट हैं। अभी तक उन्हें सैन्य-सगठन देश विजय आदि पेचीली बातों का ज्ञान नहीं है। कैलाशराज शिव से सम्बन्ध स्थापित कर और कैलाश से नई सेना बनाकर मन्त्री महाशय का कहना है कि हम लोग आर्यावर्त की विजय कर सकेंगे।"[1] इसका अभिप्राय यह है कि आज एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से गठबन्धन करके तथा अपनी शक्ति को बढ़ाकर निर्बल राष्ट्र पर आक्रमण करना चाहता है। परिणामस्वरूप युद्ध होते हैं। यही मनुष्य की स्वार्थ भावना का कारण है जिससे समस्त संसार की शान्ति भंग हो गई।

धर्मवीर भारती ने 'अन्धा युग' नाटक में अधिकारों की इच्छा लोभ-वृत्ति, स्वार्थ की भावना को व्यक्त किया है। प्रश्न उठता है कि महाभारत का युद्ध क्यों हुआ? उत्तर है कि धृतराष्ट्र तथा दुर्योधन की स्वार्थ भावना के कारण। यदि दुर्योधन ने पाण्डवों को आधा राज्य दे दिया होता तो युद्ध की नौबत ही न आती। नाटककार ने इस युद्धजन्य अर्धसत्य कुण्ठा अन्ध स्वार्थपरता, विवेक शून्यता का चित्रण बहुत ही स्वाभाविक रूप से किया है। दुर्योधन स्वार्थ भावना एव लोभ वृत्ति के कारण मर्यादाहीन तथा विवेकहीन हो जाता है। परिणामस्वरूप यह युद्ध होता है। प्रहरी युद्ध की स्थिति का वर्णन करता हुआ कहता है

दुपहर होते होते हिल उठा नगर
खण्डित रथ टूटे छकडों पर लद कर
वे लौट रहे ब्राह्मण स्त्रियाँ विक्षिप्त
विधवाएँ बौने बूढ़े घायल जर्जर।[2]

इस प्रकार नाटककार ने युद्ध की विभीषिकाओं से पाठकों को परिचित कराया है। वास्तव में द्वितीय महायुद्ध के बाद जो युग आया है वह महाभारत-युगीन अमर्यादा और अनैतिकता से किसी भी प्रकार कम नहीं कहा जा सकता। दो विश्व युद्धों के परिणाम को देखकर नाटककार ने तीसरे विश्व युद्ध की कल्पना की है और भविष्यवाणी भी की है

उस भविष्य में
धर्म अर्थ ह्रासोन्मुख होंगे

---

१ चन्द्रगुप्त विद्यालंकार देव और मानव पृ० ४३
२ धर्मवीर भारती अन्धा युग पृ० ४७

जाती हैं। ये मर्यादाएँ हमें दुर्बल बनाती हैं। यही मनुष्य मनुष्य में भेद करना ही तो हम भारतीयों की सबसे बड़ी भूल है। हम राजपूत जाति और पद के अभिमान में अन्य लोगों को छोटा समझने लगे। हमने एक संकुचित दायरा बना रखा है कि उनके बाहर योग्य से योग्य व्यक्ति भी नहीं निकल सकता। प्रतिभाएँ व सीमाओं में मुरझा जाती हैं। इस तरह राष्ट्र की शक्ति का विनाश होता है। वह आहत होकर घातक बन जाती है।'[1] समग्र रूप में प्रेमी जी ने अपने नाटकों में जातीय व्यवस्था को राष्ट्र की उन्नति में बाधा माना है।

वृन्दावनलाल वर्मा ने 'ललितविक्रम' नाटक में जाति-पाँति की संकीर्ण भावना पर कुठाराघात किया है। प्राचीन युग में शूद्रों को तपस्या करने का अधिकार नहीं था। कपिंजल (शूद्र) तपस्या करना चाहता है। वह आचार्य धौम्य से पूछता है कि क्या मुझे इस विषय में राजा से अनुमति लेनी अनिवार्य है? इस पर धौम्य ऋषि कहते हैं— मेरे लिए किसी राजा की आज्ञा या अनुमति की अपेक्षा नहीं है। तुम्हारी योग्यता का निरीक्षण-परीक्षण करने के उपरान्त तुमको शिक्षा दूंगा। ऊपर उठना और आगे बढ़ना प्रत्येक जीव का लक्ष्य है।[2] इसी सन्दर्भ में एक ब्राह्मण मेघ को उत्तर देता है— शूद्र भी तपस्या कर सकता है यहाँ तक कि वह ब्राह्मण भी हो सकता है।'[3] ललित अपने पिता जी से कहता है— अपने बहुत बड़ा न कहा है कि परमात्मा की भक्ति में शूद्र भी परम गति को प्राप्त करता है यहाँ तक कि नीतिवान् हरिभक्त चाण्डाल भी श्रेष्ठ से श्रेष्ठ द्विज से भी बढ़कर है। कपिंजल तो फिर योगी और मेरा प्राणदाता है।'[4] इस प्रकार कपिंजल ने शूद्र होकर भी तपस्या की और ललित के प्राण बचाए। वर्माजी के 'हंस मयूर' नाटक में उपवर्त वज्रुल के सामने तन्वी के विवाह का प्रस्ताव रखता है और कहता है— हम लोग वर्णभेद जात-पाँत कुछ नहीं मानते। तुम सुन्दर हो कुशल हो। भूरक (तन्वी का पिता) कोई आक्षेप नहीं करेंगे।[5] वर्माजी ने इस नाटक में जाति-व्यवस्था को स्थान नहीं दिया है। उनके 'निस्तार' नाटक में योगीनाथ (मन्दिर का पुजारी) एक हरिजन भक्त रामदीन को राधाकृष्ण के दर्शन नहीं करने देता। वह कहता है कि शूद्र को दूर से ही दर्शन करने में पुण्य प्राप्त हो जाता है परन्तु इसकी प्रतिक्रिया कादम्बिनी बड़े रोष में करती है और कहती है— बापू ने कहा कि वर्णाश्रम त्याग पर आधारित है और त्याग पर आधारित रहने से ही किसी अधिकार पर आश्रित रहा है।[6] इस प्रकार वर्माजी वर्ण-व्यवस्था को जन्म पर आधारित नहीं मानते।

---

१ हरिकृष्ण प्रेमी सीमा की सृष्टि पृ १

२ वृन्दावनलाल वर्मा ललितविक्रम पृ ५

वही पृ० ८

४ वृन्दावनलाल वर्मा ललितविक्रम पृ ११७ ११८

५ वृन्दावनलाल वर्मा हंस मयूर पृ ८६

६ वृन्दावनलाल वर्मा निस्तार पृ० ७

उपेन्द्रनाथ अश्क ने 'अलग अलग रास्ते' नाटक मे ब्राह्मण और शूद्र मे कोई भेद नही माना। पूरन ताराचन्द से कह रहा है— जहाँ तक मनुष्यता का सम्बन्ध है ब्राह्मण और चाण्डाल मे कोई अन्तर नही और फिर ब्राह्मण की लडकी का दिल चाण्डाल की लडकी से बडा नही होता।[१] अश्क जी ने सब मनुष्यो को समान माना है और हृदय से सब बराबर हैं।

प्राचीन युग मे ब्राह्मण शस्त्र का धारण नही करता था। उसका काम विद्या पढना पढाना पूजा पाठ था। शास्त्र के अधिकारी केवल क्षत्रिय थे। परन्तु यह मान्यता खडित हो चुकी है। लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक अपराजित मे अश्वत्थामा ब्राह्मण होते हुए भी शस्त्र धारण करके महाभारत मे युद्ध करते हैं। आज के युग मे तो धारणा बिल्कुल परिवर्तित हो चुकी है। सेना मे किसी भी जाति का व्यक्ति कार्य कर सकता है। भारतीय सरकार इस विषय मे जाति भेद को प्रश्रय नही देती।

देवराज दिनेश के रावण नाटक मे सब मनुष्यो को एक समान माना गया है। राम जगल मे शबरी के आश्रम मे जाते है परन्तु भीलनी उनसे कहती है कि मेरा आतिथ्य ग्रहण करने से सब घबराते हैं। इस पर राम कहते हैं— मैं तो मनुष्य मात्र को ही एक दृष्टि से देखता हूँ। मैं जातीयता का विचार नही करता। जातियाँ उनके कार्यो पर निर्धारित होती हैं।'[२] इससे स्पष्ट हो जाता है कि जातीयता मे आज घुन लग गया है और यह विचारधारा अब अधिक काल तक नही चल सकती।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने गाधारी नाटक मे जाति व्यवस्था को समाप्त करने का अथक प्रयास किया है। कर्ण को सब नीच जाति का मानते हैं। जब वह रगभूमि मे धनुष विद्या कर चमत्कार दिखाने आता है तो उससे प्रश्न किया जाता है कि राजकुमार अज्ञात कुल शील या नीच जनो से द्वन्द्व नही करते। इस पर कर्ण भीम से कहता है—'क्षत्रियो मे वश का ही आदर होता है। वीरो और नदियो का जन्म का निश्चय नहीं रहता।'[३] इस नाटक मे जाति व्यवस्था को जन्म से न मान कर गुण और कर्म से स्वीकार किया गया है।

गोविन्दवल्लभ पन्त के ययाति नाटक मे वर्णाश्रम व्यवस्था का पतन दिखाया गया है। पुरु जगल मे एक वर्ण के लिए तप करने जाते हैं तो उनकी राजधानी मे पीछे से वर्ण-व्यवस्था भग हो जाती है। ब्राह्मण धन का लोभी क्षत्रिय विलासी और वैश्य दूध मे पानी मिलानेवाला हो जाता है। ययाति क्रुद्ध होकर मन्त्री से कहता है कि ब्राह्मण की महिमा छीनकर शूद्र को दे दो और इस प्रकार ब्राह्मण को शूद्र और शूद्र को ब्राह्मण बना दो। क्षत्रियो को सेना से निकालकर गाँवो मे

१ उपेन्द्रनाथ अश्क अलग अलग रास्ते पृ० १२३

२ देवराज दिनेश रावण पृ० १६

३ आचार्य चतुरसेन शास्त्री गाधारी पृ० ४२

(ग) सामाजिक समानता

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भी समाज में समानता की भावना उत्पन्न नहीं हुई है। आज भी अनेक व्यक्ति सड़कों पर सोते हैं और उनको पेट भर खाना भी प्राप्त नहीं होता। इसके विपरीत कुछ धनी व्यक्ति बड़ी शान शौकत के साथ महलों में रहते हैं। हरिकृष्ण प्रेमी ने सामाजिक समानता के विषय में अपने नाटकों में संकेत दिए हैं। सामाजिक विषमता को समाप्त करने के लिए उद्धार नाटक में सुजानसिंह एक सामन्त गम्भीरसिंह को कह रहा है—'स्वार्थ लालच दम्भ और अविवेक का परिणाम समाज में विभव के पर्वत और अभाव का गह्वर। हमारा अर्जन अपने लिए नहीं, अपने देश के लिए मनुष्य मात्र के लिए होना चाहिए। हम इस बात का कोई अधिकार नहीं कि जब हमारा पड़ोसी भूख में तड़प रहा हो तो हम उसे दिखा दिखाकर ५६ प्रकार के भोजनों का उपयोग करें।'[1] प्रेमी जी समाज में सबको समान देखना चाहते हैं। विषपान' नाटक में जवानदास राधा से कहते हैं कि उच्च कुल में जन्म लेने के कारण ही एक व्यक्ति सम्मान और सुविधा का अधिकारी क्यों हो ? इस पर राधा कहती है कि ऐसा सदा से ही होता आया है इसे कोई नहीं बदल सकता। इस बात को स्वीकार न करते हुए जवानदास कहते हैं— बदल क्यों नहीं सकता ? वे सब जिन्हें समाज घृणा की दृष्टि से देखता है अपनी शक्ति को एकत्रित करें तो इन महाप्रभुओं और उच्च वंशाभिमानियों का अभिमान चूर कर सकते हैं।[2] इस नाटक में नाटककार चाहते हैं कि दलित व्यक्ति सब एकत्रित हो जायें और अपना अधिकार शक्तिपूर्वक ले लें। समाज में विषमता का भाव उत्पन्न करने वाले हम लोग ही हैं और हम ही इस भावना को स्थापित रखना चाहते हैं। साँपों की सृष्टि' नाटक में विषमता के विषय में अलाउद्दीन का पुत्र खिजरखाँ देवल से कहता है कि ऊँच-नीच का भाव पैदा करने वाले हम समाज के लोग ही हैं। इसके पश्चात् खिजरखाँ की आँखों को निकालने पर वह अन्धा हो जाता है और वास्तविक स्थिति को स्पष्ट करता है—'आज आँखों की ज्योति गँवा कर मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि हिन्दू मुसलमान काला गोरा छोटा बड़ा ऊँच-नीच ये सारे भेद हमारी दृष्टि के दोष से उत्पन्न हुए हैं।'[3] नाटककार की दृष्टि में सामाजिक ऊँच-नीच का रोगी समाज है।

प्रेमी जी ने अमर आन नाटक में सामाजिक विषमता का कड़े शब्दों में विरोध किया है। अहाड़ी रानी को अपने ऊँचे वंश पर अभिमान है। उसके अभिमान को चुनौती देती हुई गुलाब कहती है— आप देवी हैं और महाराव देवता—किन्तु

---

१ हरिकृष्ण प्रेमी उद्धार पृ० ८७
२ हरिकृष्ण प्रेमी विषपान पृ० ५
३ हरिकृष्ण प्रेमी साँपों की सृष्टि पृ० १०८

समानता के नहीं आ सकती। सम्राट अशोक ने कलिंग के युद्ध में विजय तो प्राप्त की परन्तु लाखों नर-नारियों के विध्वंस को देखकर उसका मन अशान्ति से भर जाता है और वह अहिंसा का पुजारी बन जाता है। वह समस्त संसार में समानता की भावना देखना चाहता है। उपर्युक्त इस विषय में अशोक में कहते हैं—'अहिंसा विश्व शान्ति और विश्वमैत्री का नया युग समानता की स्थापना के बिना नहीं आ सकता।'[1] इस भावना पर विश्वास प्रकट करता हुआ अशोक अपने हृदय के उद्गार प्रकट करता है— मेरा दृढ़ विश्वास है कि संसार में किसी दिन शान्ति, समानता विश्वमैत्री और अहिंसा के नये युग का निर्माण अवश्य होगा किन्तु वह केवल बातों से न होगा। उसके लिए प्रत्येक शान्ति प्रेमी को सतत् कार्य और सक्रिय आत्म बलिदान करना होगा।'[2] आधुनिक समाज में कुछ व्यक्ति समानता की बात तो करते हैं परन्तु उसके लिए ठोस रचनात्मक कार्य नहीं करते। नाटककार यह बताना चाहता है कि केवल बातों से काम नहीं चलेगा उसके लिए बलिदान और परिश्रम वांछनीय है।

सेठ गोविन्ददास ने महात्मा गांधी नाटक में सबको समान मानने का नारा लगाया है। मोहनदास दक्षिण अफ्रीका तक में निर्भयता से अपने आपको अभिव्यक्त करते हैं। वे काले तथा गोरे में कोई भेद नहीं मानते। सबको समान मानकर कहते हैं—"यह पृथ्वी परमेश्वर की है। इस पर रहने वाले सब मानव एक हैं कोई बड़ा नहीं, कोई छोटा नहीं। एक को दूसरे से बड़ा समझना भारी पाप है।'[3] सेठजी ने इस नाटक में सबको समान मानने की भावना पर विशेष बल दिया है।

विनोद रस्तोगी ने नये हाथ नाटक में समाज में व्याप्त विषमता को दूर करने का अथक प्रयास किया है। महेन्द्रपाल सामाजिक विषमता के विषय में माला को यूरोप का उदाहरण देते हुए कह रहे हैं—'वहाँ के लोग काफी आगे बढ़ गये हैं। वहाँ न जाति-पाँति का सवाल है और न छोटे-बड़े की समस्या। सब मनुष्य समान हैं। स्त्री पुरुष में भी यहाँ की तरह भेद भाव नहीं। दोनों कन्धे से कन्धा मिलाकर काम करते हैं और ।'[4] इस प्रकार नाटककार ने स्त्री-पुरुष की समानता पर भी बल दिया है। उन्होंने जाति-पाँति को भी स्वीकार न करके सबको समान मानने की ओर संकेत किया है।

(घ) नारी-जागरण

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् नारी विषयक विभिन्न पहलुओं पर विशेष रूप

---

१ जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द प्रियदर्शी पृ० ६६
२ वही पृ० ९८ ७
३ सेठ गोविन्ददास महात्मा गांधी पृ० ८
४ विनोद रस्तोगी नये हाथ पृ० ४४

दे रही हैं। जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द ने 'प्रियदर्शी' नाटक में स्त्रियों के अधिकार सम्बन्धी विचार प्रकट किए हैं। संघमित्रा कहती है कि बुद्ध ने भी नारियों को प्रव्रज्या का अधिकार दिया था और उनको प्रत्येक क्षेत्र में कार्य करने का पुरुषों के समान ही अवसर देने की बात कही थी। अशोक इस कथन से प्रभावित होता है और एक किसान कन्या सरला को राज्य की गृहनीति में परामर्श देने के लिए सम्मिलित कर लेता है। सरला सम्राट अशोक को आवश्यक परामर्श देती हुई कह रही है—'शास्ता है, आज अपने शासन की नई गृहनीति के निर्धारित और कार्यान्वित किए जाने में भारतीय संस्कृति के इस मन्त्र पर भी पूरा ध्यान देंगे, न केवल आदर्श में वरन् व्यवहार में भी। मेरी विनम्र सम्मति में स्त्रियों का जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के समान ही सम्मानपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए। इतना ही नहीं आरम्भ में उन्हें पुरुषों की अपेक्षा अधिक सुविधाएँ दी जानी चाहिएँ क्योंकि वे बहुत वर्षों तक दबा कर रखी जा चुकी है।'[1] नाटककार ने स्त्रियों के अधिकारों की विशेष रूप से चर्चा की है। भारतीय राजनीति में आजकल स्त्रियाँ विशेष पदों पर आसीन हैं और सक्रिय भाग ले रही हैं।

यद्यपि आज की नारी जाग चुकी है परन्तु अब भी देहात के क्षेत्र में नारी को अनेक प्रकार के कष्ट दिए जा रहे हैं। डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने इन कष्टों को अपने 'अन्धा कुआँ' नाटक में विशेष रूप से प्रतिपादित किया है। भगौती की पत्नी सूका सन्तान को जन्म देने में असफल रहती है। इसी कारण भगौती उसको निर्दयतापूर्वक पीटता है और अनेक प्रकार की यातनाएं देता है। एक दिन सूका तंग आकर इन्दर के साथ भाग जाती है। परन्तु पकड़ी जाने एवं मुकदमा चलाए जाने पर भगौती फिर उसको अपने घर ले आता है और पीटता है। राजी कुछ स्त्रियों से सूका की पिटाई का वास्तविक कारण बतलाती हुई कहती है—'दीदी का यही ताना तो बड़कू ने मारा था। कहा था बांझ कहीं की न फल न फूल। बस पर सूका दीदी ने कहा था—आग लगे मेरी कोख और आंचल में। इसी पर उन्होंने दीदी को बहुत मारा था और परसों भी इसी बात पर गुस्सा। जब उन्होंने दीदी के सामने की परोसी थाली खींच ली थी, तब कहा भी था इस बांझ को खिला पिला कर क्या होगा।'[2] एक बार वह तंग होकर कुएं में गिरने जाती है परन्तु कुआँ पानी का न होकर अंधा था। अतः पकड़ी जाती है और फिर उसकी उसी प्रकार पिटाई होती है। परन्तु यह स्थिति अधिक देर तक नहीं चल सकती। अब गांवों में भी स्त्रियों में जागृति की भावना उत्पन्न हो रही है और वे स्वतन्त्र हो रही हैं।

आधुनिक नारी कालेजों में ऊंची शिक्षा प्राप्त कर रही है और विवाह के मामले में भी स्वतन्त्र हो रही है। उपेन्द्रनाथ अश्क ने 'अलग अलग रास्ते' नाटक

---

१ जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द : प्रियदर्शी, पृ० ८१-८२

२ डा० लक्ष्मीनारायण मिश्र : अंधा कुआँ, पृ० ५

में नारी में परिवर्तन दिखलाया है। पुरुष विनोद में कहता है कि आधुनिक युग में आप नारी पर अत्याचार नहीं कर सकते। आपका ख्याल है कि पुरुष की मार्जना छोड़ देने पर भी वह सावित्री और पति के कर्तव्य च्युत होने के बाद भी पतिव्रता बनी रहेगी? वह नारी के परिवर्तित दृष्टिकोण के विषय में कहता है— आज की हिन्दू नारी बदल रही है हिन्दू मुसलमान क्या भारत की नारी मात्र बदल रही है उसके सपने बदल रहे हैं आप आज की नारी के सपने तो क्या उसकी भावनाओं को भी नहीं समझते।'[1] इस नाटक में जीवन के प्रति नारी की परिवर्तित विचारधारा परिलक्षित होती है और उसमें एक नयी चेतना का आभास मिलता है।

अश्क जी के 'कैद और उड़ान' नाटक में तो नारी 'कैद' में निष्क्रिय असमर्थ एवं कारागृहबद्ध थी वह 'उड़ान' में सक्रिय विद्रोहिणी तथा अपने रूप में आज में विकसित है। वह वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के चक्र में उलझे हुए मानव के अन्तर में बसने वाली पीड़ा, घायल संस्कार और प्यासी मगर प्रवृत्तियों के शिकार का केन्द्र रही है। माया के सम्पर्क में तीन पुरुष आते हैं, वे तीनों ही उसे अपनी वासना का शिकार बनाना चाहते हैं परन्तु वह उनके चंगुल में नहीं आती। वह जीवन में समानता माँग चाहती है और जीवन साथी की तलाश में है। सर्वप्रथम उसके सम्पर्क में मदन आता है परन्तु वह उसे अपनी दासी के रूप में देखना चाहता है। तदुपरान्त शंकर और रमेश आते हैं। शंकर शिकारी तथा असभ्य है। मदन माया को ले जाना चाहता है परन्तु वह उसे कहती है— तुम मुझे प्रेम नहीं करते। जाओ। तुम अपने रास्ते चले जाओ। इस बर्बर शिकारी से मैं स्वयं निबट लूँगी।'[1] अन्त में रमेश उसे महादेवी कहकर पुकारता है परन्तु वह तीनों को कड़े शब्दों में कहती है— मैं देवी भी नहीं जो केवल अपने आसन पर बैठी रहूँ। तुम एक दासी खिलौना या देवी चाहते हो सहगिनी की तुममें से किसी को भी जरूरत नहीं।'[2] परिणाम यह होता है कि वह तीनों को छोड़कर अलग चली जाती है और अपनी रक्षा करने में सफल होती है। इस नाटक में परिलक्षित होता है कि आधुनिक नारी अपने स्वत्व की रक्षा में सक्षम है।

प्राचीन युग में नारी अपमान सहन करने की आदि थी परन्तु अब वह अपने स्वाभिमान की रक्षा करना जानती है। वह किसी पर भार न बनकर नौकरी करती है। विष्णु प्रभाकर के 'समता' नाटक में विनोद लता को अपने साथ ले जाता है। समाचार-पत्रों में उसे अपराधी घोषित की जाती है परन्तु वह स्वयं दिल्ली न जाकर दिल्ली में रहकर अध्यापन कार्य करने में सफल होती है। वह अपने स्वाभिमान की रक्षा के विषय में मन्दाकिनी से कहती है— मैंने भी माना अपमानित और उपेक्षित जीवन व्यतीत करने से तो श्रेष्ठ है अपने पैरों पर खड़े होकर

---

१ उपेन्द्रनाथ अश्क : अलग अलग रास्ते, पृ. ९५-९६

उपेन्द्रनाथ अश्क : कैद और उड़ान, पृ. १५७

और देख भी नहीं और मैं उनके तलुए सहलाऊँ। जाएँ हजार बार जाएँ। रो रो कर प्राण दे दूँगी किन्तु जाऊँगी नहीं।'[1] उर्मिला के इस कथन से यह प्रकट होता है कि वह आधुनिक नारी के रूप में बोल रही है और किसी भी दशा में अपना आत्म सम्मान न खोकर पुरुष के आगे झुकने को तैयार नहीं होती।

पृथ्वीनाथ शर्मा ने 'नया रूप' नाटक में स्त्री को पुरुष से अधिक उन्नति करते हुए चित्रित किया है। रानी की सगाई रोशन (जो पहले क्लर्क अब मजिस्ट्रेट है) से हो जाती है। परन्तु रानी को अधिक शिक्षित न देखकर वह रानी के पिता से शर्त रखता है कि यदि उसको किसी अच्छे कालेज में ऊँची शिक्षा नहीं दिलवाओगे तो वह उससे विवाह नहीं करेगा। परिणाम स्वरूप रोशन रानी से विवाह न करके नाधिका (अमीर लड़की) से विवाह कर लेता है। रानी अपने घर पर ही शिक्षा का प्रबन्ध करती है। रानी की सखी विमा उसकी माता श्याम कौर से कहती है कि इसे पूर्ण शिक्षित होने दीजिए और यह पुरुषों से आगे निकलेगी तो श्याम कौर कहती है कि हमारा काम तो घर सम्भालना है न कि पुरुषों से होड़ लेना। इस पर विमा कहती है— आप ठीक कहती हैं माताजी पर क्षमा कीजिए जहाँ पुरुष अन्याय करेगा उस ठौर रह पर नारी के लिए नारी को उससे होड़ लेनी ही होगी।'[2] अन्त में रानी पूर्णरूपेण शिक्षित होकर आई०ए०एस० अधिकारी बनकर रोशनलाल की आफिसर बनती है। वह रोशन को शिक्षा देती है कि स्त्रियों की उपेक्षा करने पर उनमें पुरुषों से आगे बढ़ने की क्षमता है।

विनोद रस्तोगी के 'नये हाथ' नाटक में शालिनी यूरोप घूमकर आई है। वह नारी स्वातन्त्र्य के पक्ष में है और नारी की गुलामी के विरुद्ध आवाज उठाती हुई अजयप्रताप से कहती है— अपने समाज में पत्नी दासी की तरह तो होती ही है। मैं किसी की गुलामी नहीं कर सकती। भगवान् ने स्वतन्त्र पैदा किया है फिर जान बूझ कर जंजीरों में क्यों बंधू।'[3] वह नारी की आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डालती हुई उस आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व करती हुई कहती है— वह जमाना गया जब औरत को रोटी के लिए पिता, पति और अन्त में पुत्र पर निर्भर रहना पड़ता था। आज वह आर्थिक रूप में स्वतन्त्र है।[4] इस प्रकार नारी किसी भी प्रकार के बन्धन में न रहकर स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करना पसन्द करती है और प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष का मुकाबला करने की उसमें उत्कट अभिलाषा प्रदर्शित हुई है।

(ट) विवाह की समस्या

प्राचीन-काल में विवाह का अधिकार सन्तान को न होकर माता पिता को

---

१ पृथ्वीनाथ शर्मा उर्मिला पृ ६

२ पृथ्वीनाथ शर्मा नया रूप पृ ६४

३ विनोद रस्तोगी नये हाथ पृ ४

४ वही पृ ६१

था। वे अपनी इच्छा से बच्चों के विवाह तय करते थे परन्तु आधुनिक-काल में इस धारणा में परिवर्तन होने के कारण विवाह का अधिकार माता पिता के हाथ से निकल कर युवक एवं युवती के हाथ में आ गया। आज के युवक एवं युवती जाति-पाँति अमीरी गरीबी के प्रश्न को अनावश्यक समझते हुए अपनी इच्छानुसार विवाह कर रहे हैं। वृन्दावनलाल वर्मा के "बाँस की फाँस" नाटक में गोकुल ने एक गरीब लड़की से विवाह करके समाज में आदर्श की स्थापना की है। गोकुल एक विद्यार्थी सम्मेलन में भाग लेकर आया है। मार्ग में अचानक गाड़ी की टक्कर होने से पुनिता एवं उसकी माता को सख्त चोट आती है। डाक्टर के कहने पर गोकुल ने पुनिता के लिए अपना खून दिया जिससे वह शीघ्र ही स्वस्थ हो गई। दोनों के आकर्षण पर उनका विवाह हो जाता है। गोकुल ने अपने माता पिता की स्वीकृति भी नहीं ली और जाति-पाँति को भी अनावश्यक समझ कर एक गरीब कन्या से विवाह करके उसको गरीब माँ को सुख प्रदान किया। वर्मा जी के 'राखी की लाज' नाटक में भी इसी प्रकार की समस्या को उठाया गया है। सामन्तर चम्पा से विवाह करना चाहता है परन्तु चम्पा का पिता ऊँच-नीच, जाति पाँति को मानता है। इसलिए वह विवाह में बाधक बन रहा है। इस भावना को महत्व न देते हुए सामन्तर चम्पा से कहता है— मैं दादा से स्पष्ट कह देना चाहता हूँ। जात-पात की कोई बाधा नहीं है। मैं क्यों न जी खोलकर उनसे कह दूँ और उनकी असीम माँग लूँ?[1] अन्त में उनका विवाह सम्पन्न हो जाता है। इस प्रकार इस नाटक में विवाह की समस्या को सुलझाया गया है।

हरिकृष्ण प्रेमी के 'ममता' नाटक में रजनीकान्त कला से विवाह करना चाहता है परन्तु कला की माता इस विवाह के विरुद्ध है। कला रजनीकान्त से कहती है कि माँ जाति से बाहर विवाह करने में असमर्थ है। इस पर रजनीकान्त कला को समझाता है— नहीं कला मैं तुम्हारी माँ को समझा लूँगा। जातियों की सीमाएँ कृत्रिम हैं जो हम केवल बनाने वाली हैं मनुष्यता के टुकड़े करने वाली हैं। स्वभावतः प्रत्येक मनुष्य एक ही जाति का है—मनुष्यता ही उसका धर्म है। यदि अपनी ही जाति से सम्बन्ध जोड़ना स्वाभाविक होता तो हृदय अन्य जाति के व्यक्ति के चरणों पर न्यौछावर हो क्यों होता?[2] परिणामस्वरूप उनका विवाह सम्पन्न नहीं हो पाता। लता के सामने भी विवाह की समस्या है। उसका विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध विनोद से हो रहा है परन्तु वह विनोद से विवाह करने के लिए तैयार नहीं है। परिणाम यह होता है कि लता विवाह के कपड़े पहनने पर भी वहाँ से भाग जाती है रजनीकान्त के पास आश्रय लेती है और उससे कानूनी विवाह (सिविल मैरेज) कर लेती है। प्रस्तुत नाटक में लता के विवाह की समस्या को आधुनिक ढंग से सुलझाया गया है। प्रेमी जी के "साँपों की सृष्टि" नाटक में देवल शंकरदेव से प्रेम करती है परन्तु देवल का पिता ऊँच-नीच की भावना को मानता है।

१ वृन्दावनलाल वर्मा राखी की लाज पृ० ७४
२ हरिकृष्ण प्रेमी ममता पृ० १ १८

कमलावती देवल से कहती है कि तूने उससे विवाह क्यों नहीं किया ? इस पर देवल उत्तर देती है—"पिता जी की हठ के कारण ऐसा नहीं हो सका। वह यादवों को बघेलों से हीन समझते हैं।"[1] परिणाम यह होता है कि देवल अपने पिता के हठ एवं सामाजिक ऊँच नीच के कारण शंकरदेव से विवाह नहीं कर सकी। आधुनिक समाज में भी कई बार इतना अधिक विरोध हो जाता है कि लड़की और लड़के की इच्छाओं को मर्दित कर दिया जाता है और उनको विवाह के बन्धन में नहीं बंधने दिया जाता।

जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द ने 'समर्पण' नाटक में विवाह की आवश्यकता पर बल दिया है। इनका मत है कि आधुनिक युवक और युवतियों को विवाह नहीं करना चाहिए परन्तु सुषमा इसे आवश्यक मानती है। सुषमा विवाह को जीवन में अनिवार्य मानती हुई इन्दिरा से कहती है— जीवन की सबसे बड़ी गम्भीर समस्या, विवाह का प्रश्न है। इसके समाधान पर जीवन का भविष्य निर्भर है। तुम इसको चाहे जितना जोर से विरोध करो मैं नहीं मान सकती। ऊँचे स्वर से सत्य को नहीं दबाया जा सकता।"[2] मिलिन्दजी ने इस नाटक में विवाह की समस्या को जीवन की मुख्य समस्या माना है। उनका विचार है कि यदि जीवन में विवाह की समस्या का समाधान हो जाता है तो जीवन सुचारु रूप से व्यतीत हो जाता है अन्यथा नहीं।

जगदीशचन्द्र माथुर ने 'शारदीया' नाटक में विवाह की समस्या को आधुनिक ढंग से देखने का प्रयास किया है। बायजाबाई नरसिंहराव से प्यार करती है और वे दोनों विवाह करना चाहते हैं परन्तु बायजाबाई के पिता शर्जेराव अपने स्वार्थ तथा लाभ के लिए उसका विवाह राजा दौलतराव सिंधिया से कर देते हैं। राजा दौलतराव सिंधिया से सर्जेराव को प्रधान-मन्त्री का पद मिला है तथा अनेक प्रकार के लाभ हुए हैं। सर्जेराव ने बायजाबाई का ध्यान नरसिंहराव से हटाने के लिए यह घोषित किया कि नरसिंहराव की युद्ध में मृत्यु हो गई। इधर नरसिंहराव को फाँसी का हुक्म दिया गया और तदुपरान्त आजीवन कारावास दिया गया। बायजाबाई के विवाह सम्पन्न होने के पश्चात् नरसिंहराव के मुक्त होने के आसार हुए परन्तु उसके हृदय में ग्रन्थि बन चुकी थी अन्त में बायजाबाई को अपनी सारी कहानी सुना कर वह आजीवन किले में ही बन्दी रहा। इस प्रकार नाटककार ने विवाह की समस्या को एक जटिल रूप दे दिया और उसका समाधान प्रस्तुत नहीं किया।

आधुनिक युग में कई बार निधनता के कारण विवाह सम्पन्न नहीं हो पाते। डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने 'रातरानी' नाटक में विवाह में कम व्यय करने की एक नई विधि का निर्माण किया है। निरंजन और सुन्दरम् दोनों ही आधुनिक युग के नव शिक्षित युवक-युवती हैं। वे अधिक सम्पन्न नहीं हैं परन्तु दोनों विवाह करना

[1] हरिकृष्ण प्रेमी मापा का सष्टि प ३५
[2] जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द समर्पण प

चाहते हैं। वे कुन्तल के घर जाकर, अपने हाथों में फूलों को लेकर विवाह के बन्धन में बंध जाते हैं तथा जीवन में पारस्परिक साथ देने के लिए वचनबद्ध भी होते हैं। उनके विवाह में किसी भी प्रकार की रसम, लेन देन आदि नहीं होता। इस प्रकार डा० लाल ने आधुनिक परिवर्तनशील युग में युवक-युवतियों के लिए विवाह की नई पद्धति का निर्माण किया है, जिसमें न व्यय होता है और न कठिनाई। यदि समाज में इस प्रकार के विवाह प्रचलित हो जायें तो एक तो धन का अपव्यय न हो और दूसरे निर्धन व्यक्ति अपने बच्चों के विवाह सुविधानुसार कर सकते हैं। डा० लाल के 'दर्पन' नाटक में हरिपद्म और पूर्वी दोनों आपस में प्रेम करते हैं तथा विवाह के सूत्र में बंधना चाहते हैं। हरिपद्म अपने पिता से पूर्वी का परिचय देता है कि वह क्षत्रीय की कन्या एवं दार्जिलिंग की रहने वाली है। परन्तु उसके पिता कहते हैं कि हम तो कायस्थ हैं और बनारस के रहने वाले हैं यह विवाह कैसे हो सकता है? इस पर हरिपद्म कहता है— आप किसी के परिचय को ही महत्त्व देते हैं। जाति, स्थान, कुल परम्परा मेरे लिए उनका कोई भी महत्त्व नहीं है। मेरे लिए सारा महत्त्व किसी के आन्तरिक परिचय का है।"[1] परिणामस्वरूप, विवाह की तिथि निश्चित हो जाती है। अचानक बौद्ध विहार से एक व्यक्ति आकर पूर्वी को ले जाता है क्योंकि वह वास्तव में दर्पन थी, जो बचपन में ही बौद्ध विहार को दान कर दी गई थी। इस प्रकार समाज ने उनके मार्ग में बाधा बनकर उनको विवाह के बन्धन में नहीं बँधने दिया। हरिपद्म आजीवन उसके विषय में सोचता रहता है।

उदयशंकर भट्ट ने "नया समाज" नाटक में विवाह की समस्या को उठाया है। रूपा पुरुष के वेश में (वास्तव में लड़की) जमींदार मनोहरसिंह के यहाँ नौकरी करती है। सुन्दर होने के कारण कामना उस पर आसक्त है और उसे बहुत प्यार करती है। कामना उससे विवाह करना चाहती है परन्तु अचानक ही भेद खुल जाता है और उसके सपने मिट्टी में मिल जाते हैं। परिणाम यह होता है कि कामना का विवाह धीरू से होता है। धीरू से उसने विवाह तो किया पर उसके हृदय में रूपा के लिए एक याद रह जाती है।

विनोद रस्तोगी के "नये हाथ" नाटक में महेन्द्रपाल माला से प्रेम करता है और उससे विवाह करना चाहता है। परन्तु अजय प्रताप अपनी पुत्री माला का विवाह महेन्द्रपाल से करना चाहता है। माता पिता के आदेशानुसार अपनी इच्छा के विरुद्ध माला महेन्द्रपाल को आकर्षित करने का असफल प्रयत्न करती है। वास्तव में माला अपने सहपाठी सतीश से प्रेम करती है। वाला समाज में अब तक निम्न जाति की कन्या समझी जाती है परन्तु वह अजय प्रताप की जायज सन्तान है। महेन्द्रपाल अजय प्रताप की पत्नी माधुरी से कहता है— मैं ऊँच-नीच जाति-पाँति में विश्वास नहीं करता। मेरे लिए सब मनुष्य समान हैं।"[2] नवाब यूसुफ उनके

१ डा० लक्ष्मीनारायण लाल : दर्पन, पृ० २
२ विनोद रस्तोगी : नये हाथ, पृ० ११३

सारिका के जीवन को नष्ट करने के लिए पूर्णतया उत्तरदायी है।

उदयशंकर भट्ट के 'नया समाज' नाटक में जमींदार मनोहरसिंह का पड़ोस की एक ठकुराइन से अवैध प्रेम हो जाता है और उसी के परिणामस्वरूप रूपा ने जन्म लिया है। समाज के भय के कारण उसने रूपा को भूमि में गाड़ दिया परन्तु तत्काल ही एक गड़रिये ने उसे निकाल लिया तथा जीवित होने पर उसका उचित रूप से पालन-पोषण किया। बाद में भेद खुल जाने पर मनोहरसिंह दादा (गड़रिया) से कहता है— 'यह मेरे पाप की कमाई है दादा। उस समय मैं जवानी के नशे में पागल था। पागल था दादा, मेरे पड़ौस में एक ठाकुर रहते थे। वे फौज में नौकर थे। उसकी पत्नी से मेरा प्रेम हो गया उसी से यह सन्तान हुई। सवेरे-सवेरे हमने इसे गाड़ दिया।"[1] बाद में मनोहरसिंह इसी कन्या का विवाह बड़ी धूम धाम से करने के लिए तैयार हो जाता है।

डा० लक्ष्मीनारायण लाल के 'नाटक तोता मैना' नाटक में भी इसी प्रकार की समस्या को चित्रित किया गया है। राजा की रानी दुश्चरित्र है और वह अपने मन्त्री से अवैध प्रेम करती है। राजा ने उसे अपनी आधी आयु देकर जीवित किया है परन्तु रानी राजा से सन्तुष्ट न होकर मन्त्री से भाग चलने को कहती है। रानी उसकी पत्नी बनने को तैयार है और उसे कहती है—"मैं तुम्हारे संग चलने को बिल्कुल तैयार हूँ। जल्दी करो मन्त्री। यहाँ और रुकना खतरे से खाली नहीं है। चलो भाग चलो जल्दी। जहाँ तुम हमेशा-हमेशा के लिए मुझे अपनी रानी बना कर रख सको।[2] डा० लाल ने इस नाटक में यह दिखाने का प्रयास किया है कि विवाहिता स्त्री भी इस प्रकार के कुकर्म में फँसती है जिसके मूल में यौन भूख एवं अन्य मनोवैज्ञानिक कारण होते हैं।

मोहन राकेश के 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में मल्लिका की माता उसका विवाह विलोम से करना चाहती है परन्तु मल्लिका एवं कालीदास चिरकाल से आपस में प्रेम करते हैं। धनाभाव के कारण उनका विवाह का प्रसंग नहीं उठा है। मल्लिका अपनी माता से कहती है— तुम उनके प्रति सदा अनुदार रही हो माँ। तुम जानती हो कि उनका जीवन परिस्थितियों की कैसी विडम्बना में बीता है। मातुल के घर में उनकी क्या दशा रही है? उस साधनहीन और अभावग्रस्त जीवन में विवाह की कल्पना ही क्या की जाती है।[3] कालीदास इतिहास का कालिदास न होकर आधुनिकता से प्रेरित है। दोनों आधुनिकता के युग में रहकर प्रेम करते हैं परन्तु विपरीत परिस्थितियों के कारण मिल नहीं पाते।

भगवतीचरण वर्मा ने 'वासवदत्ता का चित्रालय' नाटक में प्रेम की समस्या को एक दूसरे ढंग से चित्रित किया है। वासवदत्ता मथुरा की एक वेश्या (नर्तकी)

---

१ उदयशंकर भट्ट नया समाज पृ० ६५
२ डा० लक्ष्मीनारायण लाल नाटक तोता मैना पृ० ७९
३ मोहन राकेश आषाढ़ का एक दिन पृ० ७

है। वह महाराज क्षेमेन्द्र के पास रहती है परन्तु उसकी काम भावना शान्त नहीं होती। वह उपगुप्त पर आसक्त है परन्तु उपगुप्त बौद्ध भिक्षु होने के कारण उससे इस प्रकार के सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकता। वासवदत्ता उससे प्रणय की भीख मांगती है तथा कहती है— वर्षा के प्रथम घन उमड़ रहे हैं। मेरे कान्त महाराज क्षेमेन्द्र नगर के बाहर गये हुए हैं। मेरी सेज सूनी पड़ी है। बादल गरज रहे हैं बिजली चमक रही है। ससार की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी वासवदत्ता भिक्षु उपगुप्त से प्रणय की भिक्षा मांग रही है। मेरे साथ चलो भिक्षु।''[1] नाटककार को इस नाटक में त्यागी प्रेम का चित्रण अभीष्ट रहा है। इस प्रकार भिक्षु उपगुप्त ने उसका साथ न देकर आत्म की भावना का परिचय दिया है और नैतिक दृष्टिकोण की स्थापना की है।

जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द ने गौतम नन्द नाटक में विवाह से पूर्व प्रेम की समस्या को उठाया है। आधुनिक युग में विवाह से पूर्व ही प्रेम हो जाता है और लड़के तथा लड़कियाँ परस्पर वचनबद्ध हो जाते हैं। इस नाटक में नन्द एवं सुन्दरी का आपस में विवाह से पूर्व प्रेम हो जाता है। नन्द अपने साथी देवदत्त से कहता है— यही वह राजकुमारी सुन्दरिका देवी है जिनकी चर्चा मैं तुमसे किया करता था और यह इनकी सखी माधविका हैं। इन दोनों का विवाह तो अभी नहीं हुआ पर मैं और सुन्दरिका उसके लिए परस्पर वचनबद्ध अवश्य हो चुके हैं।[2] नन्द एवं सुन्दरिका दोनों ही आधुनिक युग से प्रभावित हैं और नाटककार इनके द्वारा आधुनिक समाज में व्याप्त विवाह से पूर्व प्रेम की समस्या की ओर संकेत करता है।

उपेन्द्रनाथ अश्क ने अंधी गली नाटक में एक लड़के से दो व्यक्तियों को प्रेम करते हुए दिखाया है। सुरेश अपनी चाची की छोटी बहन नीति से प्रेम करता है। पहले तो वह इस प्रेम को किसी के सामने व्यक्त नहीं करता परन्तु चाची की मिर दबाते हुए वह सब कुछ कह देता है और नीति के पत्रों का उल्लेख भी करता है— उसने लिखा है कि जियेंगे तो इकट्ठे जियेंगे मरेंगे तो इकट्ठे मरेंगे।[3] इतना ही नहीं वह कहता है— मुझे उसने अपने रक्त से लिखकर दिया है कि मुझसे प्रेम करती है और सदा करती रहेगी सामाजिक लोक-लाज एवं भय के कारण सुरेश और नीति का विवाह सम्पन्न नहीं होता और सुरेश गंगा में कूद कर मर जाता है। बाद में यह सूचना समाचार-पत्रों में प्रकाशित होती है और सब पश्चाताप करते हैं। सुरेश आजकल के प्रेमियों का प्रतिनिधित्व करता है, क्योंकि आधुनिक असफल प्रेमी प्राय आत्महत्या कर लेते हैं। नीति हलद्वानी की गली में छोटी मासी लगती

1 भगवतीचरण वर्मा वासवदत्ता का चित्रालय पृ ८४
2 जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द गौतमनन्द पृ ५६
3 उपेन्द्रनाथ अश्क अंधी गली पृ ८३
4 वही पृ ८८

है परन्तु वह उसके प्रति आकृष्ट है। दीनदयाल नीति से कहता है— मैंने तुम्हारी बहन से शादी करने से पहले तुम्हें देखा होता तो चाहे जैसे होता तुम्हें अपनी बना लेता।'[1] इतना कहकर वह उसे बगल मे दबा कर उसका माथा चूम लेता है। इस प्रकार नीति से दो पुरुष प्रेम करते हैं परन्तु नीति को पाने मे दोनो ही असफल रहते हैं।

विष्णु प्रभाकर ने 'समाधि' नाटक मे अवैध प्रेम को एक दूसरे ढंग से प्रस्तुत किया है। आनन्दी एक भिक्षुणी है और आजीवन क्वारी रहती है परन्तु उसने अवैध सन्तान को जन्म देकर पाप किया है। विजय के उत्पन्न होते ही उसके हाथ में एक पत्रसहित तावीज बांध देती है और उसको एक भिक्षुणी को सुपुर्द कर देती है। तदुपरान्त आनन्दी की मृत्यु हो जाती है। कुछ समय पश्चात् कुमार पत्र को पढ़ता है—"इस बेचारे का क्या अपराध है। जो है मेरा है मेरे देश का है। मैं ही इसके दण्ड को सहूँगी यह क्यो सहे।[2] इस प्रकार अवैध यौन सम्बन्ध स्थापित करने का दुष्परिणाम यह हुआ कि आनन्दी की मृत्यु हुई एवं विजय को सामाजिक सम्मान नहीं मिला। नाटककार के पास आनन्दी की मृत्यु के अतिरिक्त और कोई निदान नहीं था।

सेठ गोविन्ददास ने 'अशोक' नाटक मे एकांगी प्रेम को चित्रित किया है। सम्राट अशोक वृद्धावस्था में पच्चीस वर्ष की युवती तिष्यरक्षिता से विवाह कर लेते हैं परन्तु वह राजकुमार कुणाल के प्रति आकृष्ट है। कुणाल उससे माता के समान व्यवहार करता है और उसके प्रेम का तिरस्कार करता है। तिष्यरक्षिता उससे कहती है—'जिसके प्रणय का तिरस्कार किया जाता है वह नारी बाघिन हो जाती है। अच्छा अच्छा, कुणाल मैं—मैं तो तुम्हें सुख देना चाहती थी अपूर्व सुख और स्वयं भी उस सुख से सुख पाना चाहती थी। पर पर मेरा ऐसा तिरस्कार। इसका यदि भीषण और पूर्ण प्रतिकार न लिया तो तो मैं तिष्यरक्षिता नहीं सच्ची स्त्री नहीं।'[3] अन्त मे वह प्रेम मे असफल होकर राजकुमार कुणाल की आँखें निकलवाकर उसे अन्धा बना देती है। इस नाटक मे सेठजी ने तिष्यरक्षिता के चरित्र को आधुनिक नारी के समतुल्य चित्रित किया है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि यदि कोई स्त्री किसी से प्रेम मे असफल हो जाती है तो वह चोट खाई हुई नागिन की तरह प्रतिशोध लेने के लिये तैयार रहती है और उसे आजीवन हानि पहुँचाने की चेष्टा करती है। अन्त मे तिष्यरक्षिता कुणाल की आँखें निकलवाकर ही अपने अहम् का परितोष करती है।

---

१ उपेन्द्रनाथ अश्क अंधी गली पृ० १०६
२ विष्णु प्रभाकर समाधि पृ० ११८
सेठ गोविन्ददास अशोक पृ ६०

दहेज न देने के कारण विवाह सम्पन्न नहीं होता। कुन्तल अपनी सखी सुन्दरम् से विवाह के टूटने का कारण बतलाती है—'मेरी शादी निरंजन से तय हो गई। गोद भरने की रसम भी हो गई। विवाह की तारीख भी निश्चित हो गई फिर रुपयों की कमी के कारण शादी टूट गई। मेरे पिताजी उन्हें अपनी पूँजी से पाँच हजार रुपये दहेज में दे रहे थे। किन्तु एडवोकेट साहब आठ हजार से एक भी कम नहीं कर रहे थे। मेरी वह शादी क्या टूटी पिताजी ही टूट गये।'[1] इस प्रकार डॉ० लाल ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि दहेज न देने के कारण विवाह टूट जाते हैं और कन्याओं का जीवन तो नष्ट होता ही है साथ में परिवार के माता पिता अपने आर्थिक अभावों की दुनिया में जूझते हुए टूटते दृष्टिगत होते हैं।

(ज) पुनर्विवाह समस्या

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में एक नई जागृति फैली तथा शिक्षा के प्रति विशेष ध्यान दिया गया। शिक्षित वातावरण में जनता की भावना का परिष्कार हुआ और विधवा को समाज की सहानुभूति प्राप्त हुई। विधवा की अनेक समस्याएँ थीं जिनमें उसके विवाह का प्रश्न मुख्य था। समाज में यह धारणा बनी कि यदि विधवा का विवाह नहीं किया गया तो इससे अनेक समस्याओं के जन्म होने का भय है। परिणामस्वरूप उसके विवाह की ओर समाज का ध्यान आकर्षित हुआ। नाटककारों ने भी अपने नाटकों में विधवा विवाह की समस्या का सहानुभूतिपूर्वक चित्रित करने का प्रयास किया। हरिकृष्ण प्रेमी के उद्धार नाटक में कमला का विवाह बहुत छोटी आयु में कर दिया गया परन्तु पति की मृत्यु होने से वह विधवा हो गई। हमीर उससे विवाह करना चाहता है परन्तु कमला उससे कहती है कि देश के कर्णधार नारी रूप के मोह में पड़कर समाज की मर्यादा तोड़ेंगे तो समाज में उनका मान घटेगा। हमीर उसकी इस बात को न मानता हुआ कमला से कहता है— समाज की मर्यादा। दुधमुही बच्चियों का विवाह कर देना है और उनके विधवा हो जाने पर उन्हें जीवन के सभी सुखों से वंचित रखना इसे तुम समाज की मर्यादा कहती हो ? नहीं कमला यह घोर अत्याचार है। हम समाज के पाखण्ड के विरुद्ध विद्रोह करना है।[2] हमीर समाज की मर्यादा की चिन्ता न करता हुआ कमला से विवाह कर लेता है। प्रेमी जी ने कमला के विवाह को सम्पन्न करा कर समाज के अन्य युवकों को उत्साहित किया है कि वे भी विधवाओं के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाएँ और उनसे विवाह करें।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने कवि भारतेन्दु नाटक में विधवा विवाह के प्रश्न को अपने नाटक का मुख्य विषय बनाया है। हरिश्चन्द्र विधवा के विषय में राधाचरण से कहते हैं— यह माधवी है। यहाँ जगनगंज की कुलीन क्षत्रिय कन्या। नौ साल की आयु में

---

१ डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल रातरानी पृ० ४०
२ हरिकृष्ण प्रेमी उद्धार पृ० ८५

जो यह विधवा हुई मानहु जगत पिता का कठोर शासन न सह सकी इसके भीतर प्रकृति की हिंसा थी पिता न समझा यह कलंकिनी है।'[1] परन्तु हरिश्चन्द्र उसे अपने यहाँ आश्रय देते हैं और उसकी पूरी इज्जत से रखते हैं। साधारण इस व्यवहार से बहुत प्रभावित है और उनसे कहता है कि मैं सुन चुका हूँ मथुरा के चंगुल से आप इसे निकाल लाए और इसे अपनाकर आपने मुर्दा समाज में नया प्राण फूँका। इसके अतिरिक्त एक विधवा और है जिसका नाम है मल्लिका। यह बंगाली विधवा है। इसे लोगों को हरिश्चन्द्र ने अपने यहाँ आश्रय दिया और मल्लिका को तो एक पुस्तक की दुकान भी खुलवा दी ताकि वह जीवन निर्वाह कर सके। इस प्रकार अब विधवाओं के पुनर्विवाह होने लगे हैं और उनको समाज में उचित आदर भी प्राप्त होने लगा है।

वृन्दावनलाल वर्मा ने 'मंगल-सूत्र' नाटक में पुनर्विवाह की समस्या को उठाया है। बुद्धामल समाज-सुधारक है और पुनर्विवाह के पक्ष में है। वे एक सभा में विधवा और पुनर्विवाह के पक्ष में भाषण देते हुए कहते हैं— 'दान करने का समय गया—अब कुछ कर दिखाने का समय आया है। समाज को पुराने मूल्य भावों के आधार को छोड़कर आर्थिक योजना पर चलना पड़ेगा। इस आर्थिक योजना में स्त्री को स्वावलम्बी बनना होगा। विधवा विवाह और पुनर्विवाह का मैं समर्थन करता हूँ। सात आठ वर्ष तक जिस के पति का पता न लगे जिसका पति नपुंसक या कोढ़ी हो और जिसका पति स्वभाव से क्रूर हो दुष्ट और दुराचारी हो उस स्त्री को सम्बन्ध विच्छेद और पुनर्विवाह का अधिकार मिलना चाहिए।'[2] अनका का विवाह कुन्दनलाल से हो जाता है परन्तु वह अनका को बहुत तंग करता है और पीटता भी है। परिणामस्वरूप पिताजी की सहायता से वह घर से भागने में सफल होती है। इसके पिता रामनाथ अनका का पुनर्विवाह शालिग्राम के साथ कर देता है। अब अनका अपने जीवन में सुखी है क्योंकि यह पुनर्विवाह उसकी स्वीकृति से ही हुआ है। नाटककार पुनर्विवाह के पक्ष में है और नारी के प्रति सहानुभूति और मानवता की भावना व्यक्त करता है। आधुनिक युग में तो यदि पति अपनी पत्नी को क्रूरता से पीटता है या उसका शोषण करता है तो न्यायालय में जाकर वह उसे तलाक दे सकती है और पुनर्विवाह कर सकती है।

(भ) वेश्या समस्या

स्वतन्त्र भारत में वेश्यावृत्ति पर कानूनी तौर पर रोक लगा दी गई है परन्तु समाज की आँख बचाकर अब भी वेश्याएँ इस धन्धे से अपना जीवन निर्वाह करती हैं। यदि इन वेश्याओं को समाज में उचित स्थान इज्जत तथा जीवन निर्वाह की सहायता दी जाए तो ये इस धन्धे को छोड़ सकती हैं परन्तु समाज इनको न तो

---

१ लक्ष्मीनारायण मिश्र कवि भारतेन्दु पृ० ८१

२ वृन्दावनलाल वर्मा मंगल-सूत्र पृ० ५०

उचित आदर दे सकता है और न उन्हें जीवन में सुविधा एव आवश्यकतानुसार राशि दे सकता है। परिणाम यह है कि वे कानूनी रोक होने पर भी किसी न किसी बहाने अपने व्यवसाय को जारी रखती हैं।

हरिकृष्ण प्रेमी ने 'ममता' नाटक में वेश्या की समस्या को उठाने का प्रयास किया है। लता के घर से चले जाने के पश्चात् रजनीकान्त मद्यपान आरम्भ कर देता है एव बाजारू औरत से मन को बहलाता है। कला उसको ऐसा करने से रोकती है परन्तु रजनीकान्त उससे कहता है— इन्हे किसी से ईर्ष्या नहीं होती। इन्हें केवल पैसा चाहिए। जब चाहो तब ये आज्ञा पालने को प्रस्तुत है—ये जीवन पर कोई बन्धन नहीं डालतीं।[1] प्रेमी जी यह मानते हैं कि यदि समाज इन वेश्याओं को उचित स्थान प्रदान करे तो ये गृहिणी बन सकती हैं। 'शपथ' नाटक में कचनी नर्तकी है परन्तु समाज उसे वेश्या समझता है। वह मन्दाकिनी से अपने विषय में कह रही है— कचनी गृहिणी बनने का स्वप्न नहीं देखती। तुम्हारे भद्र समाज में इतनी उदारता कहाँ जो वेश्या को गृहिणी बनने का सम्मान पाने दे वह तो पतित को रसातल में धकेलता है।'[2] प्रेमीजी के अनुसार वेश्याओं के बनने में समाज दोषी है। कचनी का अभिप्राय भी यही है कि यदि एक स्त्री वेश्या बन जाती है तो समाज उसे सुधरने का अवसर नहीं देता। यदि उचित अवसर दिया जाए तो वह अवश्य ही सुधर सकती है।

उपेन्द्रनाथ अश्क के 'अलग अलग रास्ते' नाटक में प्रोफेसर मदन का विवाह राज से होता है परन्तु वह सुदर्शना से प्रेम करता है। मदन अपनी पहली पत्नी राज के रहते हुए भी सुदर्शना के साथ घूमता है। इसकी ओर सकेत करता हुआ ताराचन्द पूरन से कहता है कि जो लड़की एक विवाहित पुरुष के साथ नगे सिर नगे मुँह बारीक कपड़े पहने आठ मुँह रँगे, आवारा घूमती है, जिसे न अपना ध्यान है, न भले घराने की दूसरी लड़की का, वह वेश्या नहीं तो क्या है? मैं कहता हूँ वेश्याओं में भी इतनी लाज शरम होती होगी।'[3] परिणाम यह होता है कि मदन सुदर्शना से विवाह कर लेता है। अश्कजी ने दुश्चरित्र लड़की को भी वेश्या के समान माना है और इस प्रकार की लड़की की भर्त्सना की है।

(अ) हरिजनों में जागृति

समाज में हरिजन बहुत पिछड़े हुए और उनकी दशा अत्यन्त शोचनीय थी। उनको समाज में आदर का स्थान प्राप्त नहीं था एव उनको मन्दिर तथा कुआ, विद्यालयों में प्रवेश नहीं मिलता था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् उनको प्रत्येक क्षेत्र में सुविधाएँ प्रदान की गई तथा उनकी उन्नति का मार्ग खोला गया। नौकरियो

१ हरिकृष्ण प्रेमी ममता पृ ९८

२ हरिकृष्ण प्रेमी शपथ पृ १२६

३ उपेन्द्रनाथ अश्क अलग अलग रास्ते पृ १११

में उनके स्थान सुरक्षित रखकर विद्यालय, मन्दिर आदि में प्रवेश का प्रतिबंध समाप्त कर दिया गया। अब हरिजनों में और दूसरी जाति के लोगों में कोई भेद भाव नहीं रहा।

जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द ने समर्पण नाटक में हरिजनों में विशेष जागृति की भावना का चित्रण किया है। नगर की बस्ती से दूर एक हरिजन आश्रम है। कुछ *समाज सेवक उस आश्रम में पहुँचते हैं तो आश्रम के लोग उनका सत्कार करते* हैं। परन्तु सत्कार अपने को उनसे अलग मानते हैं एवं छुआछूत की बात करते हैं। इस पर समाज सेविका रत्नादेवी उनसे कहती है—'ये सब मनगढ़ंत बात हैं, चौधरी। ईश्वर ने किसी को अछूत बनाकर नहीं भेजा।'[1] इस प्रकार हरिजनों को सबके समान माना जाने लगा है। उपेन्द्र नवीनचन्द्र से हरिजनों की सहायता के लिए उनका दृष्टिकोण पूछते हैं तो वे कहते हैं— मैं चाहता हूँ कि वे स्वयं और सारा मनुष्य समाज इन्हें समष्टि में सामान्य मनुष्य समझे। भावना, चिन्तन, भाषा और आचरण में कोई इनके साथ जरा भी भेद भाव का अनुभव न करे। ये स्वयं भी अपने को सबके साथ सदा अभिन्न समझें। इस अभिन्नता का आधार राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समानता हो, किसी की उदारता या उपकार भावना नहीं। अस्पतालों में रोगियों की स्वच्छ रखनेवाले डाक्टरों और नर्सों और घरों में बच्चों का पाखाना और पेशाब साफ करनेवाली माताओं के समान ही इनकी भी प्रतिष्ठा हो।"[2] इतना ही नहीं इनके लिए पाठशालाएँ भी स्थापित होने लगी हैं। हरिजन आश्रम में एक कन्या पाठशाला की स्थापना हुई है। उसके कार्यक्रम के विषय में माधवी जमना से कहती है— आशा है अगले हफ्ते हरिजन कन्या पाठशाला का उत्सव खूब सफल होगा। लड़कियों का सामूहिक नृत्य तथा सम्मिलित संगीत शुद्ध जनकला का एक अच्छा नमूना सिद्ध होगा।'[3] इस कार्यक्रम में जिले के उच्च अधिकारियों ने भी निमंत्रण स्वीकार कर लिया है। इस प्रकार हरिजनों में जागृति की भावना व्याप्त होती जा रही है।

वृन्दावनलाल वर्मा के निस्तार नाटक में हरिजनों के जीवन की विशेष उन्नति का चित्रण हुआ है। मन्दिरों में प्रवेश न मिलने से, सार्वजनिक कुओं से पानी न भरने देने से और बर्तन न बनाने से हरिजनों ने हड़ताल की ठानी है एवं जुलूस निकाला है। और नारे लगाते हैं— क्रान्ति चिरंजीवी हो। छुआछूत का नाश हो। हमारा बर्तन बनाओ। हम कुओं से पानी भरेंगे। मन्दिरों में प्रवेश करने दो। अत्याचार का धुआँ बन जाय। हम सत्याग्रह करेंगे।" गोपीधर एक हरिजन एम०ए०एल०ए० है वह हरिजन सभा में भाषण करता है—'तुम्हें जितना मिला

१ जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द समर्पण पृ० ४
२ वही पृ० ४५-४६
३ जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द समर्पण पृ० ६५
४ वृन्दावनलाल वर्मा निस्तार पृ० १०

है उतने में गुजर नहीं हो सकती। युगों की रगड़ ने तुम्हें दुर्बल कर दिया है फिर भी तुम्हारा ईमान नहीं डिगा। अपना स्वार्थ साधन के लिए कम दाम देकर तुमसे पूरा काम लेते हैं। उनके खेतों पर पूरी मेहनत करके भी अधूरी मजूरी पाते हो। कुओं से पानी न भरने देना, मन्दिरों में न जाने देना, दुकानों, चायघरों और अन्य सार्वजनिक स्थानों से बाहर रखना—यह सब—इसलिए होता है कि कहीं तुम बराबरी के आर्थिक अधिकार न माँग बैठो।'[1] इससे हरिजनों में विशेष उत्साह का संचार होता है और वे अधिकारपूर्वक कुओं और मन्दिरों में प्रवेश करते हैं। परिणामस्वरूप उनकी विजय होती है और गाँव के मुखिया तथा सरपंच उनकी बातों को मान लेते हैं। सबकी मिली जुली एक सभा होती है और उनको पुरस्कार दिए जाते हैं। लीलाधर इस अवसर पर कहता है— आज पुण्य पर्व है। राजनीतिक स्वतन्त्रता आज के दिन घोषित की गई थी। हम सबको सामाजिक स्वतन्त्रता के भी दर्शन होने वाले हैं। रहन सहन साफ सुथरा बनाओ। बराबरी से रहो बराबरी से चलो।[2] इसके अतिरिक्त उनकी शिक्षा एवं पदों के विषय में घोषणा करता हुआ लीलाधर कह रहा है— 'तुम्हें शिक्षा के सुभीते मिलेंगे। ऊँचे पदों पर पहुँचोगे। सार्वजनिक स्थानों जैसे हलवाइयों के उसारे होटल, मन्दिर में जाने में तुम्हें कोई नहीं रोक सकेगा।'[3] इस प्रकार हरिजनों के लिए प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति का मार्ग खोल दिया गया। भारत सरकार ने इनके लिए प्रत्येक क्षेत्र में पद सुरक्षित कर दिए हैं एवं अनेक प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की हैं।

(ट) साधुओं का ढोंग

आजकल के साधु अनेक प्रकार के ढोंग रचकर खूब रुपया कमाते हैं और समाज के भोले भाले व्यक्तियों की आँखों में धूल झोंकते हैं। वृन्दावनलाल वर्मा ने 'कनेर' नाटक में इन साधुओं के ढोंग की पोल खोली है। कपिलानन्द साधु अपने आपको हठयोगी कहता है, योग की बातें कहकर तथा समाधि लगाकर खूब रुपया कमाता है। वह एक मन्दिर के सामने खड़ा होकर कुछ लोगों के सामने प्रदर्शन करता है और कहता है— हमारे गुरुओं ने कहा है कि योग की क्रियाएँ बिल्कुल गोपनीय हैं किसी को मत बताओ, परन्तु अब उनके बताने का समय आ गया है। इस तड़पते सुलगते और दुःखी संसार का योग ही शान्ति दे सकता है इसी के लिए मैं प्रदर्शन करता फिरता हूँ। योग में इतनी शक्ति है जितनी परमाणु बम एटमबम में भी नहीं। एटमबम विनाश के काम आ सकता है और योग रचने, बनाने और सृजन करने के काम आ सकता है। मैंने एक गोशाला खोली है और

---

1 वृन्दावनलाल वर्मा निस्तार पृ० १६
2 वही पृ० ८०
3 वही पृ० ८

साथ ही पर याताश्रम । उसके लिए जिसको जो कुछ करना हो कर देना ।"[1] इसके अतिरिक्त वह जगह जगह पर प्रवचन करता फिरता, शास्त्रार्थ करता है तथा ऐश का जीवन व्यतीत करता है । वर्माजी ने ललित विक्रम नाटक में बताया है कि आज कल ब्राह्मण भी लोभी हो गये हैं । ये अपनी वास्तविक वृत्ति को छोड़कर समाज में ढोंग फैलानेवाले समझे जाने लगे हैं । ललित आजकल के ब्राह्मणों पर आक्षेप करता है— पाखण्डी, कुर कमवाले, लिन्दी और रघुन के पग धन का रूप धर हुए वञ्चित्या से नूप ब्राह्मणों से बात भी न करें । इस प्रकार के ब्राह्मण बक और मार्जार वृत्ति के नीचे पाप छिपाकर अल्प बुद्धि और अबोध नर नारियों की वंचना और ठगी करते फिरते हैं । इनको तो पानी भी न दो । ये झूठ ब्राह्मण अन्य नरक में गिरेंगे ।[2]

आज के साधु वेश तो संन्यासी का रूप धारण करते हैं परन्तु पर्दे की आड में मार कुकर्म करते हैं । भगवतीचरण वर्मा के वासवदत्ता का चित्रालय नाटक में सामन्त ने संन्यास ले लिया है परन्तु वह सभी प्रकार के व्यभिचार करता है । वह मारुति से कहता है कि मैंने बैराग्य ले लिया है एवं मन्दिरा मँगवाने के लिए कहता है— एक छटाँक चरस और एक घड़ा अच्छी अंगूरी मदिरा । यह छिपाकर भजिएगा जिससे घर वालों को पता न चले ।[3] इस प्रकार ये साधु मदिरापान करते हैं और अनेक प्रकार के असामाजिक कार्यों को प्रोत्साहन देते हैं ।

आज के युग में कुछ व्यक्ति ऐसी विशेष औषधियों का निर्माण करते हैं और कहते हैं कि हमने ऐसी दवाई तैयार की है कि जो इसको पीएगा वह अवश्य सुन्दर हो जाएगा । डा० लक्ष्मीनारायण लाल के सुन्दर रस नाटक में पंडित राज ने ऐसी ही एक औषधि का निर्माण किया है और उस औषधि का प्रचार एवं पण्डितराज का पत्नी पाल हैं परन्तु सब व्यर्थ । पंडितराज महाचार्य से अपनी औषधि के विषय में कहते हैं— इस सुन्दर रस से वस्तुतः कोई सुन्दर नहीं होता, इसके विधिवत् सेवन से हृदय एवं मस्तिष्क पर ऐसा प्रभाव अवश्य पड़ता है कि पीने वाला अपने आपको सुन्दर समझने लगता है ।"[4] इस प्रकार इन नाटकों में आधुनिक साधुओं और पाखण्डियों के कार्यों की भर्त्सना की गई है ताकि साधारण जनता इनके प्रभाव में न आए ।

(ठ) कुण्ठा

आज के युग में यदि व्यक्ति की इच्छापूर्ति नहीं होती तो उसके हृदय में उस वस्तु के प्रति एक आकर्षण की भावना रह जाती है और समय-समय पर यह

१ वृन्दावनलाल वर्मा बीरबल पृ० १८
२ वृन्दावनलाल वर्मा ललितविक्रम पृ० ३
३ भगवतीचरण वर्मा वासवदत्ता का चित्रालय पृ० १८३
४ लक्ष्मीनारायण लाल सुन्दर रस पृ० ७८

भावना बलवती हो जाती है तथा अपना प्रदर्शन करती है। परिणाम यह होता है कि व्यक्ति क्रोधी खीजभरी प्रकृति का बनता चला जाता है और अपने पर्यावरण के साथ तालमेल नही कर पाता । उपेन्द्रनाथ अश्क ने भवर नाटक मे प्रतिभा के चरित्र के माध्यम से कुण्ठा का चित्रण किया है। नाटक के आरम्भ मे ही पर्दा उठने पर प्रतिभा अत्यन्त शिथिल तथा अयमनस्क सी सोफे पर लेटी हुई दिखायी देती है और कुछ क्षण शून्य मे छत की ओर देखती रहकर थकी-सी अँगड़ाई लेती है। उसकी भाव भगिमा सूचित करती है कि वह अपने वातावरण से ताल-मेल स्थापित नहीं कर पायी है थोडी देर के पश्चात् वह अगडाई लेकर कहती है— ओह आह ! कितना शून्य है यह जीवन। कहीं भी तो कोई ऐसी चीज नही जो ठोस हो जिसका सहारा लिया जा सके। [1] वह अपने पिताजी के दफ्तर मे उलझे रहने मम्मी के घर के कार्यों मे फँसे रहने एव बहनो के शृगार प्रसाधना मे तल्लीन रहने से खीज उठती है तथा उसे यह सब वितृष्णाजनक लगता है परन्तु साधारणता के प्रति यह वितृष्णा प्रतिभा की मूल प्रकृति का अग न होकर प्रोफेसर नीलम के प्रति उसके असफल आकर्षण की प्रतिक्रिया का ही अग है। प्रतिभा का विवाह सुरेश से होता है परतु विवाह के पश्चात् उसे लगा कि उसमे तथा सुरेश मे कोई बौद्धिक समता नही है, अत वह विवाह को तोड देती है। वह नीलिमा से कहती है कि कई बार तो बता चुकी हूँ किसी तरह की बौद्धिक समता न थी हम दोनो मे। [2] वास्तव मे यहाँ बौद्धिक समता का प्रश्न नही है प्रतिभा नीलाभ के प्रेम मे असफल होने के पश्चात् कुठित हो जाती है और जीवन मे अपने आपको वातावरण के साथ तालमेल रखने मे असफल पाती है। इस प्रकार भवर एक उच्चकोटि का सामाजिक नाटक ही नही उच्च मध्यम वर्ग की इण्टलेक्चुअल युवती की कुण्ठाओ का यथार्थ चित्र भी है। अश्कजी ने अपने अजो दीदी' नाटक मे श्रीपत को दमित वासनाओ का शिकार एव कुण्ठा से उत्पीडित दिखलाया है। श्रीपत नौकरानी पर आसक्ति की भावना प्रकट करता हुआ दीदी से कहता है— अरे दीदी—नौकरानी तो तुम्हारी बस खूब है। मेरी कसम दीदी इसे हमारे यहाँ भेज दो। [3] श्रीपत के इस व्यवहार से प्रकट है कि वह जीवन मे कुण्ठाओ का शिकार है और अपनी भावनाओ का परिष्कार नहीं कर पाता।

उदयशकर भट्ट के नया समाज' नाटक मे जमीदार मनोहरसिंह की लडकी कामना यौन भावना से आक्रान्त है तथा वह अपने नौकर रूपा (वास्तव मे लडकी) पर आसक्त है। वह उसको अपनी ओर देखने को कहती है परतु रूपा उसकी ओर देखकर कहता है कि तुम्हारे दिल मे एक तूफान उठ रहा है। इस पर कामना कहती है— अनजाने तूफान। कितनी पतली नाक है। कलमी आम की फाक-सी

१ उपेन्द्रनाथ अश्क भवर पृ ५
२ वही पृ० ६६
३ उपेन्द्रनाथ अश्क अजो दीदी पृ ८१

आँख। जा तू यहाँ से चला जा। अब मत आना मेरे पास। मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकती जा।'[1] इन शब्दों से प्रकट है कि वासना के जीवन में ऐसी परिस्थितियाँ रही हैं जिनसे नाते में न रहने पर उसके हृदय में कुण्ठा की भावना व्याप्त हो गई।

(ग) व्यक्ति का विघटन

आज के युग में व्यक्ति का चौमुखा विकास नहीं हो पा रहा है। उसको जीवन में आवश्यकतानुसार सुविधाएँ प्राप्त नहीं हो रही हैं। परिणामस्वरूप अपने जीवन का स्वस्थ विकास न देखकर आज का व्यक्ति निराश प्रतीत होता है—दुःख और चिन्ता की भावना हर समय उसके मुख पर परिलक्षित होती है। उसके अनुरूप न उसको नौकरी मिल पाती है न विवाह हो पाता है और न उचित शिक्षा ही प्राप्त होती है। समग्र रूप में व्यक्ति का विघटन हो रहा है।

जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द के समर्पण नाटक में व्यक्ति के विघटन की समस्या को चित्रित किया गया है। इला और नवीनचन्द्र आपस में अत्यन्त प्रेम करते हैं परन्तु सामाजिक भय के कारण वे अपने प्रेम को प्रकट न करने के कारण विवाह नहीं कर सके। विवाह न होने के कारण नवीनचन्द्र मजदूरों की हड़ताल का नेतृत्व करते चले जाते हैं परन्तु वहीं गोली का शिकार बन जाते हैं। पता लगने पर इला पश्चात्ताप करती है और सुषमा से सारी कहानी सुनाती है कि वे मुझसे निरन्तर प्रेम करते आ रहे थे और विवाह करना चाहते थे परन्तु मेरे द्वारा मना किए जाने पर वह सदा के लिए गए। यदि समाज उनके प्रेम को स्वीकार कर लेता और उन दोनों का विवाह हो जाता तो नवीनचन्द्र की मृत्यु न होती। वह जीवन में सफलता प्राप्त न कर सका। परिस्थितियों के कारण वह टूटता गया और अन्त में उसकी मृत्यु हुई।

आधुनिक युग में व्यक्ति अपने परिवार में एवं समाज में समझौता नहीं कर पाता क्योंकि यहाँ उसकी इच्छाओं का दमन किया जाता है इसलिए वह टूट जाता है। उपेन्द्रनाथ अश्क के 'कैद और उड़ान' नाटक में अप्पी समाज से समझौता न कर सकने के कारण टूटती चली गई। प्राणनाथ का विवाह अप्पी की बड़ी बहन [illegible] से हुआ था परन्तु उसकी मृत्यु के कारण उसके माता पिता ने बड़ी बहन की गृहस्थी सम्भालने के लिए अप्पी को प्राणनाथ के साथ भेज दिया। अप्पी हँसमुख हवाओं के झोंकों में बहकती सी मालूम होती थी और वह दिलीप के प्रति स्नेह, प्यार श्रद्धा रखती थी परन्तु उसका जीवन-साथी बन गया दूनी उम्र का, बच्चों का बाप प्राणनाथ। दिलीप के यह कहने पर कि तुमने तो अपना घर बसा लिया अप्पी कहती है— आजादी की आग में जलकर कुन्दन बन गए तुम और मैं टूटन

---

1 उदयशंकर भट्ट नया समाज पृ० १

वाली बटियाँ भर पाँवों में बँधती चली गई।[1] सामाजिक बन्धन के विषय में वह कहती है—'हम गरीबों का क्या है माता पिता ने जहाँ बैठा दिया जा बैठी।'[2] वह अपने आपको घर में कली की तरह मानती है एवं अँधेरे में रहना पसन्द करती है। दिलीप उससे कहता है कि तुम अपने आपको पहचानो इस पर वह उत्तर देती है— मैं स्वयं कई बार एक अथाह अन्धकार में भटकती रहती हूँ। कभी कभी मुझे लगता है जैसे यह अन्धकार मुझे मेरी इच्छाओं अभिलाषाओं आकांक्षाओं सपनों स्मृतियों—सबको निगल जाएगा और मैं उस लाश की तरह रह जाऊँगी जिसका सारा रक्त कभी न तृप्त होनेवाली जोंक ने चूस लिया है।[3] परिणामस्वरूप वह प्राणनाथ के साथ जीवन में कभी समझौता नहीं कर सकी। वह अपनी आत्मा की मंजिल और अपने सपनों के देवता से दूर पारिवारिक बन्धनों और सामाजिक रूढ़ियों में आबद्ध होकर चट्टानों पर सिर पटकती हुई, पछाड़ें खाती हुई जलधारा की तरह टूट टूट कर बिखर गई।

मोहन राकेश के लहरों के राजहंस नाटक में दिखाया है कि व्यक्ति जीवित रहने के लिए संघर्ष करता हुआ मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। नन्द मृग के आखेट के लिए जाता है परन्तु मृग भागता रहता है और वह बिना आखेट के ही वापस आ जाता है। मार्ग में वापस आते हुए मृग को मरा हुआ देखकर सोच विचार में पड़ जाता है। नन्द इस घटना को सुन्दरी को सुनाता है— बिना घाव अपनी ही क्लान्ति से मरे मृग को देखकर जाने कैसा लगा। उसी से अपना—आप थका हुआ लगने लगा कि '' जीवित रहने के लिए संघर्ष करता हुआ भी वह अपनी क्लान्ति से मर जाता है। यह परिणति मृग की नहीं किसी की भी हो सकती है—आज के मनुष्य की भी। नाटक का भाव यह है जिस प्रकार मृग जीवित रहने के लिए अपनी ही क्लान्ति से मर गया उसी प्रकार यह व्यक्ति भी जीवित रहना चाहता है परन्तु समाज उसे जीवित देखना नहीं चाहता। अन्त वह परिश्रम करता हुआ अपनी ही क्लान्ति से मरेगा। इसके पश्चात् नन्द सुन्दरी से कहता है—'मैं चौराहे पर खड़ा नंगा व्यक्ति हूँ जिसे सभी दिशाएँ लील लेना चाहती हैं और अपने को ढकने के लिए जिसके पास आवरण नहीं है। जिस किसी दिशा की ओर पैर बढ़ाता हूँ, लगता है वह दिशा स्वयं अपने ध्रुव पर डगमगा रही है और मैं पीछे हट जाता हूँ।'[4] नाटककार ने नन्द चरित्र के माध्यम से आज के व्यक्ति को विघटित होते हुए दिखाया है।

मोहन राकेश ने अपने आषाढ़ का एक दिन नाटक में कालीदास और मल्लिका

---

१ उपेन्द्रनाथ अश्क कैद और उड़ान पृ० ६४
२ वही पृ० ६६
३ वही पृ० ६१
४ मोहन राकेश लहरों के राजहंस पृ० ६६
५ वही पृ० ११७

वाली बटियाँ मेरे पाँवों में बँधती चली गई।[1] सामाजिक बंधन के विषय में वह कहती है—'हम गरीबों का क्या है, माता पिता ने जहाँ बैठा दिया जा बैठी।'[2] वह अपने आपको घर में कैदी की तरह मानती है एवं अँधेरे में रहना पसन्द करती है। दिलीप उससे कहता है कि तुम अपने आपको पहचानो। इस पर वह उत्तर देती है—"मैं स्वयं कई बार एक अथाह अंधकार में भटकती रहती हूँ। कभी कभी मुझे लगता है जैसे यह अंधकार मुझे मेरी इच्छाओं अभिलाषाओं आकांक्षाओं सपनों स्मृतियों—सबको निगल जाएगा और मैं उस लाश की तरह रह जाऊँगी जिसका सारा रक्त कभी न तृप्त होनेवाली जोंक ने चूस लिया है।"[3] परिणामस्वरूप वह प्राणनाथ के साथ जीवन में कभी समझौता नहीं कर सकी। वह अपनी आत्मा की मंजिल और अपने सपनों के देवता से दूर, पारिवारिक बंधनों और सामाजिक रूढ़ियों में आबद्ध होकर चट्टानों पर सिर पटकती हुई पछाड़ें खाती हुई जलधारा की तरह टूट टूट कर बिखर गई।

मोहन राकेश के लहरों के राजहंस नाटक में दिखाया है कि व्यक्ति जीवित रहने के लिए संघर्ष करता हुआ मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। नन्द मृग के आखेट के लिए जाता है परन्तु मृग भागता रहता है और वह बिना आखेट के ही वापस आ जाता है। मार्ग में वापस आते हुए मृग को मरा हुआ देखकर सोच विचार में पड़ जाता है। नन्द इस घटना को सुन्दरी को सुनाता है— बिना घाव अपनी ही क्लान्ति से मरे मृग को देखकर जाने कैसा लगा। उसी से अपना—आप थका हुआ लगने लगा कि "जीवित रहने के लिए संघर्ष करता हुआ भी वह अपनी क्लान्ति से मर जाता है। यह परिणति मृग की नहीं किसी की भी हो सकती है—आज के मनुष्य की भी। नाटक का भाव यह है जिस प्रकार मृग जीवित रहने के लिए अपनी ही क्लान्ति से मर गया, उसी प्रकार यह व्यक्ति भी जीवित रहना चाहता है परन्तु समाज उसे जीवित देखना नहीं चाहता। अतः वह परिश्रम करता हुआ अपनी ही क्लान्ति से मरेगा। इसके पश्चात् नन्द सुन्दरी से कहता है— मैं चौराहे पर खड़ा नंगा व्यक्ति हूँ जिसे सभी दिशाएँ लील लेना चाहती हैं और अपने को ढकने के लिए जिसके पास आवरण नहीं है। जिस किसी दिशा की ओर पैर बढ़ाता हूँ लगता है वह दिशा स्वयं अपने ध्रुव पर डगमगा रही है और मैं पीछे हट जाता हूँ।[5] नाटककार ने नन्द चरित्र के माध्यम से आज के व्यक्ति को विघटित होते हुए दिखाया है।

मोहन राकेश ने अपने आषाढ़ का एक दिन नाटक में कालीदास और मल्लिका

---

१ उपेन्द्रनाथ अश्क कैद और उड़ान पृ० ६४
२ वही पृ० ६६
३ वही पृ० ६१
४ मोहन राकेश लहरों के राजहंस पृ० ६६
५ वही पृ० ११७

दानों को टूटते हुए दिखाया है। दानों प्रारम्भ से ही परस्पर प्रेम करते हैं परन्तु परिस्थितियों के कारण विवाह नहीं कर पाते। कालिदास कश्मीर से लौटने के पश्चात् संन्यास लेकर मल्लिका के पास आते हैं तो वह उनसे कहती है— तुमने लिखा था कि एक दोष गुणों के समूह में उसी प्रकार छिप जाता है जैसे इन्दु की किरणों में कलंक परन्तु दारिद्र्य नहीं छिपता। परन्तु मैंने यह सब सह लिया। इसलिए भी कि मैं टूटकर भी अनुभव करती रही कि तुम बन रहे हो। क्योंकि मैं अपने को अपने में न देखकर तुममें देखती थी और मैं आज यह सुन रही हूँ कि तुम सब छोड़कर संन्यास ले रहे हो? तटस्थ हो रहे हो? उदासीन मुझे मेरी सत्ता के बोध से इस प्रकार वंचित कर दोगे?[1] यद्यपि मल्लिका का विवाह विलोम से हो जाता है परन्तु वह परिस्थितियों से समझौता नहीं कर पाती और टूटती चली जाती है। कालिदास को कश्मीर का शासन मिलता है, पुस्तकों की रचना के कारण सम्मान मिलता है परन्तु सब व्यर्थ। अन्त में वह संन्यास धारण कर लेता है और मल्लिका से कहता है— मैं अपने को सहारा देता कि आज नहीं तो कल मैं परिस्थितियों पर वश पा लूँगा और समान रूप से दानों क्षेत्रों में अपने को बाँट दूँगा परन्तु मैं स्वयं ही परिस्थितियों के द्वारा बनता और प्रेरित होता रहा। जिस कल की मुझे प्रतीक्षा थी वह कल कभी नहीं आया और मैं धीरे धीरे खण्डित होता गया होता गया। और एक दिन एक दिन मैंने अनुभव किया कि मैं सर्वथा टूट गया हूँ। मैं वह व्यक्ति नहीं हूँ जिसका उस विशाल के साथ कुछ सम्बन्ध था।[2] इस प्रकार समाज और परिस्थितियों के कारण कालिदास एवं मल्लिका दानों आधुनिकता का प्रतिनिधित्व करते हुए अपने अपने जीवन में टूट जाते हैं।

डा० लक्ष्मीनारायण लाल के अंधा कुआँ नाटक में सूका के कोई सन्तान नहीं होती इस पर उसका पति भगौती उसको बार-बार पीटता है। एक बार वह इन्दर के साथ भाग जाती है परन्तु पुलिस पकड़ लेती है और भगौती फिर उसको पीटता है। अन्त में अपने जीवन से तंग आकर वह कुएँ में गिर जाती है परन्तु कुआँ अंधा होने के कारण बच जाती है। सूका अपने दुःख को सुनाती हुई दो औरतों से कहती है—'अंधा कुआँ यही है जिसके संग मैं ब्याही गई हूँ—जिसमें एक बार मैं गिरी और ऐसी गिरी कि फिर न उबरी। न कोई मुझे निकाल पाया, न मैं खुद निकल सकी और न कभी निकल ही पाऊँगी। बस धीरे धीरे इसी में चुक कर मर जाऊँगी।'[3] अन्त में जब इन्दर भगौती पर गंडासे से प्रहार करता है तो वह उस प्रहार को अपने ऊपर ले लेती है और अपनी जीवनलीला समाप्त कर देती है। इस प्रकार वह जीवन में कष्ट भोगती हुई विघटित होती रही परन्तु किसी ने उसको सहारा नहीं दिया। सूका की भाँति भगौती भी परिस्थितियों के प्रहारों

---

१ मोहन राकेश आषाढ़ का एक दिन पृ० ६४
२ वही पृ० १०१
३ डा० लक्ष्मीनारायण लाल अंधा कुआँ पृ० १२६

के कारण टूटता रहा। उसने अपने जीवन में दो विवाह किए परन्तु सन्तान उत्पन्न नहीं हुई, दो व्यक्तियों से ऋण लिया और आयुपर्यन्त चुका न सका। एक बार इन्द्र उसे बुरी तरह से पीटता है और उसे बेहद चोट लगती है। अन्त में इन्द्र के गंडासा मारने पर सूका की मृत्यु के पश्चात् वह कुछ न कर सका। समग्र रूप में वे दोनों ही अपने जीवन में कुछ न कर सके तथा उनके जीवन का विघटन होता ही चला गया। आज भी गाँवों में कितने भगौनी अपनी मूकाओं के साथ यातनाओं के जंगल में भटक अपना जीवन विनष्ट कर रहे हैं।

(ढ) नैतिकता के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण

विवेच्य युग में नैतिकता के प्रति दृष्टिकोण परिवर्तित हो गया है। आज का युवक अपने माता पिता, गुरु आदि का कहना नहीं मानता वह समाज में अनैतिक तत्वों को प्रोत्साहन देता है। विद्यार्थी स्कूल, कालेजों में नैतिकता का ध्यान नहीं रखते और अनुशासनहीनता का परिचय देते हैं। विष्णु प्रभाकर के होरी नाटक में गोबर अपने माता पिता की आज्ञा का पालन नहीं करता। उसकी माता उससे कहती है कि मैंने तुझे जन्म दिया है पाला-पोसा है अब तू आँखें दिखाता है। इस पर गोबर उत्तर देता है— पालने में तुम्हारा क्या लगा। जब तक बच्चा था दूध पिला दिया फिर लावारिस की तरह छोड़ दिया। जो सबने खाया वही मैंने खाया। मेरे लिए दूध नहीं आता था। मक्खन नहीं बँधा था। मैं झूठ कह रहा हूँ? और अब तुम चाहती हो दादा भी चाहते हैं कि मैं सारा कर्जा चुकाऊँ, लगान दूँ लड़कियों का ब्याह करूँ।[1] एक तरफ रामचन्द्र जी थे जो पिता की आज्ञा मान कर चौदह वर्षों के लिए जंगल में चले गये थे और दूसरी तरफ आज का गोबर है जो माता पिता को खरी खरी सुनाता है एवं उनकी बात सुनने को तैयार नहीं। कैसी अजीब विडम्बना है।

उदयशंकर भट्ट के 'पार्वती' नाटक में पार्वती अपने लड़के परमानन्द को दूसरों की मजदूरी करके कपड़े धो धो कर चौका-बर्तन कर के पालती है। अब परमानन्द किसी कारण से नायब तहसीलदार हो जाता है एवं अंग्रेजी शिक्षाप्राप्त गुलाब से वह विवाह कर लेता है। पार्वती उनके पास रहने के लिए गाँव से जाती है परन्तु वे उसका आदर नहीं करते गुलाब ने उसको सोने के लिए चारपाई भी नहीं दी। परमानन्द अपनी माता को इस भय के कारण अपने पास नहीं रखता कि उसके रखने पर, गुलाब नाराज हो जायगी एवं गुलाब के पिता उसकी नौकरी छुड़वा देंगे। अन्त में वह अपने आप से कहता है— नौकरी की बात ... नौकरी की बात ... क्या कहा ... माँ क्या है किनारे का ठूठ आज मरी कल दूसरा दिन।[2] पार्वती यह सब सुन लेती है और अगले दिन अपने गाँव चली जाती है।

---

१ विष्णु प्रभाकर होरी पृ० ८२

२ उदयशंकर भट्ट पार्वती पृ० २६

चला जाऊंगा। इस पर अरविन्द कड़क कर कहता है—'आपकी तरह मुझे इतनी फुरसत नहीं।'[1] इस प्रकार अरविन्द अपने पिता जी की अवहेलना करता है। इस प्रकार इस युग के नाटककारों ने यह सिद्ध कर दिया है कि पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव में आकर आज की नयी पीढ़ी नैतिक मूल्यों के प्रति आस्थावान् नहीं है और उन्हें नैतिकता का चोला व्यर्थ का जंजाल प्रतीत होता है।

नाटकों मे अभिव्यक्त सांस्कृतिक चेतना का स्वरूप

(क) ईश्वर मे विश्वास

प्रारम्भ से ही भारतीय ईश्वर की सत्ता मे विश्वास रखते आए हैं और आज की वैज्ञानिक सभ्यता में उस अज्ञात सत्ता के प्रति विश्वास की भावना रखना इस युग की सबसे बड़ी विशेषता है। चाहे आज का व्यक्ति कितना ही धर्म विरुद्ध हो जाय परन्तु वह ईश्वर में विश्वास अवश्य रखता है। हरिकृष्ण प्रेमी ने 'स्वप्न भंग' नाटक में ईश्वर में विश्वास रखने पर बल दिया है। प्रकाश जहांआरा को दारा के द्वारा लिखित पुस्तकें देता है और परमात्मा में विश्वास रखने के लिए उसको प्रेरित करता है— जो दारा को देखना चाहे वे उनकी इन पुस्तकों में देखें। इस भ्रम और अंधकार में भरे भव-सागर से पार उतरने का मार्ग पायें। यहाँ न कोई हिन्दू है न मुसलमान—केवल उस 'एक'—उस खुदा—उस ब्रह्म का अलग अलग घर में प्रतिबिम्ब है। हम छाया के लिए लड़ रहे हैं और वास्तव को भूल रहे हैं।'[2] प्रेमी जी ने ऐतिहासिक कथानक के आधार पर वर्तमान को सजीव करने का प्रयास किया है। इस युग में ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करने पर बल दिया है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अपने 'चक्रव्यूह' नाटक में ईश्वर को समस्त संसार का चलानेवाला माना है और उसी की इच्छा शक्ति का परिणाम ही यह समस्त जगत् है। भीष्म द्रोणाचार्य से पूछते हैं कि मैंने कभी किसी वस्तु की कामना नहीं की, फिर भी मैं आज इस बन्धन में क्यों पड़ा हूँ। द्रोणाचार्य इसका उत्तर देते हैं कि यह सृष्टि चक्र मनुष्य की इच्छा से नहीं चल रहा है इसको चलानेवाला दूसरा है आप जानते हैं। सूत्रधार जब जिस पुतली को जहाँ नचाये।'[3] इसका अभिप्राय है कि मिश्रजी ने द्रोण के माध्यम से ईश्वर की सत्ता में विश्वास प्रकट किया है।

डा० लक्ष्मीनारायण लाल के 'सूखा सरोवर' नाटक में राजा की कन्या अपने प्रेमी से मिलन के कारण सरोवर में निमग्न होकर आत्महत्या कर लेती है। इस जघन्य कृत्य से सरोवर की मर्यादा भंग हो जाती है एवं उसका जल सूख जाता है।

---

१ डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल मादा कैक्टस पृ० ४६

२ हरिकृष्ण प्रेमी स्वप्नभंग पृ० १२७ १२८

३ लक्ष्मीनारायण मिश्र चक्रव्यूह पृ० १२६

प्रजा के सारे व्यक्ति सरोवर की शरण में आते हैं और पानी माँगते हैं। इस पर देवता कहता है—

'नहीं-नहीं
शरण नहीं
ईश्वर है सबका केवल
शरण उसी की
जो सबका है—सबमें है
सबका नियन्ता है।'[1]

डा० लाल ने भी यह स्वीकार किया है कि केवल ईश्वर ही सबका नियन्ता है और वह सबमें व्याप्त है इसलिए सबको उसी की शरण में जाना चाहिए।

सेठ गोविन्ददास ने 'महात्मा गांधी' नाटक में ईश्वर में अटूट विश्वास दिखाया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति पर गांधीजी प्रार्थना सभा में भाषण कर रहे हैं और ईश्वर में विश्वास की भावना पर आवश्यक बल देते हुए सबका ध्यान भगवान् की ओर आकर्षित करते हैं— मैं इस जन्मदिवस के प्रार्थना के दिन मैं भगवान् से इसलिए प्रार्थना करता हूँ उस भगवान् से जिसके बिना मैं एक मिनट भी जीवित नहीं रह सकता चाहे मैं पानी और हवा के बिना भी जिन्दा रह सकूँ। ईश्वर ही जीवन है सत्य है प्रकाश है। वही प्रेम है, वही उच्चतम अच्छाई है।[2] इस नाटक में सेठजी ने भगवान् को ही सब कुछ माना है। गांधीजी का विश्वास है कि वे हवा पानी के बिना रह सकते हैं परन्तु ईश्वर के बिना नहीं। अतः ईश्वर ही सर्वोपरि है।

(ग) कर्म-सिद्धान्त

भारतीय प्राचीन मत में ही कर्म सिद्धान्त को मानते आये हैं और आज के वैज्ञानिक युग में भी इस भावना पर बल दिया जा रहा है। विवेच्य युग के नाटककारों में इस भावना में विश्वास रखनेवाले लक्ष्मीनारायण मिश्र सर्वोपरि हैं। उनका मत है कि मनुष्य को संचित कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है वह उनसे बच नहीं सकता। कर्म फल में विश्वास रखना आज का नया सिद्धान्त नहीं है भारतीय शास्त्रों—गीता आदि में इसका विस्तृत उल्लेख मिलता है। मिश्रजी ने प्राचीन भावना को अपने नाटकों में चित्रित करने का स्तुत्य प्रयास किया है। 'वत्सराज' नाटक में उन्होंने कर्मयोग में अटूट विश्वास दिखाया है। प्रसाद ने 'अजातशत्रु' नाटक में बौद्ध दर्शन और अहिंसा धर्म की गरिमा की ओर अधिक ध्यान दिया है किन्तु मिश्रजी ने श्रमण को भी कर्मयोग में दीक्षित किया है। उन्होंने प्रसाद के नाटकों में आत्महत्या प्रवृत्ति का खण्डन किया है एवं उदयन के मुख से

1　डा० लक्ष्मीनारायण लाल　सूखा सरोवर पृ०　६
2　सेठ गोविन्ददास　महात्मा गांधी पृ०　१

कहला दिया है कि 'कर्मयोग में विश्वास करनेवाला अपने कर्म के फल से भाग निकलने के लिए कभी आत्मघात नहीं करेगा।'[1] इस प्रकार मिश्रजी के मतानुसार प्रत्येक मनुष्य को कर्मों का फल भोगना पड़ेगा, चाहे इस जन्म में, चाहे अगले जन्म में।

मिश्रजी के 'चक्रव्यूह' नाटक में अभिमन्यु की मृत्यु के पश्चात् द्रोणाचार्य भीम से कहते हैं—'कर्म का फल सुख से भोगते ... जिसे भोगना ही है जिनसे छूट निकलने का कोई माध्यम नहीं, उसमें दुःख का बोध कायरता है।'[2] युधिष्ठिर अभिमन्यु की मृत्यु पर पश्चात्ताप करते हैं। धृष्टद्युम्न उनसे कहते हैं कि जो बीत गया उस अब लौटाकर क्या होगा? परन्तु युधिष्ठिर उनको भूलते नहीं एवं कर्म के फल की ओर संकेत करते हुए उनका ध्यान आकर्षित करते हैं—'पर उसका फल बिना भोगे उससे त्राण भी कहाँ है? कर्म के बन्धन के फल भोग पर ही कटते हैं—कट रहे हैं और कटेंगे। जो चला गया ... आज जो है जो कभी आयेगा परस्पर ऐसे घने गहरे सम्बन्ध सूत्र में बंधे हैं कि उन्हें कहीं किसी जगह काटकर अलग नहीं कर सकते।'[3] कहने का अभिप्राय यह है कि कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ेगा। मिश्रजी ने 'वितस्ता की लहरें' नाटक में फल की इच्छा न करते हुए कर्म करने की भावना पर बल दिया है। विष्णुगुप्त शशिगुप्त को निष्काम कर्म की ओर प्रेरित करते हुए कहते हैं—'फल की चिन्ता छोड़कर जहाँ कर्म करना है वहाँ जय और पराजय दोनों एक हैं। कुरुक्षेत्र का मन्त्र वितस्ता के तट पर दुहराया जा रहा है।'[4] मिश्रजी ने अपने नाटकों में निष्काम कर्म करने में और कर्म फल के सिद्धान्त में अटूट विश्वास दिखाया है और भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठा करनेवाले इस सिद्धान्त को आज के वैज्ञानिक युग में साधक सिद्ध करने की चेष्टा की है।

(ग) अहिंसात्मक दृष्टिकोण

संसार दो विश्वयुद्धों के दुष्परिणाम को देख चुका है और भविष्य में होने वाले तीसरे विश्व-युद्ध से भयभीत है। आज का व्यक्ति इस चिन्ता में है कि किसी प्रकार इस तृतीय विश्व-युद्ध का खतरा टल जाये एवं मानव शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करे। अहिंसा के अपनाने से ही स्थायी शान्ति स्थापित हो सकती है। महात्मा गांधी ने अहिंसा और प्रेम के सिद्धान्तों को राजनीतिक क्षेत्र में दुनियाँ के सामने रखा। आज स्वतन्त्र भारत इन्हीं सिद्धान्तों का पालन कर रहा है। सेठ गोविन्ददास ने 'अशोक' नाटक में अहिंसा का मार्ग अपनाने पर बल दिया है। सम्राट अशोक कलिंग विजय में अत्यन्त परेशान है क्योंकि उसमें असंख्य मनुष्यों

---

१ डॉ० लक्ष्मीनारायण मिश्र वत्सराज पृ० १२०

२ डॉ० लक्ष्मीनारायण मिश्र चक्रव्यूह पृ० ७०

३ वही पृ० १०२

४ डॉ० लक्ष्मीनारायण मिश्र वितस्ता की लहरें पृ० ६८

का संहार हुआ है। वह अब हिंसा से साम्राज्य विस्तार नहीं चाहता, अहिंसा और प्रेम से राज्य विस्तार चाहता है। अशोक ने अब अहिंसा का मार्ग अपनाया है एवं अपने महामन्त्री राधागुप्त से कहता है—'अहिंसा और प्रेम का मार्ग ही मैं इस देश जम्बू द्वीप और सारे संसार के लिए कल्याणकारी मानता हूँ। इस अपने कार्य में चाहे अभी पूर्ण सफलता न मिली हो पर आज नहीं तो कल और कल नहीं तो परसों सौ हजार दस हजार वर्षों में भी क्या न हो इसी मार्ग से विश्व का कल्याण सम्भव है।'[1] नाटककार का मत है कि एक दिन अवश्य ऐसा आयगा जिस दिन समस्त विश्व को अहिंसा का मार्ग अपनाना पड़ेगा।

बीसवीं शताब्दी की साम्राज्य लिप्सा ने समस्त मानवता को ग्रस्त कर दिया है। शस्त्र ही शक्ति का एकमात्र अवलम्ब है और उसके संघर्ष से मानवता घायल होकर सिसक रही है। इसका एकमात्र उपचार यदि कोई है तो वह अहिंसा है। विष्णु प्रभाकर ने नवप्रभात नाटक में इसी अहिंसा की ओर संकेत किया है। अशोक ने कलिंग को तो विजय कर लिया परन्तु वह एक कलिंग कुमार को सिर शक्ति के बल पर झुकाने में असफल रहता है। अन्त में वह अहिंसा का आश्रय लेता है और सत्ता के लिए युद्ध त्याग देता है। वह उपगुप्त से कह रहा है—'मैं मानव बनकर मानव को जीतना चाहता हूँ। मैं कलिंग-कुमार को बताना चाहता हूँ कि मैं मानव हूँ।'[2] अन्त में वह शान्ति और अहिंसा के मार्ग पर चलने की प्रतिज्ञा करता है। अशोक अपनी छोटी रानी कारुवाकी से युद्ध न करने के लिए कहते हैं—'मैं निश्चय करता हूँ कि अब दिग्विजय नहीं धर्मविजय होगी। भेरी घोष धर्म घोष में परिवर्तित कर दिया जायगा। अब फिर धरती माता अपनी सन्तान का रक्त पीने को विवश न होगी। अब फिर घायलों के चीत्कार से आकाश नहीं काँपेगा। अब फिर विधवाओं और अनाथों के करुण क्रन्दन से शान्ति की हत्या नहीं होगी। अब फिर रक्त रंजित इतिहास अपने को नहीं दोहरायेगा। मैं देख रहा हूँ देवि! आनेवाले युग के लोग अपने दुःख और अभावों का नाश शक्ति के प्रयोग से नहीं प्रेम के प्रयोग से किया करेंगे।'[3] इस चित्रण से नाटककार ने अहिंसा और शान्ति को ही मानव दुःखों को दूर करने का एकमात्र उपाय बतलाया है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने भी सम्राट अशोक की कथा को लेकर धर्मराज नाटक की रचना की और अहिंसा के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। अशोक कलिंग युद्ध के पश्चात् अहिंसा का आश्रय लेता है और भविष्य में युद्ध न करने की प्रतिज्ञा करता है। आज विज्ञान की बढ़ती हुई शक्ति से मानव त्रस्त है और संसार में पारस्परिक सद्भावना और प्रेम चाहता है। नाटककार का मत है कि प्रेम और स्थायी शान्ति केवल अहिंसा के द्वारा ही स्थापित हो सकती है। आज के मानव की

१ सेठ गोविन्ददास अशोक पृ० १ ७
२ विष्णु प्रभाकर नवप्रभात पृ ५०
वही पृ १ ८ ११

स्थिति अत्यन्त शोचनीय है क्योंकि उसका विचार है कि यदि तृतीय विश्वयुद्ध छिड़ गया तो मानवता समाप्त हो जायेगी। अतः शास्त्रीजी ने धर्मराज नाटक द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि स्थायी शान्ति युद्ध के परित्याग बिना स्थापित नहीं हो सकती।

डा० रामकुमार वर्मा ने भी अहिंसा के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए 'विजय पर्व' नाटक की रचना की। सम्राट अशोक कलिंग विजय के पश्चात् आत्म ग्लानि के सागर में डूब जाता है। वह अपनी रानी महादेवी को कलिंग में हुए विनाश से अवगत कराता है— आज विश्राम शिविर में जाने पर ज्ञात हुआ कि एक लाख से अधिक सैनिक हमारी तरफ युद्ध में मारे जा चुके हैं जिनमें बहुत अधिक संख्या कलिंग के सैनिकों की है। तीन लक्ष सैनिक आहत हुए हैं। उनकी माताओं के हृदय की क्या अवस्था होगी।[1] सम्राट अशोक का हृदय ग्लानि से भर उठता है और वह भविष्य में अहिंसा का पालक बन जाता है तथा उपगुप्त को अपने विचारों से अवगत कराता है— महाभिक्षु! आज से मैं हिंसा किसी भी रूप में न करूँगा। आज से मेरा महान् कर्त्तव्य होगा कि मैं सब जीवों की रक्षा का अधिक से अधिक प्रबन्ध करूँ।[2] कलिंग के युद्ध के पश्चात् वह आजीवन अहिंसा और शान्ति का पुजारी बन गया। संयोग की बात है कि अशोक के कलिंग विजय के विषय को लेकर विवेच्य युग में अशोक, नव प्रभात, धर्मराज और विजय पर्व नामक नाटक लिखे गये और इनके माध्यम से अहिंसात्मक दृष्टिकोण पर विशेष बल दिया गया।

डा० रामकुमार वर्मा ने 'कला और कृपाण' नाटक में हिंसा पर अहिंसा की विजय दिखलायी है। उन्होंने भूमिका में ही स्पष्ट कर दिया है कि कला और कृपाण में हिंसा पर अहिंसा की विजय चित्रित की गई। गौतम बुद्ध की अहिंसा आज भी भारत की महान् विभूति बनकर देश-देशान्तर में व्याप्त हो रही है।[3] राजा उदयन प्रारम्भ में हिंसावादी है और जंगल में रहनेवाली मंजुघोषा की सारिका को धनुष बाण का लक्ष्य बनाता है। तदुपरान्त वह सामावती द्वारा आयोजित एक सभा में भाषण करते हुए महात्मा बुद्ध पर बाण छोड़ता है परन्तु वह बाण बुद्ध को न लगकर मंजुघोषा को लगता है क्योंकि वह बुद्ध को माला पहना रही थी। महात्मा बुद्ध मंजुघोषा के मृत शरीर को लेकर उदयन के पास पहुँचते हैं। इस समस्त घटना चक्र से दुःखी होकर उदयन महात्मा बुद्ध की शरण में आ जाते हैं और अहिंसा में विश्वास करने लगते हैं। नाटक के अन्त में राजा उदयन के अहिंसात्मक दृष्टिकोण अपनाने से दर्शक के मन पर यह विश्वास स्थायी हो जाता है कि एक न एक दिन पाशविक प्रवृत्तियों पर करुणा, दया, ममता आदि मानवीय वृत्तियाँ अवश्य ही विजयी होंगी।

---

१ डा० रामकुमार वर्मा विजयपर्व पृ० १३०

२ वही पृ० १४७

३ डा० रामकुमार वर्मा कला और कृपाण भूमिका पृ० १२

इस दृष्टि से यह नाटक ऐतिहासिक होते हुए भी वर्तमान का सन्देशवाहक है। महात्मा बुद्ध की अहिंसा को भारत के बाहर भी प्रचार करने का प्रयास किया गया था और आज भी भारत अपनी विदेश नीति में अहिंसात्मक दृष्टिकोण को विशेष स्थान दे रहा है।

(घ) विश्वबन्धुत्व की भावना

भारतवर्ष प्रारम्भ से ही विश्व कल्याण के लिए प्रयास करता रहा है और आज भी हमारी यही भावना है कि सृष्टि के समस्त प्राणी सुखमय जीवन व्यतीत करें। हमारे साहित्य में सदैव विश्वबन्धुत्व के गीत गाये गये हैं और आधुनिक नाटककार भी इसी भावना पर बल देते हैं। डा० दशरथ ओझा ने 'भारत विजय' नाटक में विश्व-कल्याण की भावना को अपनाने के लिए आग्रह किया है। समुद्रगुप्त बार बार अमवेनस से अपनी नीति का स्पष्ट करते हुए कहते हैं— हम राज्य विस्तार और साम्राज्य की लालसा नहीं है। हम मानव जीवन को सुखी बनाने के अभिलाषी हैं। हमारा उद्देश्य है— सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।[1] इतना ही नहीं सम्राट समुद्रगुप्त भारत के साथ साथ विश्वमंगल की कामना करते हुए याकीराज शिवानन्द से अपने उद्गार प्रकट करते हैं हमारा भारतीय आदर्श विश्वकल्याण का है। हमारे लिए समस्त वसुधा कुटुम्ब है। अतएव विश्व मंगल अपरणीय है।[2] इस प्रकार इस ऐतिहासिक नाटक का सन्देश आज के युग में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है क्योंकि आज भारत समस्त विश्व को एक कुटुम्ब स्वीकार करता है और सबके साथ समान भाव से रहना चाहता है।

हरिकृष्ण प्रेमी के 'प्रकाश-स्तम्भ' नाटक में भी समान बन्धुत्व की भावना पर बल दिया है। बप्पा की माता ज्वाला हारीत से पूछती है कि समाज में अपनी संस्कृति की प्रभुता श्रेष्ठता की भावना आदि व्याप्त है इसको कैसे समाप्त किया जाये। हारीत इसके लिए आवश्यक सुझाव प्रस्तुत करता है— उपाय है विभिन्न संस्कृतियों का समन्वय। यह आर्य है यह द्राविड़ और यह यवन इस प्रकार सोचने की मनोवृत्ति हमें त्यागनी होगी। हम किसी पर अपना धर्म अपने व्यवहार, अपनी परम्पराएँ लादने की अभिलाषा छोड़नी होगी हमें एक दूसरे से सामाजिक सम्पर्क बढ़ाने होंगे विजयी और विजित की भावना को नष्ट कर समान बन्धु बनकर रहना होगा।[3] आज भी समाज में कुछ व्यक्ति जातियाँ अपने को दूसरों से श्रेष्ठ मानती हैं परन्तु नाटककार ने सबके समन्वय पर बल देकर सबको समान बन्धुत्व की भावना से परिचित कराने का प्रयास किया है और तभी मानव सुख शान्ति से रह सकता है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'जगद्गुरु' नाटक में लोक-कल्याण की भावना व्यक्त की है। आज व्यक्ति अधिक स्वार्थी होने के कारण अपने लाभ की ओर अधिक

---

१ डॉ० दशरथ ओझा भारत विजय पृ० १३१ १३२

२ वही पृ० १२८

३ हरिकृष्ण प्रेमी प्रकाश-स्तम्भ पृ० ४१

ध्यान देता है और दूसरो के कल्याण की चिन्ता नहीं करता। नकर भारती से अपने सुख की अपेक्षा लोककल्याण की भावना पर अधिक ध्यान देने के लिए कहते हैं— अनेक धर्म, अनेक सम्प्रदाय लोक काय के कोढ बन गये हैं। अपने मोक्ष की चिन्ता न कर हम लोक कल्याण की चिन्ता करनी है।'[1] मिश्र जी ने इस नाटक में भारतीय आदर्श की झांकी प्रस्तुत करके प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे के कल्याण के लिए प्रोत्साहित किया है।

देवराज दिनेश ने 'रावण' नाटक के माध्यम से विश्व-कल्याण की भावना पर आवश्यक बल दिया है। मन्दोदरी अपने मामा माल्यवान का ध्यान युद्ध की ओर आकर्षित करती है और कहती है कि आज का युद्ध ससार को विनाश की ओर ले जा रहा है। परन्तु इस युद्ध को समाप्त करने के लिए विश्वबन्धुत्व को आवश्यक मानती है। वह इसका एकमात्र निदान बतलाती है— आज के विश्व को विश्व-बन्धुत्व की आवश्यकता है तभी विश्वकल्याण हो सकता है नहीं तो सर्वनाश के अतिरिक्त और कुछ नहीं।''[2] वास्तव में नाटककार ने राम रावण के युद्ध के माध्यम से तृतीय विश्वयुद्ध की ओर सकेत किया है कि यदि यह युद्ध छिड गया तो समस्त विश्व का सर्वनाश होने की सम्भावना है और मानवता ही समाप्त हो जायेगी। इसका एक-मात्र उपाय है कि सभी देश विश्वकल्याण की बात सोचें और समस्त विश्व को समान भाव से देखें तभी सच्ची शान्ति और सुख की प्राप्ति हो सकती है। यह उल्लेखनीय तथ्य है कि जब विश्व की बडी शक्तियां विनाश की ओर जा रही हैं तब भारत विश्वकल्याण की भावना पर बल दे रहा है और स्थायी शान्ति की स्थापना के लिए प्रयत्नशील है।

(ड) धार्मिक स्थिति

भारतीय सविधान में यह स्पष्ट किया गया है कि सरकार की ओर से किसी भी सस्था में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायगी और वह सब धर्मों का समान आदर करेगी। सरकार की दृष्टि में धर्म के आधार पर न कोई छोटा है और न बडा। प्रत्येक व्यक्ति को अपने अपने धर्म को मानने का पूर्ण अधिकार है। विवेच्य युग के नाटककारों ने धार्मिक स्थिति को अपने अपने ढग से चित्रित करने का प्रयास किया है। जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द ने 'प्रियदर्शी' नाटक में धर्म को सम्प्रदाय सकीर्णता अहकार आदि से ऊपर माना है। कलिंग विजय के पश्चात् सम्राट अशोक अहिंसावादी बन जाते हैं और सर्वत्र शान्ति की स्थापना करना चाहते हैं। आचार्य उपगुप्त उनको धर्म के आशय को ग्रहण कराने के लिए धर्म की वास्तविक व्याख्या करते हैं— धर्म सम्प्रदायों आडम्बरों अहकार और सकीर्णता की सीमाओं में घिरे हुए अन्धविश्वास का नाम नहीं है वह तो विश्व मानव के हित के लिए किए जानेवाले प्रत्येक मनुष्य के

१ लक्ष्मीनारायण मिश्र जगद्गुरु पृ ४७
२ देवराज दिनेश रावण पृ० ४४

धर्म के व्यापक रूप को लिया है और भारतीय संविधान के अनुसार धार्मिक स्थिति का चित्रण किया है।

उदयशंकर भट्ट ने 'शक विजय' नाटक में यह स्पष्ट किया है कि धर्म का मामला व्यक्तिगत है, अतः राज्य को इसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। अग्निज्योति कालकाचार्य जैन साधु से धर्म के विषय में अपना मत प्रकट करते हैं— प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि वह यथेष्ट रूप से अपनी इच्छानुसार धर्म का पालन करे।[1] कालकाचार्य ने धार्मिक संकीर्णता की भावना में आकर शकों को भारत में आने का निमन्त्रण दिया परन्तु मालवगण के राजकुमार वरद ने शक्ति को एकत्रित करके उनको देश से बाहर किया। तदुपरान्त एक परिषद् की स्थापना होती है और उसमें धार्मिक नीति के विषय में चर्चा की जाने पर एक नृपति सभा से आग्रह करता है— परस्पर धर्मों के प्रति सहिष्णुता की भी आवश्यकता है। प्रत्येक नृपति, गण जाति का अपेक्षित है कि वे एक दूसरे के प्रति उदार हों।[2] इस नाटक में भट्टजी ने सब धर्मों को समान स्वीकार करने की आवश्यकता पर बल दिया है।

सर्वदानन्द के 'सिराजुद्दौला' नाटक में सिराजुद्दौला ने धर्म के आधार पर हिंदु एवं मुसलमान में कोई विभाजक रेखा नहीं खींची। मोहनलाल सिराजुद्दौला की उदार धार्मिक भावना के विषय में मीर मदन को परिचित कराते हुए कहते हैं कि सिराजुद्दौला ने हिंदु और मुसलमान में भेद कब माना मीर मदन? नवाब अली वर्दीखाँ ने मरते समय उन्हें यही मन्त्र दिया था कि इंसान मजहब से ऊंचा है। आदमी की सन्तान को आदमी बनकर रहना होगा। हिंदु और मुसलमान दोनों के लिए धर्म की दीवारों से अलग न होने देना।[3] सिराजुद्दौला ने हिन्दु और मुसलमान में धार्मिक दृष्टि से कोई भेद नहीं माना एवं दोनों जातियों से समान भाव से व्यवहार किया।

डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने 'सूखा सरोवर' नाटक में यह स्पष्ट किया है कि आधुनिक युग में विज्ञान के प्रभाव में व्यक्ति धर्म की महत्ता को भूलते जा रहे हैं और अन्त में उसके अभाव में कष्ट पाते हैं। राज्य की समस्त प्रजा धर्मविरुद्ध हो गई एवं सरोवर के सूख जाने पर उसमें से आवाज निकलती है—

> 'मैं धर्मराज हूँ इस नगरी का
> तुम सब धीरे धीरे धर्मच्युत हो गये
> राजा में तर्क करने लगे तुम
> राजा को व्यक्ति मानने लगे तुम

---

१ उदयशंकर भट्ट शक विजय पृ० ८९
२ वही पृ० १११
सर्वदानन्द सिराजुद्दौला पृ० ४

ईश्वर पर भरोसा करते रहे तुम ।
हाथ-पुण्य नाराचार धर्माचार
सबको झोंके गये तुम
तो कुछ धर्म था, धर्मज्ञ कर्म था,
सबको सबका गये तरह—
छोड़ते गये तुम ।
सबका आडम्बर था
सबका प्रधान रहा
भोला तुम बन गये
तभी धर्म ने सरोवर को मार लिया । [1]

अन्त में राजा तथा प्रजा अपने अपराध को स्वीकार करते हैं और राजकुमारी के प्रमत्त प्रमादी युवक के सरोवर में कूद कर प्राण मनौति देने पर सरोवर देवता ने जलाशय में पानी दिया । डॉ० लाल ने आधुनिक वैज्ञानिक युग में धर्म की महत्ता एवं उसको स्वीकार करने पर आवश्यक बल दिया है । इससे यह सिद्ध हो जाता है कि व्यक्ति के जीवन में धर्म की आवश्यकता है, उसके बिना जीवन व्यर्थ है ।

(च) धार्मिक पाखण्ड

आज के वैज्ञानिक युग में अशिक्षित समाज में अब भी धार्मिक पाखण्डों का बोलबाला है । भूत प्रेत अनेक प्रकार की पूजा मन्दिरों में चढ़ावा का झमेला पाप नाश आदि की भावना समाज के विकास में बाधा पहुँचा रही है । मन्दिरों में लोग श्रद्धा के साथ मूर्तियों के सामने हाथ जोड़ते हैं और चढ़ावा चढ़ाते हैं परन्तु पुजारी उस चढ़ावे का अनुचित लाभ उठाते हैं । हरिकृष्ण प्रेमी ने [illegible] नाटक में मन्दिर के पुजारियों की खिल्ली उड़ाई है । कमाण्डर नामक पात्र से कहा है कि मन्दिरों में जो पैसे भगवान् के नाम पर चढ़ाये जाते हैं वे शराब में समाप्त किए जाते हैं । कमाण्डर नामक पात्र गाँवों की पूरी स्थिति से अवगत कराते हुए कहता है— उस चढ़ावे के रुपये से तुम्हारे मन्दिर का मोटा पुजारी शराब, गाँजे, चरस और रण्डीबाजी में खर्च कर डालता है । [2] प्रेमी जी ने इस नाटक के द्वारा मन्दिर के पुजारियों के अनुचित व्यवहार से अपने पाठकों को परिचित करवाने की चेष्टा की है ।

वृन्दावनलाल वर्मा ने राखी की लाज नाटक में भूत प्रेत विद्या का प्रयोग करके यह दिखलाने का प्रयास किया है कि किस प्रकार आज भी गाँवों में अशिक्षित लोगों का भूत प्रेत हवा-स्वस्थताओं में विश्वास है । मामचन्द बीमार है तथा उसका उपचार

---

१ डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल सूखा सरोवर पृ० २०-२१

२ हरिकृष्ण प्रेमी [illegible] पृ०

किया जाता है और इसके साथ-साथ भूत प्रेत विद्या का भी प्रयोग किया जाता है। परिणामस्वरूप वह स्वस्थ हो जाता है। इस विषय में एक स्त्री दूसरी स्त्री से भूत-प्रेत विद्या की महत्ता पर प्रकाश डालती हुई कहती है—"सच्ची बात तो यह है कि देवी-देवताओं की पूजा चढ़ाई काली माई का रथ निकालकर गांव के बाहर सवारी करा दी तब हुलकी गांव से गई नहीं तो लाल और सफेद दवा से क्या होना था?[1] गांव के भोले भाले लोग औषधि में इतना अधिक विश्वास नहीं रखते, जितना थाड़ा फूमी में। वर्मा जी ने अपने 'खिलौने की खोज' नाटक में भी इसी प्रकार की भावना व्यक्त की है। लोग बीमारी तथा अकाल के भय से भयभीत होकर काली माई की पूजा करने जाते हैं। सेठ सतुचन्द भी इन्हीं में सम्मिलित है। वह इस आशय की सूचना डा० मलिक को देता है कि बीमारी के डर के मारे लोग काली माई की पूजा करने जा रहे हैं। यही होकर उनका मार्ग है।[2] अचानक गाँव में दो व्यक्तियों की मृत्यु हो जाती है परन्तु उनकी मृत्यु का कारण बताया जाता है कि उन्होंने देवता को नाराज कर दिया था। सतुचन्द भवन के सामने देवता के बिगड़ने के कारण पर प्रकाश डालता है—'बीमारी तो ऐसी कोई नहीं है, दो व्यक्ति तड़ाक मर गये हैं परन्तु उनको प्लेग नहीं हुआ था। उन्होंने देवी के मन्दिर के सामने अण्ड बण्ड बात की थी देवता बिगड़ गया उनके हृदय पर आतंक छा गया और वे बिचारे मर गये।'[3] इस प्रकार वर्माजी ने इन नाटकों में गांवों के धार्मिक पाखण्ड की ओर इंगित किया है।

वर्माजी ने 'पूर्व की ओर' नाटक में एक विशेष प्रकार के धार्मिक पाखण्ड की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। आज भी दूर-दूर के गांव में असभ्य जातियों में अनेक धार्मिक परम्पराएँ एवं विश्वास प्रचलित हैं। नागद्वीप में एक धार्मिक परम्परा है कि जब इनका कोई व्यक्ति इनसे विदा लेकर कहीं दूर जाने लगता है तो ये एक एक करके उसका हाथ फूकते हैं। यहाँ की महारानी धारा इनसे विदा लेती है तो द्वीपवासी उसका हाथ फूकते हैं। गौतमी के इसका अर्थ पूछने पर महानाविक कहता है— 'द्वीप की प्रथा है—फूंक द्वारा भविष्य में साँप के दंश का अग्रिम निवारण कर रहे हैं।[4] इन बर्बरों के अनेक विश्वास विचित्र हैं। इस प्रकार समग्र रूप में यह कहा जा सकता है कि आज बुद्धि के विकसित होने पर भी अनेक धार्मिक पाखण्ड एवं परम्पराएँ भारतीय समाज में व्याप्त हैं और वे सामाजिक विकास में बाधा बन रही हैं। इन नाटककारों ने इनके प्रति सचेत करने का एक स्तुत्य प्रयास किया है।

---

१ वृन्दावनलाल वर्मा राखी की लाज पृ० ५८
२ वृन्दावनलाल वर्मा खिलौने की खोज पृ० १६
३ वही पृ० ३१
४ वृन्दावनलाल वर्मा पूर्व की ओर पृ० १२६

(ट) विदेशी प्रभाव

आधुनिक शिक्षित लड़कियों पर विदेशी प्रभाव व्यापक रूप से पड़ा है। वे अपनी भारतीय वेशभूषा को त्यागकर विदेशी वेशभूषा के पीछे दौड़ती हैं। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के 'भँवर' नाटक में प्रतिभा नये ढंग के वस्त्र पहनना पसन्द करती है। प्रतिभा नीलिमा से कहती है कि मैंने ब्लाउज पुफ स्लीव्ज का बनवाया है।

नीलिमा—पुफ स्लीव्ज का। किस तरह का है बाजू ?

प्रतिभा—आधुनिकतम फैशन ढंग का। पतली कलाई ब्लाउज की आस्तीनें खूबसूरती से आगे को—आगे गिरी आती आती आती गुच्छा-सा बड़ा ज्यादा मन मोहक लगती है।

नीलिमा—तब तो साड़ी भी बादामी रंग की होगी।

प्रतिभा—*हाँ क्या ?*[1]

'अश्क' जी ने नाटक में आधुनिक लड़कियों की विदेशी वेशभूषा को अधिक पसन्द करते हुए चित्रित किया है।

राधेश्याम कथावाचक ने 'देवर्षि नारद' नाटक में आधुनिक शिक्षा से प्रभावित होकर युवक और युवतियों पर पाश्चात्य प्रभाव को उजागर किया है। चारण चारिणी के सम्वादों द्वारा नाटककार ने यह वर्तमान की चेष्टा की है कि आधुनिक युवकों ने सिर के बाल बढ़ाकर फैशन बनाया है और अपनी जेबों में कंघा रखना तो प्रथा अपना ली है। लड़कियाँ भी लम्बे-लम्बे बाल बनाकर दो-दो चोटियाँ रखने लगी हैं एवं माता पिता सास ससुर वृद्ध पुरुषों के सामने नंगे सिर रहने लगी हैं। उनको लज्जा भाव बिल्कुल पसन्द नहीं है। इस प्रकार आधुनिक युवक युवतियों पर विदेशी प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

वृन्दावनलाल वर्मा ने 'ललित विक्रम' नाटक में पाश्चात्य विधि से बच्चों के जन्म दिवस मनाने का चित्रण किया है। चान्दलाल एक बड़े दफ्तर का महत्त्वपूर्ण बाबू है एवं अपने पुत्र का जन्म दिवस मनाता है परन्तु इसमें आवश्यकता से अधिक व्यय करता है। पुत्र को आवश्यकता से अधिक वस्त्र दिलवा देता है, पत्नी को पाँच सौ रुपये की साड़ी एवं एक सौ का हार दिलवाता है जो नितान्त उसकी सामर्थ्य से बाहर है। परिणामस्वरूप ऋण न चुकाने पर अपना मकान चिमनलाल के हाथों पाँच हजार रुपये में बेच देता है। जब सेठ के यह पूछने पर कि जन्म दिवस में केक तथा मोमबत्तियों की प्रथा कब से चल पड़ी? चान्दलाल उत्तर देता है—'पुरानी नहीं है सेठ जी। कुछ बुरा भी नहीं है, अंग्रेजों की सुहबत से आई है—बर्थ डे केक—जन्म दिवस का केक—ऐसी और भी बहुत सी बातें आ गई हैं।'[2]

---

१ उपेन्द्रनाथ अश्क भँवर पृ० ६२

२ वृन्दावनलाल वर्मा ललित विक्रम पृ० २६

चान्नीलाल के यहाँ एक दो वस्तुओं की कमी रह जाती है और यह देखकर आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा मे पली हुई पिंगला कहती है—"विलायत म रिवाज यह है कि मेहमान कोई न कोई चीज, चाहे वह थोड़े मूल्य की ही क्यो न हो, उस लडके या लडकी को भेंट करते हैं जिसका जन्म दिवस मनाया जाता है।[1] चिमनलाल एक मिस्त्री है। वह भी अपने लडके का जन्म दिवस मनाता है और आवश्यकता से अधिक व्यय करता है। इस प्रकार भारतीय व्यक्ति पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित होते जा रहे है।

(ज) वर्तमान शिक्षा का विरोध

आधुनिक शिक्षा व्यक्ति को जीवन म स्वावलम्बी बनाने म असमथ है क्योकि व्यक्ति पुस्तकें तो पढ लेता है परन्तु व्यावहारिक ज्ञान स अनभिज्ञ रहता है। आज एक एम० एस-सी० उत्तीर्ण युवक बिजली का फ्यूज बाँधन म असमथ है। इस दृष्टि स आधुनिक शिक्षा बेकारी का कारण बनी हुई है। एक युवक एम० ए० म अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन करता है। तदुपरान्त वह अपना कोई व्यापार स्थापित कर लेता है। इस व्यापार मे अंग्रेजी साहित्य का कोई मूल्य नही है। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने मृत्युंजय' नाटक म इस पाश्चात्य साहित्य का विरोध किया है। महात्मा गाधी अंग्रेजी साहित्य के प्रति विरोध प्रकट करत हुए पटेल से कह रहे हैं—'अंग्रेजी साहित्य की शिक्षा जब तक यहाँ चलती रहेगी, हमारा शिक्षित वग अपना स्वरूप भूलकर अपने देश म विदेशी बना रहेगा।[2] इतना ही नही व पाश्चात्य कविता नाटक कहानी की पुस्तकों को भारतीयो के लिए बिल्कुल व्यथ मानते है। पटेल उनसे कहते हैं कि सम्भवत आप भारतीय शिक्षा म विदेशी प्रभाव तनिक भी नही रहने देंगे। इस पर गाधी जी कहते ह— जो मेरी चली तो मुझे यही करना है। अंग्रेजी म छपी पुस्तक जो जहाज भरकर यहाँ चली आ रही है उनस देश का धन ही नही खीचा जा रहा है अविद्या का प्रचार भी हो रहा है। भौतिक विज्ञान, कला कौशल की पुस्तकें आती तो कुछ लाभ सम्भव था। पर कविता नाटक, कहानी साहित्य विवेचन के ग्रन्थ जो आ रहे हैं उनकी इस देश म कोई आवश्यकता नही है। तुलसी की रामायण के साथ जब यहा छात्र शक्सपियर के नाटक भी पढेंगे तो निश्चित है वे भक्त नही बनेंगे, मक्कार बनेंगे। विदेशी साहित्य हमार भावलोक म कोढ बनेगा।[3] इस प्रकार इस नाटक म मिश्रजी न पाश्चात्य शिक्षा का विरोध प्रकट किया है।

वृन्दावनलाल वर्मा ने 'खिलौने की खोज' नाटक म इस शिक्षा का आधुनिक

---

१ वृन्दावनलाल वर्मा दखा-देखी पृ ३३
२ लक्ष्मीनारायण मिश्र मृत्युंजय पृ० ३२
३ वही पृ १६७-६८

जीवन के अनुपयुक्त बतलाया है। इस शिक्षा के विषय में डा० मलिक एवं भवन में वार्तालाप हो रहा है। डा० मलिक अपने विचार प्रकट करता है कि हम बीमारियों का मुकाबला कर चुकने के पश्चात् बीमारों की सेवा का प्रबन्ध करेंगे। इस पर भवन का कथन है कि शिक्षा और साक्षरता का भी। परन्तु डा० मलिक इस शिक्षा के विरुद्ध है और वह पहले जनता को रोटी-वस्त्र देने का सुझाव रखता हुआ कहता है— अक्षरों के अभ्यास और पुस्तकों के रटने का नाम शिक्षा नहीं है। 'पहले जनता के भोजन और वस्त्र का प्रबन्ध होना चाहिए। इस तरह की शिक्षा जनता के साधन और जरूरतों में बहुत सीमित है।'[1] वर्मा जी ने अंग्रेजी शिक्षा को महत्त्वहीन बतलाकर जीवन की वास्तविक शिक्षा की ओर संकेत किया है। अतः उनका प्रयास स्तुत्य है।

उपेन्द्रनाथ अश्क ने अंधी गली नाटक में आधुनिक शिक्षा की खिल्ली उड़ाई है। श्री कौल लड़कियों के लिए आधुनिक शिक्षा को व्यर्थ मानते हैं। वे अपनी पुत्री पुष्पा से इस विषय में कह रहे हैं— एक जमाना था कि एक प्रथा ने जगना था और फिर दिमाग शिक्षा में रोशन हो जाते थे पर यह वक्त है कि घर घुन जाता है और शिक्षा बच्चों के पास नहीं फटकती। भला कोई पूछे ये लड़कियाँ भूगोल पढ़कर करेंगी क्या? इन्हें इब्नबतूता या 'मार्कोपोलो' का अनुकरण कर दुनियाँ के गिर्द घूमना है कि ध्रुव प्रदेश की खोज करनी है, कि कास्मिक किरणों का पता लगाना है। घर के भूगोल का ज्ञान नहीं और दुनियाँ के भूगोल के पाठ रटे फिरती हैं।'[2] अश्क जी ने वास्तव में ठीक लिखा है कि लड़कियों को इस प्रकार की शिक्षा का क्या करना है। उन्हें तो गृह विज्ञान की शिक्षा मिलनी चाहिए जो उनके जीवन में उपयोगी सिद्ध हो। परन्तु आजकल ठीक इसके विपरीत हो रहा है। तभी आधुनिक शिक्षित लड़की घर के कार्यों में असफल सिद्ध हो रही है।

(ज) राष्ट्रभाषा के प्रति मोह

स्वतन्त्र भारत के संविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा माना गया है। सरकार भी हिन्दी के प्रयोग पर आवश्यक बल दे रही है। परन्तु कुछ आधुनिक युवक, विशेषकर लड़कियाँ अंग्रेजी की ओर झुकाव रखती हैं। वे अंग्रेजों के ढंग के वस्त्र उन्हीं के ढंग का खाना रहना-सहना चाहती हैं। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अपने 'पावनी' नाटक में अंग्रेजी भाषा के प्रति वितृष्णा प्रकट की है। गुलाब को अंग्रेजी अच्छी लगती है। वह उसी ढंग में सोचती है। वह अपने पति से कहती है कि सिविलाइज्ड जनता का तरीका अंग्रेजी में ही आ सकता है। गुलाब की परामर्शदात्री गीता उससे कहती है— यह शिक्षा इसमें मनुष्य मनुष्य के प्रति भेद उत्पन्न करती है। हम व्यर्थ ही अपने

---

१ वृन्दावनलाल वर्मा : खिलौने की खोज, पृ० ६८

२ उपेन्द्रनाथ अश्क : अंधी गली, पृ० १७

को बड़ा समझने लगते हैं। एक व्यथ का दम्भ हमारे भीतर घर कर जाता है।'[1] परमानन्द भी अपनी पत्नी गुलाब से कहता है कि हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है। हम नवयुवक देश की सेवा का प्रण लेकर आये हैं। इस प्रकार नाटककार ने हिन्दी भाषा के प्रति आस्था प्रकट की है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने मृत्युंजय नाटक में हिन्दी भाषा के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है। महात्मा गांधी राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति आस्था प्रकट करते हुए पटेल से कहते हैं— मेरी चली तो देशी पचाग देशी भाषा चर्खा और राष्ट्रभाषा मेरे कर्म रथ के दो चक्के हैं।[2] इस पर पटेल कहते हैं कि गुजरात तो राष्ट्रभाषा मान लेगा परन्तु दक्षिण और बंगाल? परन्तु गांधी जी इसकी चिन्ता न करते हुए कहते हैं— राष्ट्र के प्रति शपथ और संकल्प जो धर्म में लेंगे सभी मानेंगे। राष्ट्रभाषा का द्रोही राष्ट्र का द्रोही होगा।[3] इस प्रकार मिश्रजी ने हिन्दी भाषा के प्रति विशेष अनुराग व्यक्त कर सरकार की नीति का समर्थन किया है। वह दिन अधिक दूर नहीं है जब प्रत्येक भारतीय हिन्दी को अपनायेगा एवं सरकारी कार्यालयों में हिन्दी भाषा में ही आवश्यक रूप से कार्य होने लगेगा।

नाटकों मे अभिव्यक्त आर्थिक चेतना का स्वरूप

(क) निर्धनता

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सरकार ने अनेक समस्याओं को सुलझाया है परन्तु निर्धनता ऐसी भयंकर समस्या है जिसका अभी तक कोई समाधान नहीं हो पाया है। आज भी समाज में ऐसे परिवार हैं जिनको पेट भर भोजन प्राप्त नहीं होता। उनके बच्चे भूखे मर जाते हैं और उनको औषधि इत्यादि भी नहीं मिल पाती। हरिकृष्ण प्रेमी ने स्वप्नभंग नाटक में निर्धनता का एक चित्र प्रस्तुत किया है। जहांआरा चन्द्रमा को सम्बोधित करती हुई कह रही है— तुम अन्धे हो चाँद, तभी तो इतने निर्लज्ज होकर मुसकरा रहे हो। अन्धे हो उसी तरह जिस तरह आजकल के सम्पत्तिवान् और शक्तिशाली मनुष्य। बाहर की झोपड़ी मे चार चार बच्चों की मां अपने भूखे-नंगे बच्चों को कंकरीली भूमि पर निद्रा लीन पड़े देखकर रो रही है और श्रीमानों की कोठियों में वेश्या की स्वर लहरी गूंज रही है। लोग आज मनुष्य धर्म को भूल गये हैं।'[4] आज भी सड़कों पर जून और जुलाई के महीनों में कड़कती हुई धूप में अपने बच्चों को छोड़कर निर्धन पुरुष एवं स्त्रियां थोड़ी सी मजदूरी पर

---

१ उदयशंकर भट्ट पार्वती पृ० १४
२ लक्ष्मीनारायण मिश्र मृत्युंजय पृ ७३–७४
३ वही पृ० ७४
४ हरिकृष्ण प्रेमी स्वप्न भंग पृ० ६६

है और वह सड़कों पर मिट्टी खोद-खोद कर निर्वाह करने लगता है। एक दिन लू लग जाने पर वह अस्वस्थ हो जाता है परन्तु घर में डॉक्टर को बुलाने के लिए पैसे नहीं हैं। परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो जाती है। आज भी अनेक किसान बालक गाँवों में डॉक्टर को न बुला पाने एवं समय पर उपचार न होने के कारण असमय में ही मर जाते हैं।

उपेन्द्रनाथ अश्क ने 'अंधी गली' नाटक में यह दिखलाने का प्रयास किया है कि थोड़ी आय में लोग भूखे मरते हैं और उनको सारी-सारी रात काम करना पड़ता है। शीतलप्रसाद गरीब व्यक्ति है और वह दफ्तर में नौकरी करता है तथा आधी आधी रात तक काम करता रहता है। किन्तु बाबू उसे इतना काम न करने का परामर्श देता है। परन्तु वह अपनी असमर्थता प्रकट करता हुआ कहता है— क्या करें। सारे संसार में आजकल ऐसा हो रहा है। महँगाई का जमाना है, नन्हे बच्चे हैं, काम न करें तो सब भूखे मर जायें।[1] वास्तव में आज के युग में मजदूरों की यही स्थिति है। उनको थोड़े से वेतन पर आधी आधी रात तक काम करना पड़ता है। यदि न करें तो उनकी नौकरी समाप्त हो जाती है और भूखे मरने के आसार हो जाते हैं।

(ग) अकाल

भारत में स्वतन्त्रता से पहले और बाद में अकाल बहुत पड़े हैं। निर्धन जनता इनका सामना करते-करते थक गई है। हरिकृष्ण प्रेमी ने 'स्वराज के सिपाही' नाटक में अकाल की समस्या को चित्रित किया है। जालसिंह इस वर्ष की खाद्य-सामग्री एकत्रित करना चाहता है परन्तु रत्नसिंह उससे पूछता है कि क्या अकाल की सम्भावना है? इस पर जालसिंह कहता है— दुर्भिक्ष तो यहाँ के लिए रोज की बात है।[2] परिणामस्वरूप कृषि नहीं होती एवं जनता अनाज के लिए त्राहि त्राहि करने लगती है।

वृन्दावनलाल वर्मा ने 'ललितविक्रम' नाटक में अकाल की समस्या को उभारा है। सब गरीबी का कारण बताते हुए सोम से कहता है— अकाल पर अकाल पड़े हैं, जनता अकालों का सामना करते-करते थक गई है।[3] इधर जनता तो रोटी के लिए भूखी मरती है और उधर अमीर लोग गौरव के साथ जीवन व्यतीत करते हैं। परिणाम यह होता है कि गरीब किसान अनाज के लिए दूसरों पर आश्रित होने लगते हैं। इस प्रकार की स्थिति आज भारत में देखी जा सकती है।

---

१ उपेन्द्रनाथ अश्क अंधी गली पृ० ४
हरिकृष्ण प्रेमी स्वराज के सिपाही पृ० २६
वृन्दावनलाल वर्मा ललितविक्रम पृ० २६

(ग) कृषि मे सुधार

आज भी भारत मे ऐसी बहुत-सी भूमि है जिस पर कृषि नही होती। यदि उस भूमि को भूमिहीनो म विभाजित कर दिया जाये तो उसको ठीक करके कृषि योग्य बनाया जा सकता है। एक तरफ तो किसी के पास बहुत अधिक भूमि है और दूसरी ओर किसी के पास कुछ भी भूमि नही है। सेठ गोविन्ददास ने 'भूदान-यज्ञ' नाटक म इसी समस्या को उठाया है। तिलगाना म विनोबा जी के पहुँचने पर रामचन्द्र रेड्डी कुछ व्यक्तियो को भूमिदान देते हैं। उन्होंने केवल चालीस एकड सूखी एव चालीस एकड भूमि सिंचाई की माँगी थी। परन्तु रामचन्द्र रेड्डी घोषित करते हैं कि मैं पचास एकड सूखी और पचास एकड सिंचाई की जमीन देता हूँ।[1] इस सूखी भूमि को आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणो के द्वारा ठीक करके उपजाऊ बनाया जायेगा और इस पर कृषि की जायेगी। इस प्रकार इससे दो लाभ होंगे—एक तो बजर भूमि भी कृषि-योग्य हो जायगी और दूसरे भूमिहीन किसानो को रोटी मिलेगी।

जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द ने 'प्रियदर्शी' नाटक में किसानों की दशा मे सुधार लाने का प्रयास किया है। सम्राट् अशोक ने कलिंग-विजय के पश्चात् अहिंसावादी साम्राज्य स्थापित करने की घोषणा की है और उसमे किसानो की भी सम्मति आवश्यक समझी जाती है। सुशील एक किसान की हैसियत से सम्राट अशोक को अपना सत्परामर्श दे रहा है— "आपके शासन का पहला उद्देश्य राज्य के प्रत्येक किसान को प्रत्येक प्रकार से सुखी, सन्तुष्ट, सम्पन्न स्वस्थ सुसस्कृत प्रगतिशील और उन्नत बनाना होना चाहिए।"[2] अत म सम्राट अशोक किसानो को ही शासन का मूलाधार स्वीकार करता है। यह नाटक ऐतिहासिक होते हुए भी आधुनिकता का प्रतिनिधित्व करता है, क्योंकि आज के शासन मे किसान की बहुत महत्त्वपूर्ण स्थिति है। यदि किसान भूमि पर कृषि न करे तो मनुष्य भूखा मर जाये। यदि कृषि की अवस्था सुधारी जायेगी तो किसान अधिक सुखी रहेगा एव अधिक उत्साह से काय करेगा। आज स्वतन्त्र भारत मे वैज्ञानिक उपकरणो के द्वारा कृषि म आवश्यक सुधार लाया जा रहा है।

ज्ञानदेव अग्निहोत्री ने 'माटी जागी रे' नाटक म कृषि के उपकरणो मे सुधार कर नये वज्ञानिक ढग स कार्य करने की पद्धति पर बल दिया है। प्रकाश एक शहरी युवक है उसने भोला के गाँव म आकर आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति से कृषि आरम्भ की है, जिससे गाँव मे अत्यधिक मात्रा म अन्न उत्पन्न हुआ है। इस खुशी मे प्रकाश भोला से कहता है— "लोहे और पत्थर के यह विशाल देवता, आज दोनो हाथो से वरदान लुटा रहे हैं। कल तक जहाँ की धरती क्वाँरी थी। आज दुल्हन बनी है। जनम-जनम के प्यासे खेत अधा अधा कर पानी पी रहे हैं। नई रागनी फैल रही

१ सेठ गोविन्ददास भूदान-यज्ञ पृ० ३७

२ जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द प्रियदर्शी पृ ८१

है।"[1] प्रकाश कृषि के पुराने उपकरण परिवर्तित कर देना चाहता है। प्रकाश इस योजना से माता को अवगत कराता है कि 'खेतों में पुराने औजार दफ्न होंगे, नए औजार काम में लाने होंगे। एक सहकारी समिति होगी—वह सब काम करेगी—बीज और बढ़िया खाद खरीदना, नए औजारों का प्रबन्ध करना, कटाई के बाद फसल बाहर की मंडियों में ऊँचे भाव बेचना। यह हमारा पहला कदम होगा।'[2] इस प्रकार गाँव में कृषि की नवीन प्रविधियों के कारण उत्पादन उत्तरोत्तर वृद्धि कर रहा है और देवी-देवताओं के सहारे रहनेवाले किसान वैज्ञानिकता के सत्य को समझ रहे हैं तथा दिनों दिन उनकी स्थिति सुधार के पथ पर है।

(घ) मिलों में हड़ताल

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भी मजदूरों की स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। आज के मजदूरों ने अपनी यूनियन बना ली है और संयुक्त रूप से संघर्ष आरम्भ कर दिया है। मजदूर अपनी माँगें रखते हैं परन्तु मालिक लोग उनकी माँगों को ठुकरा देते हैं। परिणाम यह होता है कि उनके वेतन न बढ़ने से उनमें एक आक्रोश एवं असन्तोष की भावना फैल जाती है और वे हड़ताल करने पर तुल जाते हैं। डा० लक्ष्मीनारायण लाल के 'रातरानी' नाटक में जयदेव एक प्रेस का मालिक है। उसने किशोरीलाल नामक एक कर्मचारी को निकाल दिया एवं बोनस भी नहीं देता। परिणामस्वरूप प्रेस के कर्मचारियों ने हड़ताल आरम्भ कर दी और जलूस निकालकर उसके घर के सामने आकर नारे लगाते हैं—"जयदेव—हाय हाय। अपना बोनस ले के रहेंगे। जयदेव मुर्दाबाद। अपना बोनस ले के रहेंगे, ले के रहेंगे। हमारी माँगें पूरी हों। इन्कलाब जिन्दाबाद।"[3]

आज के कर्मचारियों के समक्ष अपनी माँगें पूरा करवाने के लिए हड़ताल ही एकमात्र हथियार है जिसका प्रयोग चाहे अनचाहे उन्हें करना पड़ता है अन्यथा शोषण का शिकार हो न्याय से हाथ धोना पड़ता है।

भगवतीचरण वर्मा ने 'टूटता शीशा' नाटक में इसी प्रकार की समस्या को उठाया है। गिरधारीलाल एक मिल का मालिक है और वह रिश्वत ब्लैक आदि से खूब रुपया कमाता है। मजदूरों के वेतन आदि न देने के कारण इस हड़ताल का आरम्भ किया गया है। वह घनश्याम सभा में कहता है कि मिल में हड़ताल नहीं होनी चाहिए। इस पर मजदूरों का पक्ष लेता हुआ राधेश्याम सभा में उसको समझाता है—'जहाँ तक मैं समझता हूँ माँगें अनुचित नहीं हैं। लेकिन इस हड़ताल को रोक सकना तो मेरे हाथ में नहीं है—यह मामला आपके और यूनियन साहब के बीच का है। आप दोनों के अलावा सरकार भी इस मामले में पड़ सकता है। लेकिन अगर कांग्रेस

---

१ [illegible] पृ० ४०-४८
२ वही पृ० ४८
३ डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल : रातरानी पृ० १६

कमेटी से इस हड़ताल का कोई सम्बन्ध नहीं है।"

इस प्रकार की घटनाएँ आज भी अनेक मिलों में चल रही हैं। आए दिन मिल मालिकों के पास हड़ताल के नोटिस आए रहते हैं। यदि कर्मचारियों की माँगें समय पर स्वीकार नहीं की जाती तो एकदम हड़ताल कर देते हैं। परन्तु हड़ताल करने से राष्ट्र को हानि पहुँचती है इसलिए मिल मालिकों का उचित रूप से उनकी माँग पर विचार करना चाहिए और न्यायसंगत रूप से यदि सम्भावित हो तो उन्हें स्वीकार भी करना चाहिए, क्योंकि राष्ट्रीय जीवन में मजदूर भी एक आवश्यक अंग है और वस्तुतः वह तो आर्थिक पहलू से प्रत्यक्ष जुड़ा रहनेवाला प्राणी है।

(ड) ब्लैक-मार्किट

आज के चतुर व्यापारी कम्पनियों के झूठे नाम रखकर व्यापार चला रहे हैं। वे अपना असली नाम इत्यादि न बतलाकर किसी भी झूठी फर्म का नाम लेकर माल खरीद लेते हैं और रुपया हड़प लेते हैं। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार के 'न्याय की रात' नाटक में इसी प्रकार की समस्या को उठाया गया है। कमला को वास्तविक स्थिति न बतलाकर एक सिगरेट कम्पनी में सेक्रेटरी रख लिया जाता है एवं उससे रहस्यात्मक ढंग से नौ मास पहले के हस्ताक्षर करवा लिए जाते हैं। इस प्रकार जाली हस्ताक्षर करवाकर कम्पनी के संचालक एवं अधिकारीगण लाखों रुपया का लाभ कमाते हैं। इन सब कार्यों के लिए केवल हेमन्त को उत्तरदायी ठहराया जाता है परन्तु उसने सारा हिसाब किताब फर्जी बना रखा है। परिणाम यह होता है कि उसका सारा मामला बहुत ही पेचीदा हो गया है। सदानन्द इस पेचीदगी के सम्बन्ध में हेमन्त से कहता है—'तुम्हारी यह तम्बाकू कम्पनी शुरू से ही इतनी पेचीदा है कि उसमें पेचीदपन के बढ़ने की गुंजाइश ही कहाँ है? झूठे हिस्सों की बिक्री हिस्सों की बदली झूठ मूठ के बेबुनियाद कामों के लिए बड़े-बड़े ठेके लेकर अपना हिस्सा पहले ही नकद वसूल कर उन्हें आगे बेच देना—ये सब काम तुम्हारी कम्पनी करती आ रही है। मुझे सभी कुछ मालूम था। पर मेरा ख्याल था कि तुम्हारे जैसा चालाक आदमी कभी कानून की पकड़ में नहीं आयेगा।'[2] इस प्रकार इस बोगस कम्पनी से लाखों रुपया का लाभ कमाया जाता है।

भगवतीचरण वर्मा ने 'बुझता दीपक' नाटक में ब्लैक मार्किट की समस्या की ओर ध्यान आकर्षित किया है। शिवलाल एक मिल मालिक है परन्तु उसने काले बाजार से लाखों रुपया कमाया है। अपने पाप की मुक्ति के लिए वह कुछ संस्थाओं को दान देता रहता है। इसी विषय में राधेश्याम शर्मा शिवलाल से कहते हैं— दान आपका धर्म है दान आपकी मुक्ति है। बड़े से बड़े पाप को काटने की दान एक महौषधि है। शिवलाल जी, इस नगर के कुछ लोगों का अनुमान है कि कपड़े पर मे

१ भगवतीचरण वर्मा बुझता दीपक पृ ८३
२ चन्द्रगुप्त विद्यालंकार न्याय की रात पृ० ६१

कंट्रोल हटने के बाद आपने प्रवेन्द्र माल बाजार में बेचकर दस लाख रुपया पैदा किया।[1] शिवनाथ की तरह आज भी बड़े-बड़े व्यापारी एवं मिल-मालिक लाखों रुपये हेरा-फेरी करके कमाते हैं जिसे काला धन कहा जा सकता है क्योंकि राष्ट्र इससे लाभान्वित न होकर समस्याओं में उलझता है।

भगवतीचरण वर्मा ने अपने दूसरे नाटक 'रुपया तुम्हें खा गया' में भी इसी प्रकार की समस्या को चित्रित किया है। मानिकचन्द एक पक्का व्यापारी है, पहले वह किसी फर्म में एक नौकर के रूप में काम करता था परन्तु नौकरी छोड़ते समय वह दस हजार रुपये चुरा लेता है। वह दस हजार रुपयों से व्यापार आरम्भ करके लाखों रुपये अर्जित करता है। अन्त में वह बीमार हो जाता है एवं डाक्टर को अपनी कहानी सुनाता है—"यहाँ आकर मैं पैसा पैदा करने में लग गया। मैंने दिन नहीं देखा रात नहीं देखी, मैंने धर्म नहीं जाना ईमान नहीं जाना। मैंने पाँच का माल लिया और पचास वसूल किये। मैंने माल के दाम में पानी बेचा। मैंने कम्पनियाँ बनाईं और फेल कीं। मैंने समय और परिस्थिति का पूरा-पूरा लाभ उठाया। और मैं बढ़ता गया बढ़ता गया।"[2] वह गम्भीरलाल से ब्लैक में रुपया लेकर सौदा तय करता है परन्तु उसका पुत्र उससे अधिक ब्लैक का रुपया चाहता है। अन्त अपने पिता से गम्भीरलाल के आने का कारण जानना चाहता है। पर मानिकचन्द खुशी में अपने उद्गार व्यक्त करता है— मुजफ्फरनगर माल की पाँच गाँठें चाहता है। पचास रुपये की गाँठ ब्लैक की बात तय हो गई है ढाई लाख रुपया नकद आना होगा।[3] परन्तु उसका लड़का अन्त उससे भी अधिक शैतान है और कहता है— कलकत्ता में सौ रुपया गाँठ मिल रहा है। मैंने आपसे पूछकर सौदा पक्का करने को कहा था। अन्त में मानिकचन्द को इस व्यापार में बहुत हानि होती है[4] और कस्तूरचन्द अपने समधी मानिकचन्द की कपड़े की मिल उसके द्वारा की हुई हानि का अर्थात् ७० लाख रुपया देकर अपने नाम करवा लेता है। इस प्रकार इन नाटकों में रिश्वतखोरी ब्लैक मार्केट करनेवालों की अच्छी खिल्ली उड़ाई गई है।

---

1. भगवतीचरण वर्मा, बुझता दीपक, पृ० ८२
2. भगवतीचरण वर्मा, रुपया तुम्हें खा गया, पृ० [illegible]२
3. वही, पृ० [illegible]
4. वही, पृ० ३७

६

उपसंहार

आधुनिक जटिल समाज की अन्तरग एव बहिरग सगतियो और विसगतियो को उद्घाटित करने मे और उसका यथार्थ रूप उभारने म एकमात्र समाजशास्त्र ही सक्षम है। सामाजिक सरचना की जटिल प्रक्रिया, उसके दाव-पेंच की गुत्थिया का समाधान समाजशास्त्र ही कर सकता है। समाजशास्त्र अपने विषय क्षेत्र म राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक विषयो को समाहित किय हुए है।

भारत म मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात् एक भी मुगल बादशाह ऐसा नही था जो शासन करने के योग्य हो। परिणामस्वरूप ईस्ट इण्डिया कम्पनी व्यापारिक उद्देश्य तक सीमित न रहकर शासक के रूप मे प्रकट हुई। अग्रेज सरकार ने भारत म अनक ऐसे कठोर नियम बनाए जिनको सहन करना भारतीयो के लिए कठिन हो गया। १८५७ ई० मे मुगल सम्राट बहादुरशाह एव नाना साहब के नेतत्व म एक असफल विद्रोह हुआ और भारतीयो म एक नई चेतना का सूत्रपात हुआ। १८६० ई० में किसान विद्राह हुआ। विद्रोह की असफलता के कारण किसानो मे एक जागति का भाव उत्पन्न हुआ। १८८५ ई० तक अग्रेजी शासन ने भारत मे ऐसी विकट परिस्थितिया उत्पन्न कर दी, जिनकी प्रतिक्रियास्वरूप भारतीयो के हृदय म घणा का भाव उत्पन्न हो गया। देश के कोने-कोने से विद्रोह के स्वर फूटने लग एव तात्कालिक वाइसराय लार्ड डफरिन की प्रेरणा से ह्यूम नामक अग्रेज अधिकारी न भारतीय नेताओ से मिल कर एक सस्था की स्थापना की जिसका नाम आल इडिया काग्रेस' रखा गया। इसी सस्था ने आगे चलकर देश की सर्वप्रधान राजनीतिक शक्ति का रूप धारण किया।

देश म बढती हुई एकता के भाव को समाप्त करने के लिए १६ अक्तूबर १९०५ ई० मे बगाल का विभाजन कर दिया गया एव हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक विद्वेष की भावना का बीजवपन किया गया।

प्रथम विश्वयुद्ध का भारतीय जनता पर विशेष प्रभाव पडा और १९१७ ई० की रूसी क्रान्ति की सफलता ने अग्रेजो के हृदय मे एक भय की स्थिति उत्पन्न कर दी कि कही भारत भी इसी प्रकार स्वतन्त्र म हो जाये। जलियाँवाले बाग के हत्याकाण्ड एव मार्शल ला के कारण गांधीजी असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ करने के लिए विवश हो गय तथा १९३० ई० म उनको सत्याग्रह आन्दोलन का आश्रय लेना

पड़ा। १९१९ ई० के गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट के अनुसार प्रान्तीय सरकारें बनीं और राजनीतिक क्षेत्र में कुछ सुधार हुआ। १९३९ ई० में द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ गया और अंग्रेजी सरकार भारतीयों का आवश्यक सहयोग न पाकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो गई। १९४२ ई० में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास किया गया और १५ अगस्त १९४७ ई० को स्वतन्त्रता प्राप्त हो हुई परन्तु इस देश के दो भाग भारत एवं पाकिस्तान बन गए। स्वतन्त्र भारत के सामने अनेक समस्याएँ विकराल रूप धारण कर उपस्थित हुईं, जिनमें शरणार्थियों की समस्या, देशी रियासतों का विलय, कश्मीर समस्या आदि प्रमुख थीं परन्तु सरकार की समस्या का हल कर भारत सरकार ने कुशलतापूर्वक विजय प्राप्त कर ली।

प्राचीन काल में भारतीय समाज ग्राम पंचायतों, जाति-व्यवस्था और संयुक्त परिवारों द्वारा नियन्त्रित होता था परन्तु उचित शिक्षा के अभाव में समाज में अनेक रूढ़ियाँ, परम्पराएँ, रीति रिवाज और अन्ध विश्वास घर कर चुके थे। युगों से पीड़ित नारी की उन्नति का कोई मार्ग नहीं था। समाज में जाति एवं धर्म के बंधन कठोर होते जा रहे थे। परिणामस्वरूप ब्रह्म-समाज, प्रार्थना-समाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसायटी आदि संस्थाओं का जन्म हुआ और समाज-सुधारकों ने समाज में व्याप्त दूषित भावनाओं को समाप्त करने का प्रयत्न किया। जाति व्यवस्था के बंधन शिथिल होने लगे और आर्थिक प्रभाव के कारण समाज नूतन वर्गों में विभाजित होने लगा। बीसवीं शताब्दी की राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के कारण संयुक्त-परिवार भी टूटने लगे और व्यक्ति के सामने विवाह, प्रेम, बेकारी की समस्याएँ उपस्थित हुईं।

प्राचीन भारतीय संस्कृति में धर्म की प्रधानता रही है परन्तु बीसवीं शताब्दी में वैज्ञानिक सभ्यता के कारण धर्म के प्रति समाज की आस्था शिथिल होने लगी और पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव भारतीय जनता पर परिलक्षित होने लगा। शिक्षा में क्रान्ति आयी और अंग्रेजी भाषा के प्रति शिक्षित समाज ने अपना रुझान प्रकट किया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय संविधान में हिन्दी को राष्ट्र भाषा घोषित किया गया और जनसाधारण तक हिन्दी के प्रचार की व्यवस्था की गयी।

ब्रिटिश शासन से पूर्व भारतीय गाँवों की स्थिति अच्छी थी और ग्रामीणों का मुख्य साधन कृषि था। अंग्रेजों ने भारत में आकर यहाँ की जनता का शोषण आरम्भ किया तथा देश में लघु और कुटीर उद्योगों का ह्रास हुआ। दो विश्व-युद्धों के कारण तथा भारत में औद्योगिक मशीन-युग आने के परिणामस्वरूप बेकारी की समस्या उत्पन्न हुई। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार ने लघु और कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देना आरम्भ किया और पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से देश की आर्थिक अवस्था में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया तथा युगों से पीड़ित जनता उन्नति के पथ पर अग्रसर हुई।

हिन्दी नाट्य-साहित्य के प्रथम चरण में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का विशेष स्थान

है और उन्होंने तथा उनके युग के अन्य नाटककारो ने अपने समाज की समस्याओ को नाटको मे चित्रित करने का स्तुत्य प्रयास किया है। इस युग के नाटको मे राष्ट्रीय भावना को विवेचित किया गया। सामाजिक समस्याओ मे बाल विवाह, वृद्ध विवाह, बहुविवाह, मद्यपान, अग्रेजी फशन, सूदखोरी और वेश्यावृत्ति के विरुद्ध आक्रोश प्रकट किया गया और नारी शिक्षा, विधवा विवाह आदि को प्रोत्साहन दिया गया।

भारतेन्दु की मृत्यु के पश्चात् और प्रसाद के आगमन के मध्य हिन्दी नाट्य साहित्य म ह्रास की स्थिति उत्पन्न हुई। उस युग के नाटककार प्राय व्यावसायिक कम्पनियो के लिए नाटको की रचना करते थे जिनके द्वारा जनता का मनोरजन तो हुआ परन्तु उसकी रुचि का परिष्कार नही। नाटककारो न यदा-कदा देश म राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न करने का प्रयास अवश्य किया परन्तु देशव्यापी स्वतन्त्रता का मन्त्र फूकने में असमथ रहे। राधेश्याम कथावाचक ने अपने पौराणिक नाटको के माध्यम से अग्रेजी शासन के प्रति आक्रोश अवश्य उत्पन्न किया परन्तु जनता ने उनके नाटको को धार्मिक भावना से ही ग्रहण किया।

जयशकर प्रसाद के आगमन से हिन्दी-नाट्य-साहित्य मे एक नई चेतना का सूत्रपात हुआ और देश मे भी राजनीतिक घटनाओ ने एक नया मोड लिया। इस युग म महात्मा गाधी भारतीय राजनीति म पूणरूपेण पदापण कर चुके थे और अपने असहयोग तथा सत्याग्रह आन्दोलना आदि से भारतीय जनता को स्वतन्त्रता के प्रति सजग कर सकने मे सक्षम सिद्ध हुए। युग की राजनीतिक विचारधारा का नाटककारो पर आवश्यक प्रभाव पडा और वे अपन नाटको के माध्यम से इतिहास का अवलम्ब लेकर स्वतन्त्रता के युद्ध मे कूद पडे। इस युग के नाटककारो ने इतिहास के आधार पर वत्तमान युग का चित्रण करके स्वाधीनता तथा ऐक्य भावना को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया। नाटककारो ने विदेशी राजनीतिक प्रभुत्व से आतकित भारतीय जनता को शक्ति एव सुरक्षा का अवलम्ब प्रदान किया और जनता मे आत्म-बल की भावना उत्पन्न हुई। इस युग के नाटको की सबसे बडी विशेपता यह है कि प्रथम बार नारी न राजनीति मे प्रवेश किया तथा पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर स्वतन्त्रता सग्राम म सक्रिय योगदान किया। गांधीजी से प्रभावित होकर युवक वग न भी अग्रेजो को भारत से निकालने का दृढ निश्चय किया।

द्वितीय विश्वयुद्ध भारतीय राजनीति म एक नया मोड लेकर आया और स्वतन्त्रता के लिए जनता का रक्त खौल उठा। १६४२ ई० मे देश मे भारत छोडो आन्दोलन आरम्भ हुआ और अग्रजी सरकार को यह आभास होने लगा कि अब उनका शासन भारत म अधिक देर न टिक सकेगा। नाटककारो ने भी देश की जनता को अपने नाटको के माध्यम से स्वाधीनता हेतु अदम्य उत्साह प्रदान किया और हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिक भावना को समाप्त करने का पूण प्रयत्न किया। नाटको

में मुगल बादशाहों एवं राजपूतों के पारस्परिक संघर्ष एवं आपसी मनोमालिन्य प्रस्तुत करके एकता भावना को प्रोत्साहित किया गया जिसमें राष्ट्रीयता का आवश्यक अंग मिला। इसी युग में देशी रियासतों के राजा महाराजाओं ने साधारण जनता का शोषण किया और पुलिस ने भी अत्याचारों को बढ़ावा दिया। नाटककारों ने इन भीषण अत्याचारों और शोषण के विरुद्ध आक्रोश प्रकट कर उत्कोच और बेगार लेने के विरुद्ध प्रचार किया।

अभीप्सित स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारत के सामने अनेक समस्यायें आईं परन्तु नाटककारों ने इनके प्रति मुँह न मोड़कर सद्भावना सहित इनका अंकन नाटकों में चित्रित किया। परिणामतः नाटकों के आधार इतिहास से न लिए जाकर जनसाधारण से लिए जाने लगे। स्वतन्त्रता की रक्षार्थ नाटकों में देश प्रेम को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया एवं जनता ने गणतन्त्रीय भावना को आदर किया। नाटकों में शरणार्थियों के आवास की समस्या का विवेचन किया गया तथा उनको भारत में अन्य नागरिकों की भाँति ही नहीं अपितु उनमें वरीयता देकर उन्हें पूर्ण सुविधाएँ प्रदान की गयीं। नाटककारों ने स्वतन्त्र भारत की विदेश-नीति का हार्दिक स्वागत किया और नाटकों में उसे उचित ढंग से चित्रित करके सच्चे सममामयिक साहित्यकार होने का परिचय दिया है। नाटकों में ग्राम-पंचायतों की ओर भी आवश्यक ध्यान दिया गया।

प्राचीन भारत में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र चार जातियाँ थीं और वे कर्म तथा गुणों पर आधारित थीं परन्तु समाज में विकृति आ जाने पर जन्म के आधार पर जातियाँ बनती गयीं और समाज अनेक जातियों में विभक्त हो गया। बीसवीं शताब्दी के नाटककारों ने जातीय भावना के अनेक दुष्परिणाम दिखलाकर जाति भेद को समाप्त करने का प्रयास किया है। आधुनिक शिक्षा के आलोक में इस भावना पर कड़े प्रहार हुए हैं और अन्तर्जातीय विवाहों का समर्थन मिला है। आधुनिक युग का व्यक्ति प्राचीन मान्यताओं की ताड़ना चाहता है एवं व्यक्ति-स्वतन्त्रता का पक्षपाती है। नाटककारों ने युगों से पीड़ित नारी को स्वतन्त्र किया एवं उसके सामाजिक तथा आर्थिक अधिकारों की रक्षा कर उसकी शिक्षा का भी प्रबन्ध किया। नाटकों में नारी ने शोषण के विरुद्ध संघर्ष किया और विवाह आदि के विषय में अपनी स्वतन्त्र इच्छा का परिचय दिया।

नाटककारों ने बाल विवाह तथा बहुविवाह का विरोध किया और विधवा विवाह को प्रोत्साहित किया। समाज में विधवा की किसी मंगल अवसर पर उपस्थिति को अशुभ लक्षण माना जाता था परन्तु नाटककारों ने उसके प्रति सहानुभूति एवं मानवता प्रदर्शित की और उसका शुभ अवसरों पर उपस्थित होना शुभ माना है। वेश्या के प्रति समाज हीन भावना रखता था परन्तु नाटककारों ने उसके प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया और उसका उद्धार करने की चेष्टा की। प्रायः यह स्वीकार किया जाता है कि अनमेल विवाह के कारण ही वेश्याओं का जन्म होता है और

नाटककारा ने खुले शब्दो म अनमेल विवाह का विरोध किया है। दहेज की समस्या ने नारी की प्रतिष्ठा को धक्का पहुँचाया है और विवाह मे अधिक दहेज न मिलन पर नारी को सारे परिवार के व्यग्य सुनने पडते हैं। नाटको म दहेज लेन के विरुद्ध प्रचार किया गया है।

नाटककारा ने अवैध प्रेम की समस्या की ओर भी दृष्टिपात किया। जब कभी किसी युवक अथवा युवती का अनमेल विवाह होता है तो वे जीवन म अपने साथी के प्रति न्याय नही कर पाते एव अपनी कामवासना को शान्त करन के लिए पथभ्रष्ट होने को बाध्य होते हैं। परिणामस्वरूप अवैध प्रेम से अवैध-सन्तान का जन्म होता है और इस सन्तान का कोई सरक्षक बनने को तयार नही होता। इनका पालन-पोषण करने के लिए सरकार ने अनाथाश्रम, शिशु गृह आदि खोले हैं और इनका विधिवत् चित्रण नाटको मे किया गया है। रियासतो के राजा महाराजा एव नवाब बहुविवाह के पक्ष मे थ और वे अनक विवाह कर लेते थे, जिसका परिणाम यह होता था कि उनकी पत्निया म पारस्परिक स्पर्धा दुर्भावना एव सौतिया डाह की भावना व्याप्त रहती थी। नाटककारा ने इस प्रकार के विवाहा का रोकन का प्रयास किया।

मद्यपान' भारतीय समाज की एक विकट समस्या है जिसके विनाशकारी प्रभाव स घर के घर नष्ट हो जाते हैं। व्यक्ति मद्यपान के नशे म मकान आभूषण जायदाद आदि तक बेच डालते हैं। नाटककारा ने मदिरा के दुष्परिणाम दिखलाकर मदिरापान करनवाला को सुधारने का प्रयास किया है। समाज म साधुओ ने अपन पाखण्डो के द्वारा व्यभिचार फलाया है और नाटककारा ने नाटको म इनकी पोल खोलकर समाज को सावधान किया है।

बीसवी शताब्दी मे विज्ञान के क्षेत्र म आशातीत उन्नति हुई है और व्यक्ति की रुचि भी विज्ञान की ओर बढ रही है परन्तु नाटककारो न इस वैज्ञानिक युग मे भी प्राचीन भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठा को स्थापित कर मानव के विश्वास को आध्यात्मिकता की ओर मोडने का प्रयास किया है। नाटका के अनुसार आज भी व्यक्ति ईश्वर की सत्ता को मानता है और उसको जगत् नियन्ता स्वीकार करता है। कम सिद्धान्त मे विश्वास रखत हुए आज मानव यह स्वीकार करता है कि कर्मों का फल उस अवश्य प्राप्त होगा चाहे इस जन्म म अथवा आगामी जन्म म। इसके अतिरिक्त नाटका मे पुनजन्म मे विश्वास की भावना को चित्रित किया गया है। नाटककारा के अनुसार आत्मा अमर है केवल शरीर का विनाश होता है। जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्र त्यागकर नए वस्त्र धारण कर लेता है उसी प्रकार आत्मा इस जीर्ण शीर्ण शरीर को त्यागकर नया शरीर धारण कर लेती है।

वतमान युग म विश्व की बडी बडी शक्तिया छोटे छोटे देशो को खा जाना चाहती हैं परन्तु नाटककारा ने भारतीय आदश—विश्वबन्धुत्व और विश्व-कल्याण—को स्थापित कर विश्व-शान्ति की स्थापना का नया प्रयास किया है। पाश्चात्य

वैज्ञानिक सभ्यता हिंसावादी है परन्तु नाटककारों ने इसके विरुद्ध बुद्ध और गांधी की अहिंसा का प्रचार किया है तथा सिद्ध किया है यदि समाज को सुख शान्ति से जीवित रहना है तो उसे अहिंसात्मक दृष्टिकोण अपनाना होगा। आज की वैज्ञानिक शिक्षा के प्रसार के बावजूद भारतीय समाज में धार्मिक अंधविश्वास घर बनाए हुए है एवं भूत प्रेत या काली माई आदि की पूजा होती है। मन्दिरों के अनेक पुजारी पाखण्ड को जन्म देते हैं और व्यभिचार फैलाते हैं। नाटककारों ने खिल्ली उड़ाकर जनता को सावधान किया है।

नाटककारों ने अंग्रेजी शिक्षा के विरुद्ध असन्तोष व्यक्त किया है और जीवन में उपयोगी शिक्षा को अपनाने पर बल दिया है। उनके मतानुसार भूगोल इतिहास तथा विज्ञान की शिक्षा लड़कियों के जीवन में अनुपयुक्त है और उन्हें गृह विज्ञान की शिक्षा मिलनी चाहिए। आधुनिक शिक्षा लड़कियों को गृहस्थ-जीवन के आदर्शानुसार चलना नहीं सिखाती इसलिए नाटकों में शिक्षा के प्रति आक्रोश प्रकट किया गया है। भारतीय संविधान के अनुसार हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया गया है। अतः नाटककारों ने भी हिन्दी को ही आदरपूर्वक अपनाने पर बल दिया एवं अंग्रेजी के प्रति वितृष्णा का भाव व्यक्त किया है।

अंग्रेज भारत में व्यापार करने की दृष्टि से आए थे परन्तु वे व्यापार तक ही सीमित न रहे और शासक के रूप में प्रकट होकर उन्होंने भारतीय जनता का शोषण किया। निरन्तर अकालों के कारण भारतीय कृषि की अवस्था खराब होती गई और अंग्रेजों की आर्थिक नीति ने भी भारत की अर्थव्यवस्था को हानि पहुँचायी। दो विश्व-युद्धों के कारण भारत में औद्योगिक विकास आरम्भ हुआ एवं गाँवों से भूमिहीन किसान तथा मजदूर रोजी के लिए नगरों में आने लगे। नाटककारों ने नाटकों में मजदूरों की दुर्दशा का हृदयद्रावक चित्रण किया और उनके अधिकारों की रक्षा की। मिल-मालिक सारा लाभ अपनी जेब में रखना चाहते हैं परन्तु मजदूर इसमें से कुछ भाग अवश्य माँगते हैं। कम वेतन के कारण मजदूरों की आवश्यकताएँ पूरी नहीं होतीं उनके बच्चों की शिक्षा का उचित प्रबन्ध नहीं हो पाता उनकी बीमारी में उनको यथासम्भव औषधि भी नहीं मिल पाती। अतः वे हड़ताल करने पर बाध्य हो जाते हैं। मिलों में हड़तालें होती हैं मालिकों के विरुद्ध नारे लगाए जाते हैं और अन्त में मजदूरों की विजय होती है। नाटककारों ने नाटकों में बड़ी कुशलता से इस सारी स्थिति का चित्रण किया है और मजदूर-वर्ग का साथ दिया है।

इसके अतिरिक्त बीसवीं शताब्दी के भारत में निर्धनता ने भी एक अभिशाप का रूप धारण कर लिया है। आज का व्यक्ति शिक्षित होते हुए भी बेकार है और जीवन-यापन का कोई सहारा न पाकर समाज पर बोझ बनता जा रहा है। नाटकों में इन समस्याओं का बड़े ही वैज्ञानिक ढंग से चित्रित किया गया है।

नाटककारों ने भारत में लघु एवं कुटीर उद्योग धन्धों को भी प्रोत्साहित

किया है। उन्होंने स्वतंत्र भारत में कृषि की अवस्था को सुधारने के लिए वैज्ञानिक उपकरणों को अपनाने की ओर नाटकों में विशेष रूप से पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। इन नए उपकरणों के द्वारा बंजर भूमि भी लहलहाती हुई परिलक्षित हुई है।

परिशिष्ट

राजनीतिक चेतना

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सरकारी कार्यालयों में नियुक्तियों के सम्बन्ध में भ्रष्टाचार की सीमा कुछ अधिक ही बढ़ गई है। सरकारी अधिकारी अपने अपने सम्बन्धियों की तथा परिचित व्यक्तियों की ही नियुक्ति कर देते हैं और योग्य व्यक्तियों की अवहेलना कर देते हैं। बृजमोहन शाह ने अपने नाटक 'त्रिशंकु' में इसी प्रकार की समस्या को चित्रित करने का प्रयोग किया है। एक सरकारी अफसर इसी सम्बन्ध में पियन्त्वान से कह रहा है— मैं सारा अपने अपने रिश्तेदारों के दोस्तों के मिनिस्टर के आदमियों के लिए कमसकम जगह बनाना और काबिल से-काबिल उम्मीदवारों को निराश करता रहा। एक-से-एक बढ़े गधे दफ्तरों में भरते चले गए। दफ्तर घूसखोरी और कामचोरी के अड्डे बन गए हैं।"[1] इसी अफसर के पास एक युवक नौकरी के लिए आता है। पहले तो चपरासी ने ही दो रुपये लेकर उसे उस अफसर तक जाने दिया। उसके एम०ए० एम०एस-सी० होने के बावजूद भी उसे नौकरी पर नहीं रखा गया। शाह इस विषय में कहते हैं— 'लड़का काबिल है पर मैं इसे नहीं रख सकता क्योंकि मुझे अपने दोस्तों के रिश्तेदारों और मिनिस्टरों के भाई भतीजों को खपाना है जो गधे हैं।'[2] परिणाम यह होता है कि इस युवक को नौकरी नहीं मिल पाती। इस युवक की असफलता का अनुचित लाभ उठाते हुए एक लीडर उसे अपने चंगुल में फँसाना चाहता है और उसे अनेक प्रकार के प्रलोभन देता है कि 'आज सरकार की स्वार्थ-परायण नीति से तंग आकर हमने एक नये दल का निर्माण किया है, एक नई सेना बनाई है जिसका उद्देश्य देश में व्याप्त शोषण करप्शन को जड़ से उखाड़ कर राष्ट्र को खुशहाल बनाना जन-जन को रोटी-कपड़ा मकान देकर छोटे-बड़े ऊँच-नीच के भेद भाव को आमूल-चूल कुचलकर राज-महाराजों को बनाये रखकर, सही और सच्चा समाजवाद स्थापित करना है जिसके लिए हम तुम जैसे क्रान्तिकारी जवानों को जरूरत है। तुम हमारे दल के सदस्य हो जाओ और चुनाव में हमारी मदद करो। हमारे दल में आने से तुम्हें फायदे-ही-फायदे हैं। तुम चुनाव लड़ सकते हैं चुनाव में हार गये तो राजदूत बन सकते हैं चुनाव जीतने ही किसी मिल मालिक या ठेकेदार से पाँच हजार क्या दस हजार नकद दिला देना हमारे बायें हाथ का खेल

---

१ बृजमोहन शाह त्रिशंकु पृ० ३७

२ वही पृ० ५६

है।"[1] यहाँ पर नाटककार धोखेबाज नेताओं से सावधान रहने का संकेत करता है।

हमीदुल्ला ने अपने प्रसिद्ध नाटक 'उनकी आकृतियाँ' में कार्यालयों में भ्रष्टाचार की समस्या को उठाया है। विकास एक अधिकारी है और एक पद के लिए विज्ञापन देता है जिसके उत्तर में अविनाश उक्त पद के लिए साक्षात्कार के लिए आता है। पहले तो चपरासी ही उसको कुछ रिश्वत लेकर विकास तक जाने देता है परन्तु यहाँ पर उसको निराशा ही मिलती है। फिर विकास की विशेष कृपा-पात्री लीली के कुछ रिश्वत लेने पर विकास अविनाश को नौकरी पर रख लेता है। इतना ही नहीं, इस कार्यालय के मिस्टर वर्मा (बड़े बाबू) भी बिल पास करते समय एक तिहाई रुपये ले लेते हैं। एक आगन्तुक का बिल पास करते समय उनसे कहते हैं— 'आप तो बहुत ही भोले हैं। जरा-सी बात नहीं समझ पाते। तिहाई इसलिए कि वह एक-दो साल तो क्या पाँच दस साल भी यहाँ से हेड आफिस और हेड आफिस से यहाँ के चक्कर काट सकता है।"[2] वर्मा खुद पानी व बिजली का बिल अपने पैसे से जमा न करवाकर अपने चपरासी रामदीन को जमा कराने के लिए कहते हैं परन्तु रामदीन के ऐसा न करने पर उस पर अपने पैसों का रोब गाँठते हैं। इस पर रामदीन मि० वर्मा की पोल खोल देता है— 'पैसों का रोब मत गाँठिए, बड़े बाबू! मुझे अच्छी तरह मालूम है यह हराम का पैसा कम आता है आपके पास। बता दूँ सबको यहाँ की सारी स्टेशनरी बाजार में किस दुकान पर बिकती है? बिलों के भुगतान में कमीशन काटकर आप जो मकान बनवा लेते हैं उसका कुछ नहीं है?"[3] रामदीन बड़े बाबू के साथ साथ लीली की भी पोल खोल देता है— 'पचास-साठ रुपल्लियों की खातिर ईमानदारी है? यह ईमानदारी है। किसी से टाँका लगाकर तीन-चार महीने तक शहर से गायब रहना ईमानदारी है।"[4] ऐसा लगता है कि कार्यालयों में चपरासी से लेकर अधिकारी तक सभी रिश्वत लेकर काम करते हैं।

जगदीशचन्द्र माथुर के 'पहला राजा' नाटक में आधुनिक ठेकेदारों की भूठी पोल खोली गई है। ठेकेदार सरकार से बड़े-बड़े भवन, सड़क, बाँध आदि के ठेके ले लेते हैं परन्तु आवश्यकतानुसार रुपया मिलने पर भी समय पर काम सम्पन्न नहीं करते। ठेकेदार सारा रुपया अपने व्यक्तिगत कार्यों में खर्च कर लेना चाहते हैं परन्तु मजदूरों को वेतन तथा आवश्यक सुविधाएँ आदि प्रदान नहीं करते। इस नाटक में भृगुवंशी आश्रम की ठाकरियों और कुदालियों की ठेकेदारी और आत्रेय आश्रम की मजदूरों की सप्लाई की ठेकेदारी इसी दुष्प्रवृत्ति और धाँधली के प्रतीक हैं। बाँध के काम में बाधा पड़ते देखकर राजा पृथु अत्रि से कहते हैं— 'इन आश्रमों को तो बस अपनी आमदनी की फिक्र है और अगर यह बाँध ठीक

1 ब्रजमोहन शाह 'त्रिशंकु' पृ० ८८
2 हमीदुल्ला 'उनकी आकृतियाँ' पृ० १८४
3 वही पृ० २११
4 वही पृ० २११

समय पर पूरा न हुआ तो ?'[1] अन्त में परिणाम यह होता है कि पृथु और कवष की बाँध-योजना विफल हो जाती है। इन ठेकेदारों की दुर्नीति और स्वार्थमयी भावना का एक अलग मुखौटा के शब्दों में स्पष्ट हो जाती है—आचार्य गर्ग :

साफ बात है। आप दोनों से एक बात पूछ लीजिए—अपने परिवार, कुटुम्ब-कबीला, कस्बा और आश्रम का भविष्य या सरस्वती की धारा में पानी जिससे फायदा होगा उन छोटे मोटे किसानों, निषादों और वन गुफा स्पृश्यों का।'[2] इससे आगे बढ़कर अत्रि और गर्ग अपने अपने दल के हितों के लिए पृथु की योजना अथवा को भी भ्रष्ट करने की चेष्टा करते हैं। परन्तु रानी अर्चना जब इनके आश्रमीय दलों को महत्व नहीं देती तब यह अनेक प्रकार के भ्रष्ट तरीकों को अपनाते हैं। पृथु की बाँध-योजना में दो सौ मजदूरों की अनिवार्य आवश्यकता है। राजा पृथु ने इन मजदूरों की माँग की है परन्तु मजदूर न भेजकर अत्रि गर्ग से कहते हैं—'कोई जरूरत नहीं। ... बल्कि हम उन मजदूरों को भी वापस बुला लें जो इस समय काम कर रहे हैं।'[3] परिणाम यह होता है कि इन ठेकेदारों की स्वार्थ सिद्धि के कारण पृथु की बाँध-योजना सफल नहीं होती और जन हित तथा जन साधनों का बलिदान हो जाता है।

राजेन्द्रकुमार शर्मा ने 'अपना कमरा' नाटक में रिश्वत-सम्बन्धी समस्या और इसके दुष्परिणामों का आकलन किया है। श्री वर्मा अपने कार्यालय में मैनेजर के पद पर कार्य कर रहे हैं और रिश्वत लेकर कार्य करना उनका पेशा बन चुका है। श्री चमनलाल उनको रिश्वत में एक टेपरिकार्डर और एक सौ रुपये का खिलौना (बच्चे के लिए) देता है। इस रिश्वत में वह वर्मा के माध्यम से हरिश्चन्द्र एण्ड कम्पनी का एग्रीमेंट कान्ट्रैक्ट की रिन्यू में लाता है और यूनीक कम्पनी के सस्ते स्प्रिंग भी पास करवा लेता है। हरिश्चन्द्र एण्ड कम्पनी के पुराने टेण्डर भी उनसे पास करवाता है। इन सबका दुष्परिणाम यह होता है कि श्री वर्मा के दो बच्चे बीमार होकर मर जाते हैं और तीसरे बच्चे की हालत चिन्ताजनक है। अब उनकी पत्नी रमा इस रिश्वत के पैसे से इस बच्चे का इलाज नहीं होने देना चाहती। रमा पुराने टेण्डरों के पास होने से दूसरों के हितों की हुई हानि के विषय में वर्मा से कहती है—*"वे टेण्डर जो तुमने पास किए थे ठीक नहीं थे। हो सकता है ये टेण्डर* उजड़े हुए लोगों को लिए जायें। इन टेण्डरों में वे लोग सहारा ढूँढेंगे जो बेसहारा हो चुके हैं। उनमें वे लोग घर बसायेंगे जो बेघर हो चुके हैं। वे किस्मत के मारे इनमें किस्मत आजमाने आयेंगे और रिश्वत लेकर पास किए हुए टेण्डर बारिश नहीं रोक सकेंगे। कड़कड़ाती सर्दी में पानी की बूँदें उन पर पड़ेंगी। वे ठिठुरते जायेंगे उनके बच्चे बिलबिला उठेंगे। उनकी माताएँ तड़प उठेंगी। तुम्हारे इन पैसों की चमक में

---

१ जगदीशचन्द्र माथुर पहला राजा पृ० ६

२ वही पृ० ६४

३ वही पृ० ६१

उनकी चीखों की आवाज है। इस पसा की चमक में बेबसी के आँसुओं की झलक है।'[1] अन्त में वर्मा जी भविष्य में रिश्वत न लेने का निर्णय लेते हैं।

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल ने करफ्यू नाटक में पुलिस के अत्याचारों की ओर संकेत किया है और बताया है कि आज भी पुलिस-स्टेशन गुण्डा-गर्दी के अड्डे बने हुए हैं। शहर में रायट हो चुका है और चारों ओर करफ्यू लगा हुआ है। परन्तु मनीषा किसी कार्यवश रात के समय जा रही है। मार्ग में कुछ गुण्डों को देखकर एक तख्त के नीचे छुप जाती है। पुलिस गुण्डों को तलाश करती हुई मनीषा को पकड़ लेती है और उसके साथ अनैतिक व्यवहार करती है। इस व्यवहार के विषय में मनीषा गौतम से कह रही है—"मुझे देखकर इन्सपेक्टर ने भारी भरकम गाली दी और जीप में बिठा लिया। अस्पताल होकर पुलिस चौकी पहुँचते पहुँचते उन्होंने मेरे सारे शरीर को बुरी तरह मथ दिया था। सारे रास्ते कई हाथ एक साथ मेरे जिस्म पर खेलते रहे और मैं मैं समाज की रक्षा करनेवाले इन जानवरों की लीला देखती रही। पुलिस चौकी पहुँचने पर पूछताछ करने के लिए मुझे एक कमरे में ले जाया गया। मुझसे कहा गया मैं नक्सलाइट हूँ। मेरे मना करने पर डंडों की बौछार शुरू हुई क्योंकि बिना पिटे कौन मानता है कि वह नक्सलाइट है। उन्हें मेरे जिस्म पर यह कपड़े अच्छे नहीं लग रहे थे इसलिए उन्हें उतार दिया गया। इसके बाद जो हुआ वह कहना मुश्किल है। मैंने अपने सारे जीवन में जितने लोगों के साथ शरीर सम्बन्ध रखा उससे ज्यादा एक घण्टे में ।'[2] इस चित्रण से यह स्पष्ट हो जाता है कि आज भी पुलिस निरीह स्त्रियों पर अत्याचार करती है जिसका कोई उपचार नजर नहीं आता।

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल ने अब्दुल्ला दीवाना नाटक में यह दिखाने की चेष्टा की है कि आधुनिक काल में किस प्रकार एक व्यक्ति अनेक प्रकार के व्यवसाय करता है और धोखे छल कपट से लाखों की सम्पत्ति अर्जित करता है। न्यायालय में 'अब्दुल्ला दीवाना' के कत्ल का मुकदमा चल रहा है। जज महोदय डाइरेक्टर से पूछ रहे हैं कि आप आज से पहले क्या-क्या करते रहे हैं? डाइरेक्टर कहते हैं कि मैं कालोनाइजर था और अपने नाम से सरकार की जमीनें बेची। इसके पश्चात् फाइनेंस कम्पनी खोली। इसके पश्चात् फाइनेंस कम्पनी का दीवाला निकाल कर मन्दिर आदि बनवाया। इसके साथ साथ एक प्रेस भी खोला। लाइसेंस छाप छापकर अफसर के जाली दस्तखत कर इम्पोर्ट एक्सपोर्ट लाइसेंस बेचे। गिरफ्तार होकर सजा भी काटी। वह पैसे के सामने परमात्मा की सत्ता में भी विश्वास नहीं रखता और जज से कहता है—'बात यह है साहब, अब दुनियाँ में सिर्फ दो ही चीजें रह गयी हैं—पैसा और बंदा।'[3] परमात्मा नाम की कोई वस्तु नहीं है, वह

१ राजकुमार शर्मा अपनी कमाई पृ० ८० ८१

२ डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल करफ्यू पृ० ८५ ८६

३ डॉ लक्ष्मीनारायण लाल अब्दुल्ला दीवाना पृ० १००

केवल गरीबों के लिए रह गया है।

डॉ० लाल ने इस नाटक में यह भी दिखाने का प्रयास किया है कि स्वतन्त्रता के पश्चात् आधुनिक शासन में मनुष्य की व्यक्तिगत कोई सत्ता नहीं रह गयी है। आम आदमी की आवाज मात्र वोट बनी रह गयी है जिसमें कोई शक्ति नहीं। वह व्यक्ति से वोट होकर रह गया है। सत्ताधारियों के निर्णयों का न्याय के निर्णय न होने पर वह कहीं [illegible] भी नहीं कर सकता। न्यायालय में चल रहे 'अब्दुल्ला' के मुकद्दमे में यह बताया जाता है कि हम सब सन् सैंतालिस की आजादी की सन्तान हैं जिसने नये राजाओं को जन्म दिया है। सच्चे इन्सान की जगह कागज को पेश किया है। और इसी आजादी से शासन का नया तन्त्र पैदा हुआ है जिसमें आम आदमी का कोई मत नहीं चलता अर्थात् आम व्यक्ति की कोई सुनवायी नहीं होती।[1] डॉ० लाल का अभिप्राय यह है कि वास्तव में सत्तारूढ़ दल का अवसरवाद ही शेष रह गया है आम व्यक्ति की कोई आवाज नहीं है।

इसी नाटक में न्यायालयों की कमजोरियों को भी दिखाया गया है। सत्ताधारी सरकार धीरे धीरे अप्रत्यक्ष तरीकों से न्यायपालिका पर सत्ता और पार्टी के बहुमत से जोर डाल रही है। पैसे वाला और राजनीतिक शक्तिशाली व्यक्ति न्याय तक खरीद सकता है। इसका आभास इस नाटक से प्राप्त हो जाता है। न्यायालय में चल रहे अब्दुल्ला के केस के मुकद्दमे का निर्णय जज स्वयं ही करते हैं कि पुलिस जज महोदय से कहता है कि आपको चमड़े का पट्टा पहनना ही पड़ेगा। जज महोदय कहते हैं कि मैं तो फ्री एण्ड इनडिपेण्डेण्ट (नाटक के शब्द) हूँ। परन्तु पुलिस कहता है कि इस पट्टे से तुम्हें 'कमिटेड' जज होना है। यू विल [illegible] ऑफ दी आइडियालॉजी ऑफ द रूलिंग पार्टी। [illegible] एकॉर्डिंग टू द विल ऑफ दी पार्लियामेण्ट्री पार्टी।[2] अन्त में पुलिस जज के गले में पट्टा पहना देती है और शपथ ग्रहण करवाती है—'आई स्वेयर दैट आई विल [illegible] टू फेथ एण्ड एलीजियेन्स टू द [illegible]।'[3] जज भी इसी को दुहराता है। नाटक में न्यायाधीश का बोलते-बोलते गिर जाना कानून की निस्सारता दिखाता है और फिर उसका खड़े होकर 'कमिटेड' जज का पट्टा पहनना न्याय का अन्त।

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल के 'कलंकी' नाटक में आधुनिक शासन-तन्त्र की ओर संकेत किया गया है जिसमें व्यक्ति को विवेकहीन और अति दुर्बल बनाया जाता है। कलंकी नगर के लोग भोले-भाले हैं। इन्हें एक ऐसे शासक या नेता की आवश्यकता है जो इन पर शासन और इनका नेतृत्व ही नहीं करे, बल्कि जो इन्हें इसके योग्य भी बनाये रखे। [illegible] इनका [illegible] सामन्त है। वह इनके लिए आदर्श

---

1 डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, अब्दुल्ला दीवाना, पृ० ११२

2 वही, पृ० १[illegible]

3 वही, पृ० ११

राजा था। अवधूत तन्त्रविद्या के द्वारा साधारण जनता को भुलावे में डालकर अपना राज्य स्थापित करना चाहता है परन्तु हेरूप जनता में जागृति लाना चाहता है। अवधूत के शासनतन्त्र की ओर सकेत करता हुआ हेरूप उससे कहता है—'हर शासक की अपनी एक निजी रहस्यशक्ति होती है पर यहाँ तो जैसे सब कुछ रहस्य-मय है। यह पराजय यह अकाल × × सभवत सारे रहस्य का यही था लक्ष्य। मनुष्य को पहले दिशाहीन करना, वैयक्तिक और सामाजिक दोनो स्तरो पर निर्वीर्य कर उसे शव बना देना फिर उसकी गणना करते रहना ।'[1] वास्तव में कलकी का परिवेश तन्त्रकाल का होकर भी तन्त्रकाल का नहीं है। इसका सम्बन्ध अबाधकाल से है। विक्रम बिहार प्रतीक है उस शिक्षण पद्धति का जहाँ जागरूक विद्यार्थी को केवल प्रश्नहीन बनाया जाता है। यह प्रशासन का एक ऐसा मन्त्र है जो विद्या (तन्त्र) के नाम पर व्यक्ति की आन्तरिक हत्या करता है और उसे अपने अनुरूप जड बनाकर गुलामी के लिए विवश करता है। इस सबके विरुद्ध जो मात्र प्रश्न करता है, उसे यह तन्त्र क्षमा नहीं करता और प्राणदण्ड देता है और तरह-तरह की कहानियों से यह तन्त्र पूरे वातावरण को अभिभूत रखता है।

ज्ञानदेव अग्निहोत्री ने अपने नाटक 'शुतुरमुर्ग' में देश की बाह्य सुरक्षा के प्रश्न को उठाया है। भारत देश की सीमाओं पर चीन और पाकिस्तान की सेनाओं की आँखें लगी हुई हैं। परन्तु हमें उनसे सावधान रहना है। शुतुर नगरी के निवासी शान्तिप्रिय हैं और आन्तरिक विकास की ओर ध्यान देना चाहते हैं। परन्तु शुतुर नगरी की सीमाओं पर राजा रक्तवर्णी और रक्तबीज की सेनाओं का भयकर जमाव है। भाषण मन्त्री के अनुसार इन सेनाओं का किसी भी समय आक्रमण हो सकता है। राजा भाषण मन्त्री को देश की शक्ति से अवगत कराते हुए कहता है—'रक्त बीज को पिछले युद्ध में जो कडवे घूट हमने पिलाये—वह शायद उन्हें भूल गया है। शान्ति हमें प्रिय है लेकिन युद्ध की स्थिति आ जाने पर शुतुरनगरी पीछे नहीं हटेगी। युद्ध का उत्तर हम युद्ध से देंगे।'[2] वर्तमान भारत की भी यही नीति है। हम लोग शान्ति चाहते हैं परन्तु युद्ध की स्थिति उत्पन्न होने पर डटकर मुकाबला करेंगे। यहाँ शासक की मनोवृत्ति का प्रतीक शुतुरमुर्ग माना गया है। शासकवर्ग देश की आर्थिक दुर्व्यवस्था तथा आन्तरिक सघर्षों का सामना करने में असमर्थ होने के कारण सीमा-सघर्ष का नारा लगाकर देशवासियों का ध्यान मूल समस्या से दूर हटाता है।

सामाजिक चेतना

स्वतन्त्रता के पश्चात् जमींदारी प्रथा कानूनी तौर पर समाप्त हो चुकी है परन्तु आज भी निम्न और मध्यवर्ग में सूदखोरी और बेगार की प्रथा प्रचलित है। गरीब किसान और श्रमिक साहूकार से सूद पर रुपया लेते हैं समय पर रुपया

---

१ डॉ॰ लक्ष्मीनारायण लाल कलंकी पृ॰ १६

२ ज्ञानदेव अग्निहोत्री शुतुरमुर्ग पृ॰ ४८

वापिस न होने पर उनके मकान आदि गिरवी रख लिये जाते हैं और उनके साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता है। रमेश मेहता ने 'रोटी और बेटी' नाटक में सूदखोरी की समस्या को उठाया है। रविलाल ने सुखलाल से कुछ रुपया कर्ज पर लिया है। समय पर न चुकाने पर सुखलाल रविलाल का मकान अपने नाम लिखा लेता है और समय-समय पर धमकी देता रहता है। रविलाल कहता है कि तुम अपनी किश्त मत माँगने आया करो, समय पर घर पर पहुँचा दी जायगी। इस पर सुखलाल कहता है— "लाला अग्रवाल ना ता पैर दा नामा मर मुँह पर और छुड़वा लो अपने घर को। न ना तो मैं कचहरी में आकर नाक रगड़ना। मैं माँगने नहीं आऊँगा समझे कर्ज में पैसा लिया था पत्थर नहीं।"[1] इस पर रविलाल की पत्नी गंगा बिगड़ जाती है और उत्तर देती है कि समझ लिया जितना कर्ज लिया था उससे दुगना ब्याज में हड़प लिया। उस पर सुखलाल कचहरी में घसीटने की धमकी दिखाता है।[2] इस नाटक में जाति-पाँति के प्रश्न को भी उठाया गया है। हरिजनों की समस्या हमारे देश की कुछ ज्वलन्त समस्याओं में से एक है। आज भी हम लोग हरिजनों से रोटी और बेटी का व्यवहार नहीं कर सकते ऊँच-नीच के भेदभाव को दूर नहीं कर सकते। राजू रविलाल मोची का पुत्र है और नलिनी एक ब्राह्मण युवती है। काफी विरोध के पश्चात् इन दोनों का विवाह सम्पन्न हो जाता है। नलिनी के चाचा प्रेमस्वरूप शास्त्री कर्म सिद्धान्त पर आवश्यक बल देते हुए हीरानन्द से कहते हैं—'अगर जाति और कर्तव्य हमारे धर्म की बुनियाद है तो यह बुनियाद अब खोखली हो चुकी है आज ब्राह्मण दुकानदारी कर रहे हैं क्षत्री सत्ता-वादी ... फौज में हैं और शूद्र न्यायाधीश। हमारे धर्म की बुनियाद निष्काम कर्म और त्याग है जातपाँत नहीं। हमारे समाज की बुनियाद इंसान का प्यार है वैर और विरोध नहीं।'[3] इस प्रकार नाटककार ने ऊँच-नीच के भेदभाव को समाप्त करने का प्रयत्न किया है।

उपेन्द्रनाथ अश्क ने 'बड़े खिलाड़ी' नाटक में शहरी निम्न मध्यवर्ग की विवाह की समस्या को चित्रित किया है। आजकल भी दहेज न प्राप्त होने की आशा में विवाह-सम्पन्न नहीं हो पाते। श्रीमती रत्नप्रभा रामध्यान पाराशर एडवोकेट की पत्नी जिसका घर में कोई नहीं चाहता अपने किरायेदार केवलराम से अपनी सुपुत्री सुजला का विवाह तय करने का निश्चय करती है। परन्तु केवलराम की बहिन शीला साम्यवादी आवश्यकता से अधिक चतुर है और दहेज में कुछ अधिक सामान चाहती है। दोनों भाई-बहिन अपनी महत्वाकांक्षाओं में कुछ अतिरिक्त चतुराई से काम लेते हैं और निम्न मध्यवर्ग के ओछेपन के कारण रस्सी को इतना बल दे देते हैं कि वह टूट जाता है। सुजला के माता पिता बार-बार इस रिश्ते के लिए

---

१ रमेश मेहता रोटी और बेटी पृ० २
२ वही पृ० २४
३ वही पृ० ७६

प्रयत्न करते हैं परन्तु विवाह सम्पन्न नहीं हो पाता। सुजाता को केवलराम पसन्द न होने के कारण वह भी इस रिश्ते से खुश नहीं है। सुजाता मनपसन्द पति न मिलने के कारण अपनी मौसेरी बहिन इरा से कहती है— मुझे दुःख इस बात का नहीं रहने या टूट जाने का नहीं, दुःख मुझे उस ढंग का है जिसमें यह बात बन टूट रही है। वे सब वहाँ ऐसे तय कर रहे हैं—बिना मुझसे पूछे बिना मेरी राय लिये—जैसे मेरा इस शादी में कोई सरोकार नहीं, कल तक मैं बरबस अपना मन मना रही थी और आज । क्या मैं हाड माँस की नहीं मिट्टी या पत्थर की हूँ। मैं सोचती हूँ जमाना इसलिए नया नहीं कहा जा सकता कि इस सड़ी भरी गली में भी स्कूटर और मोटर साइकिल और फ्रिज आ गये हैं। घर घर जाकर देख लो अब भी हम वही पुराने गुलाम हैं—छिछोरे, असभ्य दकियानूसी और कट्टरपंथी। मैं नहीं कहती हमारे माँ बाप हमसे प्यार नहीं करते वे अपनी लड़कियों को मोटरें देते हैं मकान देते हैं, फर्नीचर और हजारों का दूसरा सामान देते हैं वह सब इसलिए न कि उनकी लाडली बेटियों को कोई तकलीफ न हो। वे सुख से रहें। लेकिन वे हजारों रुपये अपनी लाडलियों के लिए खर्च कर देंगे बस उन्हें अपने मन का साथी नहीं चुनने देंगे और हम अपने माँ-बाप के इस सरासर अन्याय के विरुद्ध आवाज तक नहीं उठा पाती।"[1] कहने का अभिप्राय यह है कि आज भी निम्न मध्यवर्ग में इस प्रकार की शिक्षित लड़कियाँ हैं जिनके विवाह उनकी इच्छा से सम्पन्न नहीं होते।

मुद्राराक्षस ने तिलचट्टा नाटक में आधुनिक दम्पति के जीवन में आई विसंगतियों की ओर संकेत किया है। देव और केशी का वैवाहिक जीवन सुचारू रूप से नहीं चल पाता। देव को केशी के चरित्र पर कुछ सन्देह हो जाता है और वह उससे अनेक प्रकार के प्रश्न पूछता है कि तुम अस्पताल में डा० के साथ थी? तुम्हारे कूल्हे पर यह निशान कैसे हुआ? क्या यह गर्भ मेरा ही है? इस प्रकार के प्रश्नों से केशी की स्थिति और भी खराब हो जाती है और वह देव को सब कुछ बतला देती है कि किस प्रकार डाक्टर ने मेरा ब्लाउज फाड डाला और मेरे साथ अनैतिक व्यवहार किया। परिणामस्वरूप यह गर्भ उसी डॉक्टर का है। अन्त में देव बच्चे को मारकर मिट्टी में गाड देता है। इतना ही नहीं डाक्टर काला आदमी बनकर केशी का पीछा करता है और उसके घर तक पहुँच जाता है। पुलिस के पीछा करने पर वह देव के घर में छिपकर और निशानी के तौर पर अपनी जुराबें तथा जूते छोडकर भाग जाता है। इस सारी स्थिति का सामना न करता हुआ देव मरने का अभिनय करता है। वास्तव में मरने से अभिप्राय यह है कि देव इतना कमजोर है कि वह स्थिति का मुकाबला नहीं कर पाता। केशी भी काले आदमी (डा०) की जुराबें तथा जूते को पुलिस के सामने सीने से लगाये रहती है और सिसकियाँ भरती रहती है। पारिवारिक जीवन पर घटित होनेवाला यह एक सफल नाटक है।

1 उपेन्द्रनाथ अश्क बड़े खिलाड़ी पृ० १२६ ३

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल ने 'कर्फ्यू' नाटक में आधुनिक दाम्पत्य जीवन की विपन्नता की ओर दृष्टिपात किया है। गौतम एक सम्पन्न युवा पति है और एक मिल का संचालक भी है। उसका जीवन ऊपर से शान्त तालाब की तरह है जिसमें प्रत्यक्षतः शायद कोई भी भँवर या लहर नहीं है। गौतम की पत्नी कविता विवाह से पहले किसी युवक से प्रेम कर चुकी है लेकिन जब प्यार की चरम परिणति का बिन्दु आता है तो वह वहाँ से कायर की तरह भाग निकलती है और भागकर आज गौतम की पत्नी बनी है। कविता गौतम की सामाजिक भावनाओं को जगाने में असमर्थ रहती है क्योंकि भोगे यथार्थ को वह बताना नहीं चाहती कि कहीं पुराने जीवन की सचाई सामने न आ जाय। इसलिए वह स्वयं अपने और दूसरों के जीवन पर 'कर्फ्यू' लगा देती है। इस प्रकार वह व्यापक जीवन पर 'कर्फ्यू' लगाकर उसके भीतर आराम का जीवन बिताना चाहती है। शहर में हुए रायट और कर्फ्यू के कारण रात में मनीषा गौतम के पास आती है। मनीषा धीरे धीरे गौतम की विचार-सरणियों को जगाती है जिससे गौतम सामाजिक अनुभूतियों को महसूस करता है और अपना खोया हुआ व्यक्तित्व प्राप्त करता है। संजय ने क्रोध के अभिमान में अपनी पत्नी को त्याग दिया है और एक अहंकारी जीवन जी रहा है। लेकिन कविता के सम्पर्क में आने से वह महसूस करता है कि उसका अहंकार कितना छोटा है और उसका व्यक्तित्व कितना खोखला है। वस्तुतः कविता ने अपने भावुक व्यक्तित्व से संजय का उपकार किया है। अन्त में कविता गौतम से सारी स्थिति स्पष्ट कर देती है कि वह सुख स्वाद लेने के लिए लौटा। मेरे साथ बलात्कार हुआ। गौतम अब भी इसे आदर्श पत्नी रखता है और विश्वास करता है परन्तु कविता कहती है कि आपका यह विश्वास टूटना ही चाहिए।[1] नाटककार के मतानुसार ऐसा लगता है कि इन्हीं के नहीं शायद हर आधुनिक स्त्री जीवन की कायरताओं से गुजरकर ही सुविधाओं के लिए और समाज में इज्जत तथा सुख पाने के लिए अपने विवाह करती है। नाटक का वास्तविक परिवेश एक ऐसा शहर है जहाँ पर कोई रायट हो चुका है और पूरे शहर पर कर्फ्यू लगा दिया जाता है। वास्तव में यह रायट और कर्फ्यू एक तरह से हमारे जीवन के भीतर रायट और कर्फ्यू का ही प्रतिफल है बल्कि उसी का प्रोजेक्शन है एक्सटेंशन है।

रमेश मेहता ने 'अपराधी कौन' नाटक में सामाजिक सुधार के विषय को उठाया है। यतीमखाना, गऊशालाओं और विधवाश्रमों में किस प्रकार व्यभिचार हो रहा है इस ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया गया है। सेठ भगवतीप्रसाद अनेक संस्थाओं को चन्दा देते हैं और उनके संरक्षक भी हैं। भापसराज गऊशालाओं में अधिकारी है और सेठ भगवतीप्रसाद से चन्दा माँगने जाता है। चन्दा देते हुए सेठजी कहते हैं— ये गउएँ दिन पर दिन दुबली होती जा रही हैं, मालूम होता है

---

1 डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल : कर्फ्यू, पृ० १११

उन्हे चारा पूरा नही मिलता। आप ही सोचिए जिस देश की गउएँ ताकतवर नही उस देश के बच्चे कैसे बलवान् होगे।"[1] यतीमखाने के इन्चार्ज लाला फूलचन्द सेठ जी से चन्दा मागने जाते हैं तो सेठजी उनसे कहते हैं—'समझ मे नही आता इतना चदा होने के बावजूद यतीम बालक सर्दी मे क्या ठिठुरते फिरते है न उनके पाँव मे जूती है न तन ढकने को कोट। ख्याल रखा कीजिए। आगे भी बहुत बार कह चुका हूँ।'[2] हरचन्दराम विधवाश्रम की देखरेख करते हैं और सेठ जी से चन्दा मागने पर उत्तर मिलता है—'हमे बहुत शिकायतें आ रही हैं कि आश्रम मे सुधार की जगह व्यभिचार हो रहा है। दुखिया की मजबूरी से फायदा उठाना महापाप है।'[3] इन समस्याओ के अतिरिक्त विधवा विवाह की ओर भी सकेत किया गया है। उषा का विवाह बचपन मे ही हो गया परन्तु विवाह के सात दिन के पश्चात् वह विधवा हो गयी। समाज ने उसे अपेक्षित स्थान नही दिया और उसे ठुकरा दिया गया। उषा ने नौकरी करके अपने आप को अविवाहित घोषित करना अधिक उचित समझा और एक उत्साही युवक सुधीर को सारी कहानी बतलाकर उससे विवाह कर लिया। सुधीर ने विधवा से विवाह करके वर्तमान समाज के सामने एक आदर्श स्थापित किया है। इस प्रकार इस नाटक मे यतीमखाना गऊशालाओ विधवाश्रमो मे सुधार की आवश्यकता पर अपेक्षित बल दिया गया है।

राजेन्द्रकुमार शर्मा ने 'रेत की दीवार' नाटक मे विवाह मे दहेज की समस्या को लक्ष्य बनाया है। अशोक के पिता गुलाबराय रेखा के पिता रामनाथ से विवाह मे पच्चीस हजार रुपये माँगते हैं। परिणाम यह होता है कि दहेज के कारण विवाह सम्पन्न नही होता। अशोक और रेखा दहेज रूपी रेत की दीवार को गिराने के लिए बिना किसी रस्म के आपस मे गले मे हार डालकर विवाह कर लेते हैं। इस प्रकार नाटककार ने अभिभावको द्वारा खडी की गयी दहेज रूपी रेत की दीवार को गिराकर समाज के सामने एक आदर्श विवाह का रूप उपस्थित किया है।

विष्णु प्रभाकर का 'युग-युग क्रान्ति' भारतीय समाज मे वैवाहिक सम्बन्धो मे पीढी दर पीढी से हो रही परिवर्तन-सक्रान्ति का सफल नाटक है। प्रस्तुत नाटक मे एक शताब्दी मे होनेवाले सामाजिक परिवर्तन को बडे नाटकीय ढग से दिखाया गया है। प्रत्येक नई पीढी पुरानी पीढी को पिछडा और रूढिवादी मानकर उसके विरुद्ध क्रांति करती है—किन्तु वही पीढी दूसरी नई पीढी को अपने विचारो का विरोध करती देखती है तो उसे क्रान्तिकारी घोषित करती है। सन् १८७५ मे कल्याणसिंह ने दिन मे अपनी पत्नी रामकली का मुह देखा था। परिणामस्वरूप उस

---

१ रमेश मेहता अपराधी कौन पृ० १२ १३
२ वही पृ० १२
३ वही पृ० १३

किया है जो आधुनिक समाज में विविध प्रकार का घुटन अनुभव कर रहा है। महेन्द्रनाथ जीविका चलाने के लिए पत्नी सावित्री पर अवलम्बित रहने के कारण घर में उपेक्षित है। सुपुत्र अशोक बेकारी के कारण आधुनिक नवयुवक की कटु मनोवृत्ति को प्रकट करता है। बड़ी लड़की बिन्नी अपनी ही माता के प्रेमी मनोज के साथ भाग जाती है और विवाह कर लेती है परन्तु कुछ समय पश्चात् इस प्रेम विवाह से दुःखी रहने लगती है। छोटी लड़की किन्नी मुखर और जिद्दी होने के कारण बारह वर्ष की अवस्था में ही कैसानोवर की कहानियाँ और नर-नारी के यौन सम्बन्धों में रुचि दिखाती है। सावित्री पर सारे परिवार का बोझ होने के कारण वह नौकरी करती है और अपनी कामनाओं में असफल रहने के कारण प्रायः झुंझलाई रहती है। घर में उसे एक मशीन के अतिरिक्त कुछ नहीं समझा जाता। वह दुःखी होती हुई बड़ी लड़की से कहती है—'यहाँ पर सब लोग समझते क्या हैं मुझे! एक मशीन जो कि सबके लिए आटा पीस कर रात को दिन और दिन को रात करती रहती है? किसी के मन में जरा सा भी ख्याल नहीं है इस चीज के लिए कि कस में ।'[1] सावित्री शिवजीत, जगमोहन जुनेजा और मनोज से मिल चुकी है परन्तु जीवन में स्वयं अधूरी होने के कारण इन सबमें अधूरापन देखती है और पारिवारिक जीवन में टूटती रहती है। महेन्द्रनाथ अस्वस्थ और दुःखी होकर अपने मित्र जुनेजा के यहाँ चला जाता है। परन्तु वहाँ भी शान्ति न मिलने के कारण वापिस घर को लौटना पड़ता है। इस परिवार के सारे पात्र कुण्ठा सन्त्रास तथा मध्यवर्गीय परिवारों के विघटन और उससे उत्पन्न कड़वाहट की अभिव्यक्ति करते हैं। व्यक्ति स्वयं अधूरा रहते हुए भी दूसरे के अधूरेपन को सहन नहीं कर पाता है और अव्यावहारिक आदर्श की तलाश में भटकते हुए परिवार को तोड़ देता है।

अज्ञेय ने 'उत्तर प्रियदर्शी' नाटक में अशोक की दिग्विजय के पश्चात् मानसिक अशान्ति के कारणों की ओर ध्यान दिया है। प्रश्न उठता है कि मनुष्य के पास सब कुछ होने पर भी वह अशान्त क्यों है? सम्राट् अशोक एक शक्तिशाली सम्राट है परन्तु उसके पास मानसिक अशान्ति है, एक घुटन है वह किसी वस्तु की तलाश में है। अशोक (प्रियदर्शी) प्रश्न करता है—

> किन्तु दिशाएँ
> क्यों रंजित होती जाती हैं अनुक्षण
> युद्ध भूमि के शोणित से? क्या सन्ध्या का
> स्निग्ध शान्ति को चीर
> भगकर मगन गायन का सम्मेलन—
> उमड़ आता है चीत्कार असभ्य स्वरों का?
> क्या नगरी के हर्म्य सौध,

---

१ मोहन राकेश आधे अधूरे पृ ८६

किया है जो आधुनिक समाज मे विविध प्रकार का घुटन अनुभव कर रहा है। महेन्द्रनाथ जीविका चलाने के लिए पत्नी सावित्री पर अवलम्बित रहने के कारण घर म उपेक्षित है। सुपुत्र अशोक बकारी के कारण आधुनिक नवयुवक की कटु मनोवृत्ति को प्रकट करता है। बडी लडकी बिन्नी अपनी ही माता के प्रेमी मनोज के साथ भाग जाती है और विवाह कर लेती है परन्तु कुछ समय पश्चात् इस प्रेम विवाह स दु खी रहने लगती है। छोटी लडकी किन्नी मुखर और जिद्दी होने के कारण बारह वष की अवस्था मे ही कसानोवर की कहानियाँ और नर-नारी के यौन सम्बन्धा मे रुचि दिखाती है। सावित्री पर सारे परिवार का बोझ होने के कारण वह नौकरी करती है और अपनी कामनाओ म असफल रहने के कारण प्राय झुझलाई रहती है। घर म उस एक मशीन के अतिरिक्त कुछ नही समझा जाता। वह दु खी होती हुई बडी लडकी स कहती है— यहा पर सब लोग समझते क्या हैं मुझे! एक मशीन, जो कि सबके लिए आटा पीस कर रात को दिन और दिन को रात करती रहती है? किसी क मन म जरा सा भी ख्याल नही है इस चीज के लिए कि कस मैं ।[1] सावित्री शिवजीत, जगमोहन जुनजा और मनोज से मिल चुकी है परन्तु जीवन म स्वय अधूरी होने के कारण इन सबम अधूरापन देखती है और पारिवारिक जीवन म टूटती रहती है। महेन्द्रनाथ अस्वस्थ और दु खी होकर अपन मित्र जुनेजा के यहाँ चला जाता है। परतु वहाँ भी शाति न मिलने के कारण वापिस घर को लौटना पडता है। इस परिवार के सारे पात्र कुण्ठा सत्रास तथा मध्यवर्गीय परिवारा के विघटन और उससे उत्पन्न कडवाहट की अभिव्यक्ति करते हैं। व्यक्ति स्वय अधूरा रहते हुए भी दूसर के अधूरेपन को सहन नही कर पाता है और अव्यावहारिक आदश की तलाश मे भटकते हुए परिवार को तोड दता है।

अज्ञेय ने 'उत्तर प्रियदर्शी' नाटक म अशोक की दिग्विजय के पश्चात् मानसिक अशान्ति के कारणा की ओर ध्यान दिया है। प्रश्न उठता है कि मनुष्य के पास सब कुछ होने पर भी वह *अशान्त क्या है?* सम्राट् अशोक एक *शक्तिशाली* सम्राट है परन्तु उसके पास मानसिक अशान्ति है एक घुटन है वह किसी वस्तु की तलाश मे है। अशोक (प्रियदर्शी) प्रश्न करता है—

किन्तु दिशाएँ
क्या रजित होती जाती है अनुक्षण
युद्ध भूमि के शोणित से? क्यो सध्या की
स्निग्ध शाति को चीर
भगकर मगल गायन का सम्मेलन—
उमड आता है चीत्कार असम्य स्वरो का?
क्या नगरी के हर्म्य सौध

---

[1] मोहन राकेश आध अधूरे प ४६

मना किया पर होना क्या था, छिटा पड़ा और बहुत दिनों तक इसी बात का असर उनके घर में और गाँव पड़ोस में हाहाकार मचा रहा।

२५ वर्ष पश्चात् १९०१ ई० में उसका बेटा प्यारेलाल कलावती नाम की विधवा से विवाह करता है। माँ के मना करने पर प्यारेलाल कहता है— 'पुरुष को जब एक से अधिक शादी करने का अधिकार है तो नारी ने ही कौन-सा अपराध किया है। पुरुष एक स्त्री के जाते ही दूसरी स्त्री ला सकता है, लेकिन नारी नहीं। जवानी में और जवानी से क्या बचपन में ही पति के मर जाने पर दूसरी शादी नहीं कर सकती। उसका सारा पति का शोक उतारे दम तक रहा। छोटी-सी नादान उम्र में ही वह विधवा हो गयी।'[1] इस प्रकार के विवाह को कान्तिसिंह परमश क्रान्ति घोषित करता है। सन् १९२०-२१ में गांधीजी के असहयोग आन्दोलन से प्रभावित होकर प्यारेलाल की सुपुत्री शारदा पिकेटिंग करती है। सिपाहियों के साथ सार्जेन्ट के मना करने पर शारदा कहती है— हम यहाँ से जाने के लिए नहीं आई हैं। हम पिकेटिंग करेंगी।'[2] परिणाम यह होता है कि शारदा थाने में बन्द कर दी जाती है। पर के अन्दर अवगुंठन में रहने वाली युवती का थाने में चोर डाकुओं के मध्य निवास कर, यह उस युग की बहुत बड़ी क्रान्ति थी। अन्त में एक साहसी युवक समाज की परवाह न करता हुआ शारदा से विवाह कर लेता है।

चौथी क्रान्ति सन् १९४२ में होती है। विमल और शारदा के पुत्र प्रदीप ने बाहर से आकर जनेट से विवाह कर लिया। जनेट दूसरी जाति की लड़की है और एक दफ्तर में काम करती है। परन्तु विवाह के पश्चात् प्रदीप ने संयुक्त परिवार से सम्बन्ध विच्छेद करके आणविक परिवार की स्थापना की। पाँचवीं क्रान्ति आधुनिक युग की है। प्रदीप और जनेट की बेटी सविता नलगन से प्रेम विवाह करती है। इस क्रान्ति का समर्थक अनिरुद्ध कहता है— तो क्या हुआ? सविता कल दीपक से प्यार करती थी आज नलगन से करती है। अगले साल प्यार करने की है।'[3] नई पीढ़ी इससे भी एक कदम आगे बढ़कर विवाह को बन्धन मानती है और स्वच्छन्द प्रेम युगानुरूप समझती है। सुरेखा सविता को विवाह के सम्बन्ध में पिछड़ा हुआ मानती है और कहती है— तुम्हारा भाई अनिरुद्ध तुम से दो वर्ष छोटा है। उसने दो वर्ष में तीन संगिनियाँ बदलीं। केवल स्त्री और पुरुष की सत्ता में विश्वास करता है। यानी नर मादा की सत्ता में। कहो तुम पिछड़ गई न।'[4] इस नाटक से ऐसा प्रतीत होता है कि पति पत्नी के स्थान पर अब केवल प्रेमी और संगिनी बनने की आवश्यकता रह गयी है।

मोहन राकेश ने आधे अधूरे नाटक में निम्न मध्यवर्गीय परिवार का चित्रण

---

१ विष्णु प्रभाकर, युग युगे क्रान्ति, पृ० २२
२ वही, पृ० ३६
३ वही, पृ० ७
४ वही, पृ० ७६

किया है जो आधुनिक समाज म विविध प्रकार का घुटन अनुभव कर रहा है। महेन्द्रनाथ जीविका चलाने के लिए पत्नी सावित्री पर अवलम्बित रहन के कारण घर म उपेक्षित है। सुपुत्र अशोक बेकारी के कारण आधुनिक नवयुवक की कटु मनोवृत्ति को प्रकट करता है। बडी लडकी बिन्नी अपनी ही माता के प्रेमी मनोज के साथ भाग जाती है और विवाह कर लेती है परन्तु कुछ समय पश्चात् इस प्रेम विवाह से दु खी रहने लगती है। छोटी लडकी किन्नी मुखर और जिद्दी होने के कारण बारह वष की अवस्था म ही कैसानोवर की कहानियाँ और नर-नारी के यौन सम्बन्धो मे रुचि दिखाती है। सावित्री पर सारे परिवार का बोझ होने के कारण वह नौकरी करती है और अपनी कामनाओ म असफल रहने के कारण प्राय झुझलाई रहती है। घर म उस एक मशीन के अतिरिक्त कुछ नही समझा जाता। वह दु खी होती हुई बडी लडकी स कहती है—'यहा पर सब लोग समझते क्या है मुझे! एक मशीन जो कि सबके लिए आटा पीस कर रात को दिन और दिन को रात करती रहती है? किसी के मन म जरा-सा भी ख्याल नही है इस चीज के लिए कि कस मैं । '[1] सावित्री शिवजीत, जगमोहन जुनेजा और मनोज स मिल चुकी है परन्तु जीवन म स्वय अधूरी होन के कारण इन सबम अधूरापन देखती है और पारिवारिक जीवन मे टूटती रहती है। महेन्द्रनाथ अस्वस्थ और दु खी होकर अपने मित्र जुनेजा के यहाँ चला जाता है। परन्तु वहाँ भी शाति न मिलने के कारण वापिस घर को लौटना पडता है। इस परिवार के सारे पात्र कुण्ठा सत्रास तथा मध्यवर्गीय परिवारो क विघटन और उससे उत्पन्न कडवाहट की अभिव्यक्ति करत हैं। व्यक्ति स्वय अधूरा रहने हुए भी दूसर के अधूरेपन को सहन नही कर पाता है और अव्यावहारिक आदश की तलाश मे भटकते हुए परिवार को तोड देता है।

अज्ञेय ने 'उत्तर प्रियदर्शी नाटक मे अशोक की दिग्विजय के पश्चात् मानसिक अशान्ति के कारणो की ओर ध्यान दिया है। प्रश्न उठता है कि मनुष्य के पास सब कुछ होने पर भी वह अशान्त क्यो है? सम्राट् अशोक एक शक्तिशाली सम्राट है परन्तु उसके पास मानसिक अशान्ति है एक घुटन है वह किसी वस्तु की तलाश म है। अशोक (प्रियदर्शी) प्रश्न करता है—

> किन्तु दिशाएँ
> क्यो रजित होती जाती हैं अनुक्षण
> युद्ध भूमि के शोणित से? क्या सन्ध्या की
> स्निग्ध शान्ति को चीर
> भगकर मगल गायन का सम्मेलन—
> उमड आता है चीत्कार असख्य स्वरो का?
> क्या नगरी क हर्म्य, सौध,

[1] मोहन राकेश आध अधूरे प ४६

ऊँचा अगारियाँ
मणि-खचित
पताक
स्व-नार
सब रचा था मेरा जग
अपने मुँह रौन्द अपने ही धरणी में—
बढ़ा ही आते हैं
हाथ बढ़ाय—
दुर्विनीत दुःसाध्य—
अगम्य शत्रु-दल !
क्या ये
ध्वस्त विजित विस्मृत
ये धूल मिल चुके शत्रु
अनाथ अकिंचन
उमड़ उमड़ आते हैं
अविश्रान्त
ये अपरिमित प्रेत तोड़कर मानो द्वार
नरक कारा के ?
क्या ? क्या ? क्या ?[1]

प्रियदर्शी अशोक दुःखी होकर भिक्षु की शरण में आते हैं और मानसिक शान्ति प्राप्त करते हैं। भिक्षु उनसे कहता है—

'पारमिता करुणा को नमन करो
उस परम बुद्ध की शरण वरो !'[2]

प्रियदर्शी ऐसा ही करता है—

'कल्मष-कर्दम धुल गया ! आह !
युद्धान्त यहीं याशान्त हुआ।
खुल गया बन्ध ! करुणा फूटी !
आहत अंग ! यह विकल
मुक्त हुआ ! गत शोक !'[3]

बुद्ध की शरण में आकर प्रियदर्शी अशोक को शान्ति प्राप्त होती है। नाटक का उद्देश्य है कि आधुनिक युग में मनुष्य अनेक वस्तु प्राप्त करता है फिर भी वह

१　सच्चिदानन्द वात्स्यायन अज्ञेय　प्रियदर्शी पृ० १४-१५
　वही पृ० ६४
३　वही पृ० ६४-६६

अशान्त और दुखी है। क्या है ? इसका उत्तर है कि यदि वह भगवान् की भक्ति शान्त मन से करे तो वह सुखी और सन्तुलित जीवनयापन कर सकता है।

सुरेन्द्र वर्मा ने 'तीन नाटक' में स्त्रियों की यौन-कुण्ठा को चित्रित करने का प्रयास किया है। प्रभावती का बचपन से ही मानसिक और शारीरिक लगाव कालिदास से रहा है। उसका विवाह राजनीतिक कारणों से वाकाटक वंश में हो गया परन्तु वह अपने पति से सन्तुष्ट नहीं हो सकी। क्योंकि वह साहित्य सगीत-कलाविहीन व्यक्ति था। इसलिए प्रभावती विवाहित होकर भी कालिदास के प्रति आकृष्ट रहती है। प्रभावती का पुत्र प्रवरसेन अपनी माँ से पूछता है कि तुमने वैवाहिक मर्यादा का उल्लघन क्यों किया ? पति के होते हुए पर-पुरुष की चाहना अन्याय है। इस पर प्रभावती कहती है— परम्परागत शब्दों को छोड दो। क्या कोई स्थिति ऐसी नहीं हो सकती, जिसमें पर-पुरुष पति बन जाये और पति पर-पुरुष ?[1] इस नाटक का कथानक यद्यपि ऐतिहासिक है परन्तु इसकी समस्याएँ नितान्त आधुनिक युग की हैं। प्रभावती की यौन कुण्ठा आधुनिक स्त्री की कही जा सकती है।

तीन नाटक में सकलित द्रौपदी में मुख्यत नैतिक और भौतिक मूल्यों को लेकर व्यक्ति के मन में होनेवाले सघर्ष को प्रस्तुत किया गया है। इसमें दिखाया गया है कि भौतिक माँगों के दबाव और नैतिक आचरण के बीच निर्णय न कर सकने पर आदमी का व्यक्तित्व किस तरह टुकड़े टुकड़े हो जाता है। प्राय एक ही व्यक्ति के भीतर कई-कई व्यक्तित्व एक साथ जीते और एक दूसरे से लडते झगडते रहते हैं और व्यक्ति को चैन नहीं लेने देते। यह नाटक मनमोहन नामक एक व्यावसायिक कम्पनी के अधिकारी की कहानी है जिसका व्यक्तित्व एक साथ बिखर जाता है। सुरेखा का जीवन भी कुछ अस्पष्ट-सा है कोई उसकी सुनता तक नहीं। सुरेखा की लडकी अलका झूठ बोलकर सिनेमा देखने चली जाती है और एक प्रेमी राजेश से अवैध-सम्बन्ध स्थापित करती है। सुरेखा उनके सम्बन्धों के विषय में पूछती है तो अलका उत्तर देती है— दो बार उसने मेरे ब्लाउज के बटन खोले हैं।[2] इधर अलका आवारा बन जाती है उधर सुरेखा का लडका अनिल भी आवारा किस्म का नजर आने लगता है। वह भी वर्षा नामक एक लडकी से अवैध सम्बन्ध स्थापित करता है और अपने कमरे में अनैतिक व्यवहार की वस्तुएं रखता है। मनमोहन उसकी वस्तुओं के विषय में सुरेखा को अवगत कराता है कि उसने आज फिर जेब से दस रुपये का नोट चुराया और उसके कमरे में सिगरेट के टुकड़े पड़े हैं एक से एक गन्दी किताब और तसवीरें—सुना है चरस और एल एस० डी० का भी शौक फरमाते हैं। एक और चीज भी उसके कमरे में दराज के भीतर ताले में बन्द। वही जो कमिश्नर के यहाँ से मिलती है।'[3] इस प्रकार इस परिवार के सभी सदस्य अपनी

१ सुरेन्द्र वर्मा तीन नाटक (सेतुबन्ध) पृ० २६
२ सुरेन्द्र वर्मा तीन नाटक (द्रौपदी) पृ० १२
३ वही पृ १४

ऊँची अटारियाँ
मन्दिर-महल
प्राकार
देवागार
सब ढहा की ढहा जाता
अपने मुँह रौंद अपने ही चरणों से—
बढ़ा ही आता है
हाथ बढ़ाये—
दुर्विनीत दुःसाध्य—
अगम्य शत्रुन्त !
क्या ये
ध्वस्त विजित विस्मृत
ये धूल मिल चुके शत्रु
अपाय अपरिचित
उमड़ उमड़ आते हैं
अविश्वास
ये अपमानित प्रेत तोड़कर माता द्वार
नरक कारा के ?
क्या ? क्या ? क्या ?[1]

प्रियदर्शी अशोक दुःखी होकर भिक्षु की शरण में आते हैं और मानसिक शान्ति प्राप्त करते हैं। भिक्षु उनसे कहता है—

'पारमिता करुणा को नमन करो
उस परम बुद्ध की शरण करो !'[2]

प्रियदर्शी ऐसा ही करता है—

कल्मष-कान्तार घुल गया ! आह।
युद्धान्त यहीं साक्षात् हुआ।
खुल गया बन्ध ! करुणा फूटी !
अहंकार भग्न ! यह किंकर
मुक्त हुआ ! गत शोक !'[3]

बुद्ध की शरण में आकर प्रियदर्शी अशोक को शान्ति प्राप्त होती है। नाटक का उद्देश्य है कि आधुनिक युग में मनुष्य प्रत्येक वस्तु प्राप्त करता है फिर भी वह

१ सच्चिदानन्द वात्स्यायन अज्ञेय : प्रियदर्शी पृ० ३४-३५
२ वही पृ० ६४
३ वही पृ० ६४-६५

अशान्त और दुखी है। क्या है ? इसका उत्तर है कि यदि वह भगवान् की भक्ति शान्त मन से करे तो वह सुखी और सन्तुलित जीवनयापन कर सकता है।

सुरेन्द्र वर्मा ने 'तीन नाटक' म स्त्रियो की यौन-कुण्ठा को चित्रित करन का प्रयास किया है। प्रभावती का बचपन से ही मानसिक और शारीरिक लगाव कालिदास स रहा है। उसका विवाह राजनीतिक कारणा स वाकाटक वश मे हो गया परन्तु वह अपने पति स सन्तुष्ट नही हो सकी। क्योकि वह साहित्य सगीत-कलाविहीन व्यक्ति था। इसलिए प्रभावती विवाहित होकर भी कालिदास के प्रति आकृष्ट रहती है। प्रभावती का पुत्र प्रवरसेन अपनी माँ से पूछता है कि तुमने ववाहिक मर्यादा का उल्लघन क्या किया ? पति के होते हुए पर-पुरुष की चाहना अन्याय है। इस पर प्रभावती कहती है—'परम्परागत शब्दो को छोड दो। क्या कोई स्थिति ऐसी नही हो सकती जिसम पर-पुरुष पति बन जाय और पति पर-पुरुष ?'[1] इस नाटक का कथानक यद्यपि ऐतिहासिक है परन्तु इसकी समस्याएँ नितान्त आधुनिक युग की हैं। प्रभावती की यौन-कुण्ठा आधुनिक स्त्री की कही जा सकती है।

तीन नाटक' मे सकलित 'द्रौपदी में मुख्यत नैतिक और भौतिक मूल्यो को लकर व्यक्ति के मन मे होनेवाले सघर्ष को प्रस्तुत किया गया है। इसम दिखाया गया है कि भौतिक मांगो के दबाव और नतिक आचरण के बीच निर्णय न कर सकने पर आदमी का व्यक्तित्व किस तरह टुकडे टुकडे हो जाता है। प्राय एक ही व्यक्ति के भीतर कई-कई व्यक्तित्व एक साथ जीते और एक दूसरे से लडते झगडते रहते हैं और व्यक्ति का चैन नही लेने देते। यह नाटक मनमोहन नामक एक व्यावसायिक कम्पनी के अधिकारी की कहानी है जिसका व्यक्तित्व एक साथ बिखर जाता है। सुरेखा का जीवन भी कुछ अस्पष्ट-सा है कोइ उसकी सुनता तक नही। सुरेखा की लडकी अलका झूठ बोलकर सिनेमा देखन चली जाती है और एक प्रेमी राजेश स अवैध-सम्बन्ध स्थापित करती है। सुरेखा उनके सम्बन्धो के विषय मे पूछती है तो अलका उत्तर देती है— दो बार उसने मेरे ब्लाउज के बटन खाले हैं।'[2] इधर अलका आवारा बन जाती है उधर सुरेखा का लडका अनिल भी आवारा किस्म का नजर आने लगता है। वह भी वर्षा नामक एक लडकी मे अवैध सम्बन्ध स्थापित करता है और अपन कमरे म अनतिक व्यवहार की वस्तुए रखता है। मनमोहन उसकी वस्तुओ के विषय म सुरखा को अवगत कराता है कि उसन आज फिर जब स दस रुपय का नोट चुराया और उसक कमर म सिगरट के टुकडे पडे हैं एक स एक गन्दी किताबें और तसवीरें—सुना है, चरस और एल एस० डी० का भी शौक फरमाते हैं। एक और चीज भी उसके कमरे म दराज के भीतर ताले मे बन्द। वही जो कमिस्ट क यहाँ स मिलती है।[3] इस प्रकार इस परिवार क सभी सदस्य अपनी

१ सुरेन्द्र वर्मा तीन नाटक (सेतुबन्ध) पृ २६
२ सुरेन्द्र वर्मा तीन नाटक (द्रौपदी) पृ० १ २
३ वही पृ० १ ४

कलेक्टर से कमिश्नर बनाया जाता है। राजन की पत्नी उसके ऊचा उठन के विषय म गयादत्त स कहती है—"आप ता जानते ही हैं कि क्ल हम यहा स चाज दफ्र चले जाना है। हम दुनियां भर से क्या मतलब। हम चुपचाप आख मूदे अपने रास्त पर चले जाना है। कमिश्नर की बसिक पे ढाई हजार से शुरू हाती है। इन्हे कम-स-कम ज्वाइन्ट सेक्रेटरी तक पहुँचना है। साढे तीन हजार तनख्वाह पर पहुँच कर रिटायड हागे। तब कम स-कम ढाई लाख हमारा प्राविडेंट फण्ड होगा। इन्ह सात सौ रुपये महीन पेंशन मिलेगी और आप जानते हैं, रिटायड होन के बाद कोई घर नही बैठता। यह किसी फम मे एक्जीक्यूटिव डायरेक्टर, किसी बाड के फाइनेंस एडवाईजर, नही तो किसी यूनिवर्सिटी के वाइस चासलर ।'[1] अत म राजन गलत ढग क काय करके कमिश्नर का पद सम्भाल लेता है।

राजेन्द्रकुमार शर्मा ने 'काया-कल्प' नाटक म आधुनिक पडितो की स्वाथ मयी भावना को चित्रित किया है। लाला गोवरधनलाल ७० वष के हो चुके हैं परन्तु वह आधुनिक व्यक्ति बनन के लिए एक पवत पर काया कल्प करवान के लिए चुपचाप घर स निकल पडते हैं। पीछे से उनके पुत्र अनिल की पत्नी शीला यह समझती है कि शायद कही उनकी मृत्यु हो गई है और वह उनकी अनुपस्थिति मे पडित को बुलवाकर उनका क्रिया-कम करवाने के लिए कुछ सामान मँगवाती है। पडित जी स्वार्थी होने के कारण रजाई गद्दे, कपडे और चारपाई आदि की माग करते हैं परन्तु शीला इतना सामान देने स इन्कार कर देती है। इस पर पडित जी कहते है—'स्वग मे बिना रजाई और गद्दे के काम नही चलता। वहा काफी ठड पडती है।'[2] इतना सामान लेने पर भी पडितजी की सन्तुष्टि नही हाती और वह नये वस्त्र तथा नहान के लिए एक बाल्टी भी ले लता है। इस चित्रण से स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक काल के पडित कितने स्वार्थी होते जा रहे है।

सत्यव्रत सिन्हा ने 'अमत-पुत्र' नाटक म विश्वविद्यालयो मे भ्रष्टाचार और विवाह की समस्या को चित्रित किया है। डा० रमाकान्त गोयल विश्वविद्यालय म प्रोफेसर तथा अध्यक्ष रह चुके हैं। एक दिन उन्होने अपनी किसी छात्रा को छेड दिया है। छात्रा प्रतिरोध करती है—'आह! छोडिए मुझे। हाय यह क्या? आप तो मेरे टीचर हैं—हाय।'[3] इस छात्रा का एक प्रेमी उसकी हिमायत लेकर प्रोफेसर को डाटता है—'आप प्रोफेसर, हेड आव दी डिपाटमट शम नही? जिन्हे पढाते हैं, उन पर ही जुल्म? क्या कहा? वह लडकी बदचलन है? तो मैं आपसे पूछता हूँ कि उसकी बदचलनी म आप क्या शामिल हुए? जवाब दो? क्या?'[4] डाट तक ही काम नही चलता। दोनो मिलकर प्रोफेसर की पिटाई करते हैं। इसी

१ डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल मिस्टर अभिमन्यु प० ६७ ६८

२ राजेन्द्रकुमार शर्मा काया कल्प प० २२

३ सत्यव्रत सिन्हा अमतपुत्र प ७

४ वही प ७

अपराध में लडका आगे चलकर रस्टीकेट होता है और एक कलर्क मात्र बनता है। डा० गोयल तब कहते हैं— तुमने मेरे ऊपर हाथ चलाया, आखिर क्या हुआ? मुझे लेकर नहीं उस लडकी को लेकर तुम रस्टीकेट हुए और अब उस दफ्तर में कलर्की करते हुए अपना दम तोड रहे हो। जो कुछ ठसक बाकी है वह भी कुछ दिनों के बाद टूट जायगी।[१] इसके अतिरिक्त विवाह की एक समस्या इस नाटक में दिखाई पडती है। श्री दीनानाथ सुगना असिस्टेंट एकाउटेंट जनरल रह चुके हैं। वह अपनी बेटी का विवाह एक ऐसे अफसर से करना चाहते हैं जो बदसूरत ही नहीं विधुर भी है। अत उनकी पुत्री इस विवाह से इन्कार कर देती है और विद्रोह करती है— पापाजी मैं यह शादी नहीं करना चाहती। मैं नहीं करूँगी नहीं करूँगी। उस भारी भरकम अफसर से मैं शादी नहीं करूँगी। मैं पूछती हूँ कि आप मेरी शादी अफसर में करने पर क्यों तुले हुए हैं और वह भी उस अफसर से? मैं नहीं करूँगी—नहीं करूँगी! हाय! मैं नहीं करूँगी।[२] अन्त में वह अपने प्रेमी निशिट प्लेयर से विवाह कर लेती है।

रमेश बक्षी के देवयानी का कहना है नाटक ने स्वच्छन्द प्रेम को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। यह प्रयास स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों और उनसे जुडी हुई नैतिकताओं और बन्धनों के अवमूल्यन का है। पर वह विवाह-संस्था पर प्रश्न चिह्न लगाता है और एक ऐसी तथाकथित मानसिक जिन्दगी को प्रस्तुत करता है जो हर प्रकार के बन्धन और वर्जनाओं से मुक्त हो। देवयानी कई पुरुषों से सम्बन्ध स्थापित करती है परन्तु निभा नहीं पाती क्योंकि वह प्रत्येक से स्वच्छन्द प्रेम करती है और एक प्रकार का विनवाद-सा करती रहती है। वह अपने वर्तमान प्रेमी साधन बनर्जी से पहले प्रेमी सुधीर के विषय में बतलाती है— मूल में क्या है यह मुझे नहीं मालूम। केवल यह मालूम है कि सुधीर को मेरे बालों में उँगली फँसाकर बैठे रहने में और अधिक हुआ तो (उरोजों की ओर इशारा करती है) सिर रख कर लेटे रहने में ही सारा सुख मिल जाता था। वह तो महीने में एक दिन को पन्द्रह मिनट के लिए ऐसी जगह नहीं ढूँढ पाया कि हम दोनों एक दूसरे को ठीक से देख तो सकते। और किस्सा खत्म कि एक सुबह मैंने उसे रिजेक्ट कर दिया।[३] इतना ही नहीं उसे विवाह से भी घृणा है। वह साधन से कहती है— शादी केवल एक पास है जिसको हाथ में रखने से खुले आम घूमने एक साथ बिस्तर में सोने और दुर्घटना के समय सामाजिक विरोध न होने का सार्टिफिकेट मिल सकता है।[४] देवयानी और साधन विवाह के लिए विचार कर लेते हैं परन्तु उन दोनों की आपस में नहीं निभ पाती और शीघ्र वे दोनों अलग अलग रहने लगते हैं। फिर भी स्वच्छन्द

१ सत्यव्रत सिन्हा अमृतपुत्र पृ० ७
२ वही पृ० ३
रमेश बक्षी देवयानी का कहना है पृ० २
४ वही पृ० २७

रूप से प्रेम करने ही हैं। इस प्रकार उन्होंने समाज मे वैवाहिक सस्था पर एक प्रकार का प्रश्न चिह्न लगा दिया है।

जगदीशचन्द्र माथुर ने दशरथनन्दन' नाटक म भक्ति की महिमा और भगवान् को स्मरण करने पर विशेष बल दिया है। आज के युग म यदि व्यक्ति भगवान् का भजन सच्चे रूप से करे तो उसका बेडा पार हो जाता है। विश्वामित्र अपने शिष्य के साथ अपने यज्ञ के रक्षार्थ राम-लक्ष्मण को लेने के लिए अयोध्या नगरी जाते हैं और भगवान् की महिमा का वर्णन करते हैं—

आदि अत कोउ जासु न पावा।
मति अनुमानि निगम अस गावा॥
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।
कर बिनु करम करइ विधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी।
बिन वाणी बक्ता बड जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा।
ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
अस सब भाति अलौकिक करनी।
महिमा जासु जाइ नहिं बरनी।"[1]

माथुरजी ने भूमिका म ही स्पष्ट कर दिया है कि इस नाटक का मूल उद्देश्य रामचरितमानस के चुने हुए शब्दो पदो, विचारो और दर्शन को वर्तमान समाज तक पहुँचाना और मूल वाक्य के रस एव भक्ति तत्त्व का भी आनन्द उठाना है। यहाँ नाटककार का अभिप्राय स्पष्ट है कि वर्तमान समाज का ध्यान भौतिक तत्त्वो की ओर से हटाकर भगवान् राम की भक्ति और महिमा की ओर आकर्षित किया जाये।

आर्थिक चेतना

स्वतन्त्र भारत की आर्थिक स्थिति बिगडने के प्रमुख कारण हैं—खेती मे उपज का कम होना आर्थिक भ्रष्टाचार, वैज्ञानिक यन्त्रो का अभाव, अकाल और पैसे का असमान वितरण आदि। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् नाटककारो ने इन कारणो का चित्रित करने की ओर विशेष रूप से ध्यान देना प्रारम्भ किया है। डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल ने अपने नाटक 'मिस्टर अभिमन्यु' म आर्थिक भ्रष्टाचार की ओर पाठको का ध्यान आकर्षित किया है। केजरीवाल एक पूँजीपति मिल मालिक है। उसने तेरह साल से कोई टैक्स नही दिया। वह मिनिस्टरो की सिफारिश से काम निकलवा लेता है। एक बदमाश व्यक्ति गयादत्त केजरीवाल की राष्ट्रीय सेवाओ की प्रशसा

---

१ जगदीशचन्द्र माथुर दशरथनन्दन पृ० २८ २९

लिए एक जुलूस निकाल रही है। कुमकुम इस जुलूस म भाषण करती हुई नीरज का ध्यान इस ओर आकृष्ट करती है— दश म आज लाग भूखा मर रहे हैं अकाल है भुखमरी है अपमान है, बदइजती है मौत है, एसी मौत जिम न हम चाहते हैं और न चाह सकते हैं।[1] मिस्टर क की पत्नी बीमार हो जान पर अस्पताल म भरती हो जाती है परन्तु शुद्ध दवाई न मिलन पर उसका पति कहता है— 'वह दवा यों ही थी पानी मिली जाली दवा।'[2] उनको दूध भी वही स मिलता था परन्तु अमेरिकन हाना था। वह दूध को स्वय न पीकर एक चाकलेटवाले को वेच देती थी। वह दर्दनाक कहानी सुना रहा है कि दूध स ज्यादा जरूरी खाना था। दवा से ज्यादा जरूरी पानी था। सरकार दवा के नाम पर पानी देती थी हम दूध को खाने मे बदल देत थे।[3] इस प्रकार उसके शरीर म खून के स्थान पर पानी बनन लगा और चार मास के पश्चात् वह मर गयी। इस चित्रण स ऐसा भासित होता है कि नाटककार न अस्पतालों मे व्याप्त भ्रष्टाचार का यथाथ चित्र प्रस्तुत किया है।

---

१ लक्ष्मीकान्त वर्मा रोशनी एक नदी है पृ० ४४
२ वही पृ० ६१
३ वही पृ ६२

२६ हथ — एम० चन्द एण्ड कम्पनी दिल्ली म० १९७१
२७ अगाव — भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली स० १९६१
२८ कर्तव्य — भारतीय विश्वप्रकाशन दिल्ली तीसरा स० १९६४
२९ भूदान-यज्ञ — ,, , द्वितीय स० १९७०
३० सन्ताप कहाँ ? — द्वितीय स० १९७०
३१ शशिगुप्त — एम० चन्द एण्ड कम्पनी दिल्ली नयासंग स० १९६८
३२ सेवापथ — हिन्दी भवन इलाहाबाद स० १९४६
३३ प्रकाश — भारतीय साहित्य मन्दिर दिल्ली, स० १९५६
३४ विकास — एम० चन्द एण्ड कम्पनी दिल्ली स० १९६८
३५ हिंसा या अहिंसा — चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी द्वितीय स० २०२७ वि०
३६ गरीबी या अमीरी — हिन्दुस्तानी एकेडमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद द्वितीय स० १९५३
३७ रहीम — ओरियन्टल बुक डिपो दिल्ली स० १९५४
३८ महत्त्व किसे ? — भारतीय विश्वप्रकाशन दिल्ली, स० १९७०

गोविन्दवल्लभ पत

३९ वरमाला — गगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ दसवा स० १९६३
४० ययाति — साहित्य सदन देहरादून द्वितीय स० १९६८
४१ अत पुर का छिद्र — गगा पुस्तकमाला कार्यालय लखनऊ तीसरा स० १९६२
४२ राजमुकुट — तईसवाँ स० १९७०
४३ अगूर की बेटी — पाचवाँ स० २०१९ वि०
४४ सुहाग बिन्दी — चतुर्थ स० १९६२

आचार्य चतुरसेन शास्त्री

४५ धर्मराज — राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली तीसरा स० १९५८
४६ छत्रसाल — प्रभात प्रकाशन दिल्ली स० १९६७
४७ पग ध्वनि — आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली
४८ राजसिंह — गौतम बुक डिपो दिल्ली द्वितीय स० १९४९
४९ अजीतसिंह — प्रभात प्रकाशन, दिल्ली स० १९६५
५० गान्धारी — स० १९६५
५१ मेघनाद — , स० १९६५

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

५२ न्याय की रात — राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली द्वितीय सं० १९५९
५३ अशोक — द्वितीय सं० १९६१
५४ देव और मानव — अतरचन्द कपूर एण्ड सन्स दिल्ली द्वितीय सं० १९५७
५५ रेवा — राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली चतुर्थ सं० १९६१

जगदीशचन्द्र माथुर

५६ शारदीया — सस्ता साहित्य मण्डल नयी दिल्ली प्रथम सं० १९५९
५७ कोणार्क — भारती भण्डार प्रयाग संशोधित षष्ठ सं० २०१८ वि०
५८ पहला राजा — राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली प्रथम सं० १९६९
५९ दशरथनन्दन — नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली प्रथम सं० १९७४

जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'

६० प्रताप प्रतिज्ञा — हिन्दी भवन इलाहाबाद सत्रहवाँ सं० १९६०
६१ गौतम नन्द — किताब घर ग्वालियर ग्यारहवाँ सं० १९६६
६२ समर्पण — रवीन्द्र प्रकाशन ग्वालियर नवीन सं० १९७०
६३ प्रियदर्शी — गयाप्रसाद एण्ड सन्स आगरा प्रथम सं० १९६२

जयशंकर 'प्रसाद'

६४ जनमेजय का नागयज्ञ — भारती भण्डार इलाहाबाद अष्टम सं० २०१७ वि०
६५ चन्द्रगुप्त — भारती भण्डार काशी प्रथम सं० १९८८ वि०
६६ स्कन्दगुप्त — भारती भण्डार इलाहाबाद १६वाँ सं० २०१४ वि०
६७ राज्यश्री — २२वाँ सं० २०२६ वि०
६८ ध्रुवस्वामिनी — २२वाँ सं० २०१६ वि०
६९ अजातशत्रु — २८वाँ सं० १९७०
७० विशाख — ८वाँ सं० २०२२ वि०
७१ कामना — ८वाँ सं० २०२५ वि०

डा० दशरथ ओझा

७२ भारत विजय — साहित्य मन्दिर बनारस द्वितीय सं० १९५२
७३ प्रियदर्शी सम्राट अशोक — सरकार ब्रादर्स दिल्ली द्वितीय सं० १९४६
७४ स्वतन्त्र भारत — आदर्श साहित्य मन्दिर गाजियाबाद पाँचवाँ सं०

देवराज 'दिनेश'

७५ रावण — प्रेम साहित्य निकेतन दिल्ली तीसरा सं० १९५०

७६ मानव प्रताप	आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, द्वितीय सं० १९५४

५० नारायणप्रसाद 'बेताब'

७७ रामायण	बेताब पुस्तकालय ३०१५ धमपुरा, दिल्ली, दूसरा सं०
७८ महाभारत	,, ,, , तीसरा सं० १९६१
७९ कृष्णसुदामा	,, तीसरा सं० १९६१

नित्यानन्द हीरानन्द वात्स्यायन

८० मुकुट	हिन्दी भवन इलाहाबाद चतुर्थ सं० १९५७

धर्मवीर भारती

८१ अन्धा युग	किताब महल इलाहाबाद, चतुर्थ सं० १९७१

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

८२ महात्मा ईसा	भारती भण्डार इलाहाबाद चतुर्थ सं० २००५ वि०
८३ अन्नदाता माधव महाराज महान	मानकचन्द बुक डिपो उज्जैन, प्रथम सं० १९४३

पृथ्वीनाथ शर्मा

८४ उर्मिला	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, दूसरा सं० १९६०
८५ अपराधी	हिन्दी भवन इलाहाबाद तीसरा सं० १९५६
८६ दुविधा	,, , सं० १९५७
८७ नया रूप	आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, प्रथम सं० १९६२

बृजमोहन शाह

८८ त्रिशंकु	शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली प्र० सं० १९७३

भगवतीचरण वर्मा

८९ वासवदत्ता का चित्रालेख	भारती भण्डार, इलाहाबाद, प्र० सं० २०१२ वि०
९० बुझता दीपक	, द्वितीय सं० २०१७ वि०
९१ रुपया तुम्हें खा गया	राजकमल प्रकाशन दिल्ली द्वितीय सं० १९७०

माखनलाल चतुर्वेदी

९२ कृष्णार्जुन युद्ध	वोरा एण्ड सन्स पब्लिशर्स प्रा० लि० इलाहाबाद, सं० १९६७

मुद्राराक्षस

९३ तिलचट्टा — सम्भावना प्रकाशन हापुड़, प्र० स० १९७३

मोहन राकेश

९४ आषाढ़ का एक दिन — राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली प्र० स० १९५८
९५ लहरों के राजहंस — राजकमल प्रकाशन दिल्ली स० १९६८
९६ आधे अधूरे — राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, द्वितीय स० १९६९

रमेश बक्षी

९७ देवयानी का कहना है — इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन दिल्ली

राधेश्याम कथावाचक

९८ देवर्षि नारद — श्री राधेश्याम पुस्तकालय बरेली प्र० स० १९६१
९९ उषा अनिरुद्ध — चतुर्थ स० १९५८
१०० वीर अभिमन्यु — तेरहवाँ स० १९६२
१०१ सती पार्वती — तीसरा स० १९६५
१०२ भारत माता — छठा स० १९५३
१०३ परिवर्तन — छठा स० १९६२
१०४ महर्षि वाल्मीकि — तीसरा स० १९६९
१०५ परमभक्त प्रह्लाद , — आठवाँ स० १९६६
१०६ श्रवण कुमार — चौदहवाँ स० १९६७
१०७ द्रौपदी स्वयंवर — पाँचवाँ स० १९७१
१०८ ईश्वर भक्ति , — आठवाँ स० १९७०
१०९ रुक्मिणी-कृष्ण — तीसरा स० १९६६
११० मशरिकी हूर — चौथा स० १९५४

रमेश मेहता

१११ रोटी और बेटी — बलवन्त प्रकाशन नयी दिल्ली द्वितीय स० १९६९
११२ अपराधी कौन

डा० रामकुमार वर्मा

११५ कौमुदी महोत्सव — साहित्य भवन इलाहाबाद सातवाँ स० १९६६
११६ विजय पर्व — रामनारायण लाल पुस्तक विक्रेता, इलाहाबाद तृतीय स० १९५८

११५	कला और कृपाण	रामनारायण लाल बनीमाधव इलाहाबाद, तीसरा स० १६६२
११६	नाना फडनवीस	,, ,, , स० १६६६

राजेन्द्रकुमार शर्मा

११७	रेत की दीवार	आत्माराम एण्ड स स, दिल्ली द्वितीय स० १६६३
११८	कायाकल्प	,, , , स० १६७१
११६	अपनी कमाई	नशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली प्र० स० १६६६

लक्ष्मीनारायण मिश्र

१२०	सिंदूर की होली	भारती भण्डार इलाहाबाद दसवा स० २०२० वि०
१२१	वितस्ता की लहर	स्वस्तिक प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय स० १६६६
१२२	गरुडध्वज	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी सशोधित स० १६६७
१२३	आधी रात	, स० १६६२
१२४	मुक्ति का रहस्य	, स० १६६७
१२५	दशाश्वमेध	हिन्दी भवन इलाहाबाद सोलहवा स० १६७०
१२६	राक्षस का मंदिर	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी तृतीय स० १६५८
१२७	चक्रव्यूह	कौशाम्बी प्रकाशन इलाहाबाद स० १६६१
१२८	कवि भारतेन्दु	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय बनारस, प्र० स० १६५५
१२६	सन्यासी	, , द्वितीय स०
१३०	अपराजित	कौशाम्बी प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम स० २०१८ वि०
१३१	वैशाली में वसन्त	विद्या भवन पटना प्रथम स० १६५८
१३२	मृत्युजय	शिक्षा भारती रामकिशोर रोड दिल्ली, प्रथम स० १६५८
१३३	जगदगुरु	कौशाम्बी प्रकाशन इलाहाबाद प्र० स० २०१५ वि०
१३४	वत्सराज	हिन्दी भवन इलाहाबाद आठवा स० १६५६

लक्ष्मीकान्त वर्मा

१३५	रोशनी एक नदी है	भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली प्र० स० १६७४

डा० लक्ष्मीनारायण लाल

१३६	कलकी	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली प्र० स० १६६६
१३७	मादा कैक्टस	राजकमल प्रकाशन दिल्ली, प्रथम स० १६५६

१६५ हंस मयूर	मयूर प्रकाशन, झांसी	बारहवाँ सं० १९६८
१६६ पूर्व की ओर	,,	ग्यारहवाँ सं० १९६६
१६७ मंगल सूत्र	,,	चतुर्थ सं० १९६५
१६८ कनेर	,,	प्रथम सं० १९५१

मिश्रबंधु (श्यामबिहारी मिश्र, शुकदेवबिहारी मिश्र)

१६९ ईशानवर्मन	भारती प्रकाशन, लखनऊ, सं० १९६७
१७० शिवाजी	गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ तृतीय सं० २००४ वि०

सत्यव्रत सिन्हा

१७१ अमृतपुत्र	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम सं० १९७४

सर्वदानन्द

१७२ सिराजुद्दौला	राष्ट्रीय साहित्य सदन, लखनऊ प्र० सं० २०१८ वि०
१७३ भूमिजा	भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी प्रथम सं० १९६०

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

१७४ उत्तर प्रियदर्शी	अक्षर प्रकाशन, दिल्ली प्र० सं० १९६७

सियारामशरण गुप्त

१७५ पुण्य पर्व	साहित्य-सदन, चिरगाँव (झांसी) तृतीय सं० २००६ वि०

सुरेन्द्र वर्मा

१७६ तीन नाटक	भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली प्रथम सं० १९७२

हरिकृष्ण 'प्रेमी'

१७७ शपथ	आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली,	द्वितीय सं० १९५४
१७८ स्वप्नभंग	,, ,,	पाँचवाँ सं० १९७०
१७९ शतरंज के खिलाड़ी	,,	तीसरा सं० १९७०
१८० साँपों की सृष्टि	बंसल एण्ड कं०, दिल्ली,	तृतीय सं० १९६६
१८१ ममता	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	सं० १९५८
१८२ संरक्षक	भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली	सं० १९७०
१८३ कीर्ति-स्तम्भ	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	सं० १९५५

सहायक ग्रन्थ-सूची

१ (डा०) ए० पा० खत्री — नाटक की परख साहित्य भवन इलाहाबाद तृताय स० १६५८

२ ओकारनाथ श्रीवास्तव — हिन्दी साहित्य परिवतन के सौ वष राजकमल प्रकाशन दिल्ली प्रथम स० १६६६

३ काका कालेलकर — युगानुकूल हिन्दू जीवन-दृष्टि भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली प्रथम स० १६७०

४ (डॉ०) गोपीनाथ तिवारी — भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य हिन्दी भवन इलाहाबाद स० १६५६

५ गिरजा सिंह — हिन्दी नाटको की शिल्प विधि लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम स० १६७०

६ (डा०) गिरीश रस्तोगी — हिन्दी नाटक सिद्धात और विवेचन प्रथम कानपुर १६६४

७ गुरुदत्त — धर्म संस्कृति और राज्य भारतीय साहित्य सदन नई दिल्ली प्रथम स०

८ चन्द्रलाल दुबे — हिन्दी नाटको का रूप विधान और वस्तु विकास हिन्दी पुस्तक सदन, दिल्ली प्रथम स० १६७०

६ जगन्नाथप्रसाद शर्मा — प्रसाद के नाटको का शास्त्रीय अध्ययन सरस्वती मन्दिर वाराणसी षष्ठ स० २०२३ वि०

१० जगदीशनारायण दीक्षित — प्रसाद के नाटकीय पात्र साहित्य निकेतन कानपुर

११ जयनाथ नलिन — हिन्दी नाटककार आत्माराम एण्ड सस दिल्ली द्वितीय स० १६६१

१२ (डा०) दशरथ ओझा — नाट्य समीक्षा नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली—६ द्वितीय स०

१३ (डा०) दशरथ ओझा — हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, राजपाल एण्ड सस, पचम स० १६७०

१४ देवदत्त पाण्डेय — भारत का औद्योगिक विकास किताब महल इलाहाबाद, प्रथम स० १६६३

१५ डी० आर० मनक्कर — मन ६२ के अपराधी कौन ? विल्को पब्लिकेशन्स पब्लिशिंग हाउस बम्बई स० १६६८

३४ (डा०) रमाशंकर श्रीवास्तव — कुटीर एव लघु उद्योग आरियण्टल पब्लिशिंग हाउस आगरा प्रथम स० १९६७

३५ रामधारीसिंह दिनकर — संस्कृति के चार अध्याय उदयाचल, पटना, चतुर्थ सस्करण १९६६

३६ राजकुमार — राजनतिक भारत हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी प्रथम स० १९५६

३७ रवीन्द्र मुकर्जी — सामाजिक विचारधारा सरस्वती सदन मसूरी, स० १९६१

३८ रामगोपालसिंह चौहान — हिन्दी नाटक सिद्धान्त और समीक्षा प्रभात प्रकाशन दिल्ली प्रथम स० १९५८

३९ (डा०) लक्ष्मीनारायण लाल — रंगमंच और नाटक की भूमिका नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, प्रथम स० १९६५

४० विश्वनाथ मिश्र — हिन्दी नाटक पर पाश्चात्य प्रभाव, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम स० १९६६

४१ वेदपाल खन्ना — हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन श्री भारतभारती दिल्ली प्रथम स० १९५८

४२ (डा०) वासुदेवशरण अग्रवाल — कला और संस्कृति, साहित्य भवन इलाहाबाद

४३ विश्वप्रकाश दीक्षित बटुक — नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी व्यक्तित्व और कृतित्व बन्सल एण्ड कम्पनी दिल्ली प्रथम स० १९६०

४४ (डा०) विनयकुमार — हिन्दी के समस्या नाटक, नीलाभ प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम स० १९६८

४५ (डा०) शिवकुमार शर्मा — हिन्दी साहित्य युग और प्रवत्तियाँ अशोक प्रकाशन दिल्ली पंचम स० १९७०

४६ शशिशेखर नथानी — जयशंकर प्रसाद और लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी प्रथम स० १९६६

४७ शान्तिरानी शर्मा — हिन्दी नाटकों में हास्य रस, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम स० १९६६

४८ (डा०) शत्रुघ्नप्रसाद — लक्ष्मीनारायण मिश्र के ऐतिहासिक नाटक, हिन्दी साहित्य संसार दिल्ली, प्रथम स० १९६७

४९ (डा०) श्रीपति शर्मा — हिन्दी नाटक पर पाश्चात्य प्रभाव विनोद पुस्तक मंदिर आगरा प्रथम स० १९६१

५० शम्भूरत्न त्रिपाठी — भारतीय समाजशास्त्र किताब घर कानपुर स० १९६०

११ आचार्य शंकर दत्तात्रय जावडेकर　आधुनिक भारत सस्ता साहित्य मण्डल नई दिल्ली, दूसरा सं० १९५३
१२ सत्यकेतु विद्यालंकार　भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन और नया संविधान सरस्वती सदन मसूरी प्रथम सं० १९५८
१३ सर्वपल्ली डा० एस० राधाकृष्णन　आधुनिक युग में धर्म राजकमल प्रकाशन दिल्ली-६ प्रथम सं० १९६८
१४　प्राच्य धर्म और पाश्चात्य विचार राजपाल एण्ड सन्स सं० १९६७
१५ सुरेशचन्द्र शर्मा　भारत के त्यौहार आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली प्रथम सं० १९६३
१६ आचार्य क्षितिमोहन सेन　संस्कृति संगम साहित्य भवन लिमिटेड इलाहाबाद द्वितीय सं० १९५२
१७ आचार्य क्षितिमोहन सेन　भारतवर्ष में जाति भेद साहित्य भवन लिमिटेड इलाहाबाद नवीन सं० १९५२

अंगरेजी

१ मैक्स वेबर　द रिलीजन आफ इण्डिया एण्ड इकानामिक आर्गेनाइजेशन अनुवादक —एच० एम० गैडसन एवं टालकाट पर्सन्स द फ्री प्रेस ग्लैन्को इल्यूनायस एण्ड कि पाल्स्म विग प्रेस १९५०
२ अर्नेस्ट डब्ल्यू० ग्रान　मार्शियानाजी सकरा हिन्द बुक कम्पनी प्रथम सं० १९५२
३ एम० वी० रामाराव　द शार्ट हिस्ट्री आफ द इण्डियन नेशनल कांग्रेस एस० चन्द एण्ड कम्पनी दिल्ली १९५९
४ जे० एल० नेहरू　डिस्कवरी आफ इण्डिया
५ राधा के० मुकर्जी　इकानामिक प्राब्लम्स आफ मार्डन इण्डिया
६ ए० आर० देसाई　सोशल बैकग्राउण्ड आफ इण्डियन नेशनलिज्म
७ डी० पी० मुकर्जी　मार्डन इण्डियन कल्चर
८ हुमायूँ कबीर　द इण्डियन हेरिटेज
९ एण्ड्रूज एण्ड मुकर्जी　राइज एण्ड ग्रोथ आफ कांग्रेस इन इण्डिया
१० डी० आर० गाडगिल　द इण्डस्ट्रीयल एवोल्यूशन आफ इण्डिया

संस्कृत

१ ऋग्वेदसंहिता (सायण भाष्य समेता) चतुर्थ भाग सं० श्री नारायण सोनटक्के तथा श्री चिन्तामणि काशीकर वैदिक संशोधन मण्डल पूना १९४६

२ श्रीसुभाषित रत्नभाण्डागारम म० वासुदेव शमा निणयसागर बम्बई
प० म० म० १९११

कोष एव पत्रिकाएँ

१ हिन्दी माहित्य कोष भाग २, सम्पादक—डॉ० धीरेन्द्र वमा ज्ञानमण्डल लि०, वाराणसी, द्वितीय स० २०२० वि०
२ आलोचना (नाटक विशेषांक) दिल्ली जुलाई १९५६
३ नटरग दिल्ली
४ धमयुग बम्बई
५ भाषा (त्रमासिक), द्विवेदी स्मृति अक दिल्ली अगस्त १९६४
६ सरस्वती हीरक जयन्ती अक इलाहाबाद १९६१
७ सरस्वती-सवाद, आगरा